साहित्य हृदय

अथवा

विविध विषयों पर अनूठे उच्छ्वास समुच्चय

[द्वितीय भाग]

लेखक

स्वर्गवासी उपाध्याय श्री हरिश्चन्द्र शर्मा

सम्पादक

श्री नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय एम० ए०

एडवोकेट हाईकोर्ट

नैव व्याकरणज्ञमेति पितरं न भ्रातरं तार्किकं
दूरात्सङ्कुचितेव गच्छति पुनश्चाण्डालवच्छान्दसात्।
मीमांसानिपुणं नपुंसकमिति ज्ञात्वा निरस्तादरा
काव्यालङ्करणज्ञमेत्य कविता कान्ता वृणीते स्वयम्॥

प्रकाशक

श्री भुवनेश्वरप्रसाद उपाध्याय

मूल्य १) मजिल्द

विषयानुक्रम

साहित्य हृदय के द्वितीय भाग की सूची

॥ इति ॥

पुस्तक मिलने का पता

१—श्री नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय
एडवोकेट, जार्ज टाउन, प्रयाग

२—श्री भुवनेश्वर प्रसाद उपाध्याय
शीतलगञ्ज मस्कनवां *(B N W R)*

समर्पण

जगन्नाथ,

साहित्य उद्यान के बचे बचाए जो पुष्प थे उन्हें आपके चरणों में समर्पण करने लाए हैं। इसी मे आपकी प्यारी रूक्मिणी, जिसकी सन्देह समुद्र मे डूबती हुई प्रेम नौका को, आपने द्वारिकासे दौड कर, शिशुपालग्राह से बचाया था, भक्तों के मौलि मुकुट प्रह्लाद और परम मित्र तपोधनी सुदामा जी भी वर्तमान हैं। इन प्रियजनों को आपको समर्पण करके आशा है कि आप के प्रेम और स्नेह मे नवीन उल्लास तरंगित हो "साहित्य हृदय" को अयाच्य और उपकृत करेगा।

अनन्य अनुरागी

हरिश्चन्द्र



काव्यों की सृष्टि

जैसे सरस एवं सकण्टक संसार को सिरजनहार प्रकृति की परिवर्तनशीलता प्राकृतिक है, वैसे ही कमल का कमलनाथ के आशा मण्डल को सनाथ करते मुकुलित होना, वामलोचनाओं का बङ्कविलोकन, मधुमास का मोद प्रमाद, कोकिल की कुहू, सहकार का सुवास और मनुष्य की इन्द्रियों का नैसर्गिक कर्मों में प्रवृत्त होना प्राकृतिक है। मधुर संगीत सुनते ही श्रवण उत्कण्ठित हो जाते हैं, लोचन उसके स्रोत को ढूंढने लगते हैं और वाणी वाह! वाह! करने लगती है। इसी प्रकार वासन्ती छटा, निखरी चांदनी, निनादी निर्झर, कलरंजित कुंज से सभा

गम होने दी इन्द्रिया नन्मय हो जानी हैं। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि जब कोई बाह्य उद्बोधक अथवा उत्तेजक नहीं भी रहना तब भी यह अपने अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाती हैं और यह कहावत कि "रहना झोपड़ियों में और ख्वाब देखना महलों का" वस्तुत केवल मन के लिए ही नही किन्तु सभी इन्द्रियों के लिए सही हो जानी है। बालक को भी जो भाषा से अनभिज्ञ है, स्वरित व्यञ्जनके उच्चारण मे आनन्द मिलता है क्योंकि हम सबों की इन्द्रियों को अपने प्राकृतिक कर्म में प्रवृत्त होने से ही सन्तोष और सुख मिलता है। इसी प्रकार साक्षरों को साहित्य रचना मे स्वत आनन्द उठना है, चाहे वह अच्छी हो या बुरी। इसी गुण पर विचार करते हुए गोस्वामी तुलसी दास ने कहा है—

निज कवित्त केहि लागि न नीकी।
सरस होइ अथवा अति फीकी॥

यही प्राकृतिक प्रेरणा काव्यों, कविताओं और किताबों की माना है। इसीने शास्त्रोंका सागर बना दिया और ज्ञान विज्ञान को गागर मे भर दिया। इसी के कारण अनेक प्रकार के काव्य निर्मित है किसी की परिस्कृत भाषा है, किसी की असस्कृत और किसी की खिचडी। सुतराम् जिसकी जैसी योग्यता वैसा परिच्छद धारण कर उसकी कविता प्रादुर्भूत होती है। इसी प्राकृतिक प्रेरणा के उदाहरण मे वाशिङ्गटन आइरविङ कहता है, सभी "आधुनिक लेखक अपने कविता रूपी दीपक को लेकर शेक्सपियर की पूजा करने जाते हैं किन्तु किसी किसी

का दीपक तो इतना कज्जलकारी होता है कि पूज्य देवी की मूर्ति ही को विरूप कर देता है "।

इसी प्राकृतिक प्रेरणा से प्रणीत ग्रन्थों के प्रणेताओं का सुबोध विभाग उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार जगन्नियन्ता ने जगत के प्रबन्ध, स्थिति और लय के लिये किया है। इस साहित्य संसार मे भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश अनादि काल से वर्तमान हैं।

ब्रह्मा तो हम उन लेखकों और कवियों को कहेंगे जो कविता के बीज बोए और स्वय अनुभूत विज्ञान को लिपिबद्ध किये यथा वाल्मीक, व्यास, पतञ्जलि, कणाद इत्यादि।

विष्णु की पदवी उनको देना उपयुक्त होगा जो ब्रह्मा की लगायी वाटिका के वृक्ष और वल्लरियों को निपुण माली सा विशेष प्रोत्साहित किये और उसके पुष्पों के गुलदस्ते और साफी ऐसी २ जलाई जो अद्यावधि इस असार ससार के एक मेवसार हैं। यथा वाण, कालिदास, सूर, तुलसी इत्यादि इत्यादि।

महेश, जैसे सृष्टि के संहारक, दुष्टों के दारक और माया से निर्लिप्त हैं उसी प्रकार के साहित्यके तीसरे प्रकारके लेखक समालोचक हैं जो अपनी सम्मतिको मानापमान का भय छोड कर प्रगट करते हैं, रोगग्रस्त काव्य और अल्पजीवी कविता को अकाल मृत्यु करके साहित्य ससार का अतुलनीय उपकार करते हैं। इनकी भी साहित्य में उतनी ही आवश्यकता है जितनी महेश की सृष्टि में। टेनिशन अपनी एक कविता में यह

स्थानक वर्णन करता है कि इन्द्रने लोककी प्रार्थनापर, मनुष्य और वृक्षादिकों को अमर कर दिया। थोडे ही काल मे इतने वृक्ष और बनस्पति हो गए कि कोई स्थान ही उनसे खाली न रहा। पशुपक्षी इतने बढ गए कि स्थान दुर्गन्धित हो गया। मनुष्य के वृद्धानिवृद्ध होने पर भी, जब कि उनका जीवन निरस, अप्रिय और दु.खद हो गया तब भी मृत्यु नहीं पूछती थी। ससार की ऐसी अवस्था हो गई कि जलचर, नभचर, थलचर सब का जीवन भारभूत हो गया। तब सब लोगों ने पुन जाकर इन्द्र से प्रार्थना की कि हम सबों की अमरता आप ले ले। ससार मे जन्म मरण की जिस प्रकार आपने सृष्टि की थी वह बहुत उत्तम थी। इस कथानक का यह तात्पर्य्य है कि सृष्टि का लय भी उतना ही आवश्यक है जितना उसकी सृष्टि। इसी प्रकार साहित्य मे भी लय की आवश्यकता है। नही तो जैसे तीर्थ स्थानों के सरोवर मछलियों, कछुओं और घडिया लों से दुर्गन्धित, और भयानक हा जाते हैं वैसी ही दशा साहित्य सरोवर की हो जाती। आयरविङ (Irving) कहता है "साहित्य का स्रोत बहकर झरना हो गया—बढकर नदी-प्रसृत होकर समुद्र हो गया----------यदि कोइ आकस्मिक महामारी सरस्वती के सुपूतों में न फेली, जो कि इस समय अत्यन्त प्रसवशील हो गए हैं, तो मैं भविष्य की दुर्दशा पर काप उठता हू। समालोचना बहुत कुछ कर सकती है। यह साहित्य की वृद्धि के साथ बढती है और वह, सन्तान निवारक नियमों के समान हैं। अत यथा सम्भव इसका प्रोत्साहन

करना चाहिये जिसमे समालोचना की वृद्धि हो, चाहे वह अच्छी हो वा बुरी" अयुक्त समालोचना तो निकृष्ट काव्य से भी नीचतर रचना है। और मे काउपर (Cowper) से सहमत हू जब वह जानसन (Johnson) की मिल्टनके कविताकी अयुक्त समालोचना पर कहता है, "ओह ! हम उनकी पुरानी मिरजई को इतना पीटते कि उनकी पिनशिन उनके जेब मे खनकने लगती (Oh ! I could thrash his old Jacket till I made his pension jingle in his pockets)

"एसेइस्ट" का इस विभाग में कौन सा स्थान है यह विचारणीय है। इस विषय के निर्णय करने के पूर्व 'एसे' (Essay) किस प्रकार के लेख को कहते हैं यह जान लेना परमा वश्यक है। 'एसे' लिखने की चाल पश्चिमीय है। भारत के सन्स्कृत और हिन्दी कवियों मे ऐसे लेख नहीं पाये जाते जिन को 'एसे' कहा जा सके। अन्तु 'एसे' किस प्रकार के लेख को कहते हैं इसके लिए पश्चिमीय साहित्यका सहारा लेना होगा

एसे

एसे (Essay) का पर्यायवाची शब्द 'उच्छ्वास' हो सक है। यह उस प्रकार के लेख हैं जिनमे विषय की प्रधानता है किन्तु लेखक की। हम किसी विषय के विषयमें तद्वि सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से एसे (Essay) नहीं पढ़ते किन्तु उस विषय द्वारा कवि के हृदय का परिचय ले हैं। अथवा यह कहिये कि हमको डिटेक्टिव (Detecti रहती है कि यह देखें कि दार्शनिक सा यह ...

उक्तविषय से कैसा प्रेम या वैर है, उसको वह अपने हृदय में कौन सा स्थान देता है। उससे वह प्रसन्न है वा रुष्ट है। ओरलेन्डो सा प्रेमपत्रिका वृक्ष के पत्रों पर लिखता फिरता है या पुरुरवा सा उसके विषय में वृक्षों और वनचरों से वार्ता पूछता घूमता है अथवा वाल्मीक सा मर्य्यादा पुरुषोत्तम की प्रशंसा में मुग्ध हो कविता की सृष्टि का सरिता बन प्रवाहित हो जाता है। जब कभी संसार से दुखी काउपर के कथन को हम पढ़ते हैं अथवा गोल्ड्समिथ को बड़े आदमियों की निन्दा करते सुनते हैं उसी प्रकार 'इयागो" (Iago) की नीच नीति अथवा चाणक्य की कुटिल नीति पर कुढ़ते हैं उस समय पाठक कवि के हृदय में घुस जाता है और यह देखता है कि कवि के हृदय पर उस विषय का किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है। यदि हम यह न जान सके कि कवि वा लेखक की उस विषय पर क्या सम्मति है तो हम सब उस विषयका एसे नहीं पढ़ रहे हैं किन्तु कुछ और ही प्रबन्ध वा निबन्ध।

जगत—नाटक की छाया जो कवि के हृदय पट पर पड़ती है उसी की तस्वीर एसे (Essay) है अथवा संसार संगीत का लेखक कृत ग्रामोफान का रिकार्ड (Record) है, भेद केवल इतना ही है कि तस्वीर और रिकार्ड में वाह्य—उद्बोधक का फल प्रदर्शित होता है उससे कुछ अधिक नहीं, किन्तु (Essay) में मानों वह कवि अपने हृदयपर जो तस्वीर खिचती है उसके विषय में अपनी सम्मति प्रगट करता है, रिकार्ड (Record) की संगीत की प्रशंसा वा निन्दा करता है, और इसमें वह

बिलकुल स्वच्छन्द है, न राजा का डर है और न मित्रों की परवाह है। न प्रशंसा की इच्छा है और न निन्दा का भय है। न आपके हँसने से वह लज्जित होगा और न आपके कुढ़ने से वह चुप होगा। वह पैगम्बर सा है जो अपनी सी कह ही डालेगा चाहे आप उसके अनुचर बने चाहे अजात शत्रु।

'एसे' किसी विषय का संक्षिप्त विवरण नहीं है, न उस विषय की कुञ्जी ही है और न उस विषय का आवश्यक इतिहास ही है। किन्तु नाटक का एक दृश्य है जिसमें विषय नायिका है और कवि लेखक उसका नायक अथवा उपनायक है। और हम सब दर्शक हैं, उसकी स्वाभाविकता, निश्छलता और निष्कपट व्यवहार हम दर्शकों को आनन्द देते और वास्तव में उसी को देखने 'एसे' के रङ्ग भवन में जाते हैं।

इतिहास

हेनरीमोरली (Henry Morley) कहते हैं कि "एसे" (Essay) लेखकों का इतिहास आधुनिक साहित्य में, मानटेन (Montaigne) से आरम्भ होता है और बेकन (Bacon) तक प्रचलित हो जाता है। दोनों ही ने एसे (Essay) शब्द को युक्त अर्थ में प्रयोग किया, अर्थात् किसी भाव का साहित्य—विभाग। बेकन का एसे मानव—जीवन के, विविध रूपों से सम्बन्ध रखता है, जिसमें वह सामाजिक प्रभाव का पूर्ण ध्यान रखता है मानटेन (Montaigne) के एसे मनुष्य के आध्या त्मिक जीवन से [illegible] है। साधारण मानव

नहीं, किन्तु एक मनुष्य के जीवन से, जिसे वह पूर्णरूपसे जानता था अर्थात् आत्मीय जीवन। मानटेन कहते हैं कि हमने अपने ही को लिखने का विषय निर्धारित किया, क्योंकि मैं अपने ही को पूर्णतया जानता था। इसका कारण यह था कि न ता उस समय बहुत पुस्तकें थीं और न उसकी कोई मित्र मण्डली थी। बेकन के विषय गम्भीर थे क्योंकि उसका समय ही गम्भीर और ओजस्वी था। स्टील (Steel) और एडिसन (Addison) सभ्य समाज के लिए लिखते थे, उनके विषय अधिकतर तुच्छ थे और सामाजिक व्यङ्ग से पूर्ण थे।

लेम्ब (Lamb) हेजलिट (Hazlitt) और हन्ट (Hunt) इनके विषय—संसार विशेष विस्तृत थे और प्रधान लक्ष्य इनका यह था कि विषय ऐसा हो जो सार्वजनिक हित का हो।

एसे के विशिष्ट गुण

पश्चिमीय एसेइस्टों के पढने से कतिपय विशेपताएँ प्रगट होती हैं जो 'एसे' को इतर प्रबन्ध वा लेखोंसे पृथक करती हैं।

(१) ये लेख छोटे होते हैं जिनको पाठक विश्राम समय में सुगमता से समाप्त कर सकते हैं।

(२) ये लेख, चित्र के समान होते हैं न कि कथा के समान। ये विषय के अङ्गों को सूचित वा उद्बोधित करते हैं न कि गणित सा प्रमाणित करते हैं। अपूर्णता इनका प्रधान अङ्ग है।

(३) विषय के उल्लेखमें गम्भीरता का आडम्बर न होना चाहिए

प्रत्युत उसमे सुगमता, सरसता और सरलता होना आवश्यक है, जिसमे पाठक को यह न विदित हो कि वह किसी विशिष्ट पूजनीय व्यक्ति की उक्तियों को पढ रहा है। किन्तु उसका यह प्रतीत हो कि कोई सुगठित सुहृद मित्र अपने हृदय की ग्रन्थियों को विश्वस्त रूप से खोल कर दिखा रहा है। वह लेख "एसे" हो ही नही सकता जिसमे लेखक के अनुभव, उसके भाव, तद्विषयक उसका प्रेम वा वैर न प्रगट हो। 'एसे' का परम धर्म यह है कि वह हृदय की तन्त्रियों को ध्वनित करे, न कि बुद्धि को अचम्भित अथवा मुग्ध करे। इसका तात्पर्य्य यह नही कि लेख ज्ञान शून्य हों, किन्तु ऐसे हों जो हमें सुहृद मित्र सा समझावें बुझावें न कि तार्किक सा प्रमाण द्वारा सिद्ध करें, साराश यह कि यह लेख एक कविता से हैं जिसमें कवि की 'सोगी उसास, हृदय विदाही आह, अथवा उल्लास को देख हम सब उसकी अवस्थामें परिवर्त्तित हो जाते हैं।

(४) यद्यपि 'एसे' की लेखन प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसमे आशुना झलकता हो। किन्तु इसका तात्पर्य्य यह नही है कि बिना विचार किए हुए उस विषय का उल्लेख किया गया हो। इसी विशेषता के विषय मे मानटेन (Montaigne) कहता है "मैं कागज से बोलता हु जैसे किसी मनुष्य से जिससे प्रथम समागम हुआ हो"। इन लेखों से यह भी नही प्रदर्शित होना चाहिए कि लिखने में बडी काट छाट वा तराश खराश किया गया है। उनका रूप वैसा ही होना चाहिए जैसा कि कालिदास शकुन्तला के विषयमें कहते हैं।

सरसिजमनुविद्ध-शैवलेनापिरम्य
मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।
किमिवहि मधुराणा मण्डनम्माकृतीनाम्।

स्वाभाविकता इतनी हो कि जैसे तपोभूमि में मृग विश्रब्ध रूप से तपस्वियों के निकट चले जाते थे वैसे ही एसे के पाठक भी निःशंक लेखक के विचारों का अनुभव करें। यदि उसकी वाणी ऐसी हुई कि हमको बाणभट्ट सा अचम्भित कर दिया या बेकन वा पतञ्जलि सा अवाक्, तो वह एसे की भाषा अथवा लेखन प्रणाली नहीं है।

एसे की लेखन शैली तो वह है जो कवि चूडामणि बिहारी निम्न दोहे में शृङ्गार के विषय में लिखते हैं।

बेंदी भाल तमोल मुख, सीस सिलसिलेवार।
दृग साँजे राजे खरी साजे सहज सिंगार॥

उसकी लेखन शैली वैसी नहीं चाहिए जो (Goldsmith) गोल्ड्स्मिथ शृङ्गार के विषय में कहता है

But when charms are past for charms are frail
When time advances and when lovers fail
She then shines forth solicitous to bless
In all the glaring impotence of dress

अर्थात् जब मनोहरता प्रस्थान कर जाती, क्योंकि वह क्षणिक है और अवस्था अधिक हो चलती और प्रेमी कम हो चलते तब वह दर्शकों की प्रशंसा के अर्थ नेत्रों को चकाचौंध करने वाले वस्त्रों से विभूषित भासमान होती है यद्यपि वे शृङ्गार निष्फल होते हैं।

एसे का साहित्य में स्थान

अत एसेइस्टों को साहित्य संसार में विष्णु का पद देना चाहिए क्योंकि यह कोई नवीन शास्त्र की अथवा नवीन

कल्पना की सृष्टि करने वाले नहीं हैं किन्तु एक नवीन लेखन शैली से साहित्य सुन्दरी के अङ्गाभरण की पूर्त्ति करते हैं और यह पूर्त्ति इतनी आवश्यक है कि कोई साहित्य सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं कहा जा सकता जिसमें एसेज न लिखे गए हों। यद्यपि एसेज का लिखना प्रत्येक कालिज के विद्यार्थी को सिखलाया जाता है किन्तु वास्तव में जिसको एसे कहते हैं उसका लिखना अत्यन्त ही कठिन है।

उपाध्याय जी के एसेज़

समालोचक की दृष्टि से उपाध्याय जी के भी लेख इस अर्थ में एसेज नहीं कहे जा सकते क्योंकि स्थान स्थान पर वे गम्भीर हो जाते हैं और अलङ्कारों से इतने सुन्दर और मनोहर हो जाते हैं कि वह सरलता और स्वाभाविकता के भाव उत्पन्न करने के स्थान पर मुसव्विरी और कारीगरी द्योतन करते हैं और पाठक उनकी कवित्व शक्ति से मुग्ध हो जाता है, जो मैं कह चुका हूं एसेज में नहीं होना चाहिए।

किन्तु वह लेखक जो ऐसे साहित्य के लिए लिख रहा था जिसमें अलङ्कारों की बड़ी प्रशंसा है उसके एसेज में यह दुर्गुण आना स्वाभाविक था और मेरी समझ में वह दुर्गुण होने के अतिरिक्त गुण है क्योंकि इस प्रकार के लेख में भिन्न रुचिवाले पाठकों की तुष्टि की सामग्री उपस्थित है। कुछ लेख इसमें बहुत बड़े हो गए हैं यथा आनन्द, मन, मोह इत्यादि और साहित्य नियमानुसार एसेज बड़े नहीं होना चाहिये। किन्तु पाठक स्वयं विचार करें कि यद्यपि इन विषयों के प्रत्येक अङ्ग को लेखक ने नहीं प्रदर्शित किया तब भी ये इतने विस्तृत हो गये। कारण यह है कि जब विषय ही विशद है और अनन्त विचार की सामग्री उपस्थित कर देता है तब

समालोचक लेखक को क्षमा करेंगे यदि लेख, नियमोलङ्घन कर कुछ बृहत् आकार के हो गए हैं।

प्रश्न यह उदय होता है कि तब यह लेख माला क्यों एसेज की कक्षा में रखी जायँ ? इसलिए कि एसे के प्रधान दो गुण इनमे वर्तमान हैं। एक तो यह कि सम्पूर्णता का इनमे अभाव है, प्रत्येक अङ्ग किसी विषय का पूर्ण रूप से नही वर्णित है। केवल उन्ही अङ्गों पर इनमे उल्लेख है जिस पर एसेइस्ट अपने भावों को प्रकट करना चाहता है। सर्व प्रधान लक्षण एसे का यह है कि उसमें लेखक का आध्यात्म जीवन, उसका, तद्द विषयक भाव उल्लिखित हो वह अपने हृदय को खोल कर और अपने पाठकों में विश्वास करके अपने ऊपर जो बीतो है उसका उल्लेख करे यह दोनो प्रधान गुण सभी लेखों में वर्तमान हैं इससे इन लेखों को एसेज के अतरिक्त और कोई दूसरी संज्ञा देना, एसेज की लेखनशैली से अनभिज्ञता दर्शित करना होगा। देखिए, क्या हम आप इस प्रकार अपनी हृदयग्रन्थि खोलेंगे जैसा उपाध्यायजी का सरलस्वभाव लेखनी द्वारा प्रगट करना है "मैं बचपन से रूप वा सौन्दर्य्य का उपासक था चाहे वह प्रकृति में वा दैवात् मनुष्य में हो। इसी के आखेट में आखें अचानक एक ऐसे रूप के जगल मे फस गई कि मैं उन्हे बाजों के सदृश लाख बुलाया पर वे कुछ न सुने। उसी समय से कुछ ऐसा प्रेम का नशा भरपूर चढा कि सिवाय उस निष्ठुर रूप के और कोई रूप आखों मे भला नही लगता था" पृ० २१ द्वितीय भाग। यह भक्तियोग के पूर्वाङ्कुर का बडा ही अपूर्व वर्णन है। पाठक स्वय पढ कर निहाल हों।

ऐसेइस्ट और लेखक

हरिश्चन्द्र उपाध्याय जी के लेख वा एसेज की किसी पश्चिमीय एसेइस्ट से समता देना असम्भव है। बेकन (Bacon)

में और उपाध्याय जी में बड़ा अन्तर है। बेकन की उक्तियां गम्भीर हैं और सूक्ष्म हैं किन्तु हृदय उसका भक्त नहीं है इस से उसमें वह पवित्रता और स्नेह नहीं है जो हम सच साहित्य हृदय के 'भक्तियोग' और 'सन्यास योग' में पाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बेकन मेघनाद सा आकाश में अन्तर्हित ऐसे बाण मारता है जो एकही बाणमें मोहित करने में पर्य्याप्त है किन्तु हम उस वीर को देख नहीं सकते, वह रामचन्द्र सा नहीं है जिसकी वीरता चर्मचक्षुओं से दिखाई पड़ती है। यदि बेकन की आत्मा हेनरी आयरविंड (Irving) के शरीर में घुस जाती और वह वर्डसवर्थ (Wordsworth) से शिक्षा पाती और काउपर और एडिसन सहपाठी होते और विद्योपार्जन के पश्चात् वह परमहंस रामकृष्ण से दीक्षा पाता तो उसकी लेखनप्रणाली उपाध्याय हरिश्चन्द्र सी होती। तात्पर्य्य यह कि उपाध्याय जी की लेखनशैली हेनरी आयरविंट सी है किन्तु कुछ विषय तो बेकन से हैं यथा, आनन्द, बदला, क्षमा, सन्तोष, प्रेम, धैर्य्य इत्यादि, कुछ काउपर या लेम्ब से हैं यथा 'हमारी कुटी, श्री शीतलगञ्ज की जन्माष्टमी, दिनचर्य्या इत्यादि, और कुछ विषय ऐसे हैं जिन पर वर्डसवर्थ यदि जीवित होते तो इन्हे अपना परम मित्र मान लेते। यथा आषाढ, शरद, ज्येष्ठ।

लेम्ब (Lamb) तो एसेइस्टों का मौलि मुकुट समझा जाता है और इसमें सन्देह नहीं कि वह पाठक में पूर्ण विश्वास करके अपने हृदय ग्रन्थियों को खोलकर दिखाने लगता है किन्तु प्राय उसके विषय इतने सामान्य होते हैं कि उनके उच्छ्वासों का चिरकालीन प्रभाव हृदयपट पर नहीं पड़ता। हरिश्चन्द्र जी के लेख इस त्रुटि से शून्य हैं उनकी कोई न कोई बात

प्रत्येक लेख में आपके हृदय पट पर स्थाई रूप से वर्तमान रहेगी।

जिस प्रकार लेम्ब (Lamb) और काउपर (Cowper) अपने पाठकों को समझते हैं कि वह उनके भावों में वा दशा में अवश्य प्रीति और सहानुभूति रखते हैं उसी प्रकार हरिश्चन्द्र जी को भी पाठकों के सहानुभूति और स्नेह में अटल विश्वास है नहीं तो 'हमारी कुटी" 'हमारी दिन चर्य्या।' 'हमारी मसहरी' इत्यादि लेखों के लिखने का साहस न करते। जिस प्रकार लेम्ब (Lamb) और काउपर (Cowper) की आत्मकहानी में आप अहंकार का लेश नहीं पाते किन्तु समझते हैं कि कोई सुहृद मित्र विश्रब्ध रूप से अपनी अवस्था वा अनुभव का वर्णन कर रहा है वही ठीक भाव हरिश्चन्द्र जी की आत्म कहानी में उदय होता है। पाठक यह नहीं समझता कि इन लेखों का लेखक लेन्डर (Landor) सा अभिमानी है जो अपने सामने किसी कवि वा लेखक की गणना नहीं करता। यथा "ज्येष्ठ" (द्वितीय भाग पृ १३)

परन्तु मेरी कुटी तो महात्मा योगी सी है जिसके साथ सत्संग करते ही जगत के संसर्ग से उद्विग्न और संतप्त मनपवन, क्षण के क्षण में सुखी और शीतल हो जाते हैं।" ------
यथा 'हमारी कुटी' (द्वितीय भाग पृ. ८४)

"मेरी ज्ञानी और सन्तुष्ट कुटी कभी भी महल रानी वा नगर महारानियों का स्वप्न नहीं देखती।"

यथा "मैंने जिस दिन से यह निश्चय कर लिया कि सन्तोष से परे कोई सुख नहीं है, सच मानिये कि तबसे नक्षत्रोंसे देदीप्यमान बादशाह और शाहनशाह तथा क्षुद्र जुगुनुओं से चमकते बड़े आदमी लोग, लोभ और तृष्णा की अग्निज्वाला में सतत दीख पड़ते हैं और हम सुखी तथा च शान्त हो इस अन्तर

का अनुभव करते हैं और कभी २ मस्ती में आ यह भी कह बैठते हैं कि यह लोग तो हम से बहुत पीछे हैं यद्यपि नाम में बड़े" (पृ १०३ प्रथम भाग) ।

इन सब के पढ़ने से आप लेखक को या तो एडिसन (Addison) सा ह्यूमरिस्ट (विनोदप्रिय) समझ सकते हैं अथवा सन्तुष्ट मनुष्य के तुष्टि सूचक भाव इनको समझ सकते है, अभिमानी अथवा अहंकारी होने का लाछन कभी भी नही लगा सकते।

उपाध्याय जी की आस्तिकता मानटेन (Montaigne) सी है किन्तु पश्चिमीय लेखक का आध्यात्मिक ज्ञान किसी प्रकार आर्य्यावर्तनिवासी के निकट नहीं पहुंच सकता क्योंकि उधर आध्यात्म पर ध्यान अभी दिया ही न गया और न वे लोग इस पर सर्वसम्मत हैं कि इस क्षेत्र में भी अनुभव और अन्वेपण के विषय हो सकते हैं।

प्रकृति और लेखक

प्रकृति उपाध्यायजी की वैसही उपास्य देवी हैं जैसे वर्डसवर्थ की। भेद केवल इतना है कि वर्डसवर्थ की वह Be all and end all सर्वस्व है, उसके लिए प्रकृति के पीछे कुछ नही है किन्तु लेखक के लिए "कोई माशूक है उस पर्दए ज़ङ्गारी में" इनके लिए प्रकृति की सुन्दर और मनोहर छटा एक उदाहरण है उस जगत के स्रष्टा के सौन्दर्य्य और मनोहरता का।

जब यह प्रकृति की छटा को निरखने जाते हैं तो वह इस लिए इनको प्रिय है क्योंकि उसकी छटा उसके सिरजनहार के निकट ले जाती है जैसा कि (Milton) मिल्टन कहता है।

वितरण कर, आप नग्न खडा है और पुनरपि लोक को अन्य कामनाओं से सन्तुष्ट करने के लिए, तप सा कर रहा है वा योगियों सा सकल कामनाओं को त्याग, भगवान मातरिश्वा के हर हर जपने पर प्रत्यक्ष आनन्दाश्रु रूपी पुष्प निपात कर रहा है वा यह समझ पडेगा कि इसने अपने पत्रों को होलिका के लिये गिरा दिया और नवीन वर्षारम्भ के हर्ष में अरण्य निवासियों को किशमिश बांट रहा है"। पृष्ट ६४ (प्रथम भाग)

उपाध्याय जी केवल प्राकृतिक छटाओं के अनुभवी रसज्ञ नही थे किन्तु प्रकृति के वन्दी विशारद और गुणी गायक पक्षि कुल के भी ज्ञाता थे। देखिए निम्न उद्धृताश में क्या ही सुन्दर पक्षि कुल के संगीतसमाज के एटिकेट (शिष्टाचार) का वर्णन है। कवितामय होते हुए भी मिथ्या नहीं है। सत्य होते हुए भी परम सरस और अनुपम कल्पना है।

"सामा, दहिगल और दामा के मधुर राग को सुन, देखता कि ईर्षी महोख महाशय भीमसेन सा मारे प्रसन्नता के अपनी लम्बी पूछ को हिला हिला कर, गाने लगते और सब अच्छे गाने वाले इस दुष्ट विवादी सुर को सुन मौनावलम्बन कर लेते जिस वेलुत्फी को देख, विचक्षण शुक हस कर, कहने लगता कि भ्राता महोख! तुम्हारी संगीत को सुन कर तो हमे भी गाने की इच्छा होती है और सत्यत विधि को उलहना देने में लज्जा लगती है क्योंकि तुम से तो उसने हमारा ही स्वर अच्छा बनाया, जिसे सुन कौतुक प्रिय कोइल कुहू कुहू कर उसे चिढाने लगती। इस दिल्लगी को देख टिटिहरी खिल खिला कर हस पडती और इस प्रकार अपमानित हो महोख मारे लज्जा और ब्रीडा के कानन के किसी गूढ अन्तर में जा छिपता। वहा किलहने उसे, आश्वासन देते हुए कहते कि मित्र महोख! तुम क्यों ऐसे उदास हो गए हो? चलो हम अभी एक तान

मैं सब को चुप कर देते हैं और यह कह वे बगाली भाशाओं से आपस में काय २ करने लगते और सब चिडिआएं यह कुचोद्य सुन विविध दिशा में प्राण पूजा के अर्थ प्रस्थान कर जातीं।"

उपाध्याय जी का फूलपत्तों का ज्ञान तो सामान्य जनों से इतना अधिक है कि उनका इनके वर्णनों का पूर्ण स्मारस्य मिलना दुस्तर है किन्तु उनकी उपमाएं ऐसी निपुण चित्र कारिणी हैं कि पाठक को पुष्पों की शोभा फिल्म (Film) सा दिखा देती हैं। यथा—पृ १४७ प्रथम भाग

"इस तौर पर देखतेदिखाते गुलाब वाडी मेंजा पहुचे तो देखते हैं कि सब के सब अपने सौन्दर्य्य रूपी उपायन के सहित पुष्प कोष में ओस जलाञ्जलि लिए सूर्य्य को देने के अर्थ खडे हैं या यह कहें कि सुन्दरियों के रूप की यहा प्रशसनीय प्रदर्शिनी है क्योंकि यदि मसलिन मिसों सी माहतो तो पालमिरन प्रशस्त प्रौढ पजाबिन या प्रकाण्ड मोगलानी वा मोटी गोरी चिट्टी स्थूल काय बडी आंख वाली बगालिन सी, तो बम्बई गुलाब कशमीरिन सा लख पडता और इन सुर्ख मखमली गुलाबों की उत्पत्ति तो ताम्बूल खाए हुई मुस्कुराती सुन्दरियों से जान पडता है क्योंकि कवि ज्योतीषी यही बताते हैं।"

"अंगरेजी फूलों की पंक्तियां तो किसी सम्पन्न नगर के जौहरियों की वीथी सी है। क्योंकि फलाक्स यदि लाल की ढेर लगाए हैं तो लकिस्पर ने नीलम की खानि ही खोल दी है जिसे देख एन्टर्हिनम ने जवाहिर की दूकान लगा दी और पेनजी तो इन्द्र सा सहस्रों चक्षु कर इन सबों की शोभा देख रहा है"।

इनकी प्रकृति इतनी प्यारी है कि पहिनाव ओढाव भी तदनुसार करना ही इनको रुचता है। फाल्गुन के लेख में लिखते हैं।

"हम आर्य्य जन तो कुछ ऐसे प्रकृति के उपासक हैं कि यदि वसुमती पक्के शस्य मिस पीत वस्त्र धारण करती, तो हम सब भी बसन्ती वेष धारण करते, जब यह पृथ्वी तृण परिच्छद को उतार नितान्त धवलित श्वेत पुष्पों की साडी पहिनती तो हम सब भी चाँदनी सा श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, योंही जब वर्षा में सारा जगत हरितमय हो जाता तो धानी, जमुर्रदी, कपासी और गधकी रग हमारे घरों में देखाई देता। शरद वा हेमन्त में जब हमारी पृथ्वी कहीं पीली कहीं सुफेद और कहीं सुर्ख हो जाती तो हम सब भी अनेक रंग के बेल बूटे वाली छीटें पहिनते" फाल्गुन (प्रथम भाग पृष्ठ ९८,९९)

अलङ्कार और लेखक।

लेखक को उपमा, उपेक्षा और विरोधालङ्कार बडे ही प्रिय हैं। इन तीनों अलङ्कारों में इतनी नूतनता है कि लेखक की कल्पना शक्ति मनुष्य को मुग्ध कर देती है। उदाहरण के अर्थ कुछ उद्धृत करना अनुचित न होगा।

(१)

लम्बे २ शाल वृक्षों के ऊपर मेघमाला की काली रेखाओ प्रतिक्षण ऊँची हो रही है ऐसी जान पडती है मानो प्रकृति छाया-चित्रकारिणी ने इन ऊँचे प्रशस्त शाल वृक्षों की तस्वीर लेने के लिए काला पर्दा लटका रखा है।

(२)

बलाहक शार्दूल को वायु सर्कसवाले ने गगन पिंजरे से

बाहर निकाल और विरुद्ध आचरण पर विद्युत दण्डाघात करता है और वह क्रुद्ध हो घुर घुरा रहा हैं।

पृ० ८३ प्रथम भाग

(३)

या यह कहें कि सूर्य्य किरण रूपी महावाराह, डूबी हुइ इस पृथ्वी को अन्धकार मय-समुद्र से उद्धार कर रहा है या ऐसा समझें कि वसुमती देवी का आनन जो अन्धकार घुंघुट से ढपा था सूर्य्य दुलहा अपने हाथों से हरक्षण में खोल रहा है।

पृ० १४६ प्रथम भाग

(४)

कास के विकास मिष जटिल तपस्वी सा, नदियों के निर्मल और शान्तता से नहाने के मिष जोगियों सा, जलपक्षियों को इस ताल से उस में भेजने के मिष कसना सा, प्रात काल वृक्षों से हिमाश्रु गिरा प्रिया से विरहित प्रमी सा, करवनों को सुस्वादु फल से सज्जित कर पक्षियों को सदावर्त बांटने मिष नृपति सा शरद- - इसका वर्णन क्याही अनुपम, नवीन, मनोहर और विशदहै कि पाठक स्वय पृ० २०४ और २०५ (प्रथम भाग) में पढ कर उनका कल्पना शक्ति से मुग्ध हों। विशेप उद्धृत करना अनुचित मालुम पडता है।

(५)

"ज्येष्ठ क्रूर लोभी नृपति सा, नदी, सरोवर तडाग और अनेक जलाशयों के जल सम्पत्ति को नि शेप लूटने हुए भी सन्तुष्ट नहीं होता और नित्य ही कलक्टर सा तहसीलदार सूर्य्य को घुड़कता कि वे अपने अंशु सिपाहियों को ताकीद करें कि आर्द्रता सम्पत्ति कहीं से वसूल होने को पडी न रह जाय।"

पृ० ६ द्वितीय भाग

(६)

"नूतन पत्रावलियों से सपन्न जम्बू, शाल, करवन, और कुसुम इत्यादि के देखने से यह जान पडता मानो ...भगवती कालिन्दी हलधर के त्रास से वृक्षों के रूप में यहा विचर रही हैं"।

(७)

अपनी कुटी के एक छोटेसे जगल का वर्णन करते हुए क्या ही विरोधालङ्कार की भरमार करते हैं।

"सहस्रों वल्मीकों को उत्पादन करते हुए भी वाल्मीक नहीं, सहस्रों भयावह सर्पों को निज तन में लपेटते हुए भी भगवान शकर नही, प्रिय दर्शन होते हुए भी भयावह, शाल वृक्षों को पालते हुए भी सालों का पालने वाला नहीं, पलाश दण्ड धारी पर ब्रह्मचारी नहीं, लवकुश उत्पादन करते हुए भी भगवती सीता नही, मशकों का प्राचुर्य रखते हुए भी मशकवाला नहीं।" पृ. ८७ भाग द्वितीय

(८)

"हे आत्मा यदि तू उस परम परमात्मा से मिलना चाहती है तो सत्य की चूनर पहिन, विवेक का सिंदूर माग में भर, विद्या देवी से विविध आभूषण खरीद और श्रद्धा की खुशबू लगा, उत्कण्ठा की माला पहिन, तब तू उस परम पवित्र देश में बिना रोक टोक के जा सकती है"। पृ० १०५ द्वितीय भाग।

(९)

—फाल्गुन का क्या ही मनोहर और कवितामय वर्णन है कि शृङ्गाररस-द्रोही नवीन रोशनी वालों के कलेजे में फफोले पड जायँ।

"जब कि प्रेम के अतिरिक्त मन व्यापारी इतर व्यापार ही नही करता, जब परस्पर गाली प्रदान केवल प्रेम से होता

न कि द्रोह से,, जब कि निरन्तर कुसुमायुध के बाण चलते न कि लौह के,जब कि अश्रुपात विरह से, न कि दुःख से, जब कलह प्रेम से होता न कि द्वेष से, वज्रपात बनिता अपाङ्ग दृष्टि से होता, न कि वज्रपाणि वा मेघ से , जब नेत्र खञ्जरीट केवल कुन्तल पाश में फंसाये जाते, जब काम के अतिरिक्त अन्य उपास्य देव रहते ही नहीं, जब पयोधर ही पर शिवार्चन होता, अमृत प्रियतमाओं के ओष्ठ में ही आवसता, विद्या उनकी क्षुद्र घन्टिका में और ज्ञान विविध कटाक्षों में, सोमलोक उनके मुस्कुराते मुख और सूर्य्यलोक उनके भाल की बेंदी में और परम सुख और उत्तम सराहना बुरी से बुरी बातों में मानी जाती।"

पृ० ६६ (प्रथम भाग)

समाज और लेखक

लेखक को समाज के नये परिवर्तन से इतना विरोध नहीं है जितना उसके अध परिवर्तन से। प्राचीन अच्छी अच्छी रीतियों और चालों को बिना समझे बूझे, नवीन विदेशी रीतों से सन्निवेश करना उन्हें अप्रिय है वह कहते हैं "यद्यपि यह पश्चिमीय विद्या न केवल धर्म को कर्पूर सा उडाती जाती है, परञ्च भारत के सब त्यौहार और मंगल दिवसों को भी श्वेत राक्षसी सी नित्य निगलती चली जाती है,जिसका मुख्य कारण केवल हम लोग में संस्कृत विद्या की अनभिज्ञता ही मानेंगे। वही मनुष्य वा देश बुद्धि, विद्या, चाल और रहन सहन का अनुकरण करेगा जो स्वयं इनमें दरिद्र होगा, परन्तु विचारिये तो यह भारत सब देशों का पितामह-गुरू, विद्या और बुद्धि का दाता प्रमाणित हो चुका तो सचमुच शोचनीय विषय है कि ऐसे उत्कृष्ट देश के सदाचार को छोड, बिना चिरकाल चिन्तन किये, लोग उनकी चाल का अनुकरण करते जिनको

अभी सैकड़ों वर्ष चाहिये कि वे हम सब के से सभ्य हो। परन्तु अंग्रेजी नामटर लोग, जैसा कि अद्वितीय वाग्मी वर्क कहता है, कि 'बाप दादों को छोड देना परम कर्तव्य समझ कर फ्रान्सीसियों ने सब उलट पलट दिया।' यों ही ये सब प्राचीन वस्तुओं का त्याग, स्वधर्म का तिरस्कार, संस्कृत शब्दों से अपरिचित रहना ही उचित मानते और यूरोपियन सा इस भाषा से अनभिज्ञ रहना पश्चिमीय विद्या का परम फल समझते हैं।"

विवाह

आज कल के विवाह प्रथा को बडा ही बुरा समझते है उसका उत्पात जो समाज पर होता है उसका अच्छा चित्रण विवाह के लेख में पाया जाना है। यूरपीय विवाह की प्रथा को भी आप अच्छा नही समझते और भारत प्रचलित प्रथा के पक्षपाती हैं। आप कहते हैं (पृ ६७ प्रथम भाग) 'सभ्य शिरोमणि यूरोप निवासी वर वधू के परस्पर गुण कर्म स्वभाव की परीक्षा पूर्वक प्रेम स्थिर करते, और विवाह बन्धन से परिबद्ध होने में बरसों लगाते हैं, क्योंकि वहा वर वधू के माता पिता विवाह सम्बन्ध स्थिर करने का दायित्व कुछ भी अपने ऊपर न लेकर निज सन्तान के सिर पर छोड देते हैं। वास्तव में एक छोड दो दो मनुष्यों की रुचि, पूरी परख कर के आजन्म उन दोनों का सम्बन्ध जोड देना कैसा कुछ कठिन कार्य है, यह विचार ने ही से सम्बन्ध रखता है। हमारे देश के माता पिता ने जो यह दायित्व अपने सिर लिया कदाचित् उसका यही कारण था कि उन्हों ने केवल अपनी अनुभव हीन भोली भाली सन्तान की कोमल बुद्धि पर इस भारी भार को सौंप देना उचित नहीं जाना, क्योंकि सुकुमार अवस्था में सामान्य रूप यौवन पर आसक्त हो आजन्म के लिये अयोग्य प्रेम बन्धन में बध जाना, मनुष्य के स्वभाव से सहज सुलभ समझा और इस

प्रकार हीन कुल के सम्बन्ध से निकृष्ट सन्तान होना और उस से परम्परागत कुल मर्य्यादा के नष्ट होने के भय से वे सर्वथा उदासीन न रह सके। तथापि ऐसा कदापि न था कि वे वर वधू की रुचि वा उनके रूप गुण, शीलता पर कुछ भी ध्यान न देकर निज मनमानी कार्यवाही कर, उनके आजन्म दुख के कारण होते थे, किन्तु खेद पूर्वक कहना पडता है, कि आज कल प्राय सर्वथा उसके विरुद्ध वर्ताव होता है।

इस सप्रति प्रचलित प्रणाली से उनका हृदय कितना दु खी और त्रस्त है उन्हीं के शब्दों में सुनिए। पृ ७१ प्रथम भाग

"यद्यपि स्त्री के विना पुरुष का कार्य चलना तो सर्वथा असम्भव है, तौ भी ऐसे विवाह कर देने से लडकों को विना ब्याहे कुमार ही रख छोडना कहीं उत्तम है। क्योंकि वह सर्वथा स्वाधीन तो रहता और निज माता पिता द्वारा ऐसी आजन्मग्राही विपत्ति में तो नहीं फसाया जाता कि जिससे निकलना सर्वथा असम्भव होता और उसका जीवन ही नष्ट प्राय हो जाता है। रहो यह कि विवाह का सम्बध किस भाति से उत्तम हो सकता है, सो पुराने समय की चाल यानी स्वयंवर की प्रथा, जो निश्चय सर्वोत्तम थी, छेडना हम व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि जो चीज अब कभी नहीं हो सकती, उसके लिये लिखना या बकना उलटी धारा बहाना वा वायु पर शस्त्राघात सा करना समझ पडता है, नहीं तो उसमें सब सम्बन्धी, योग्यवर एकत्रित हो दुलहिन को पसन्द करके स्वीकार करते थे। हम यह भी नही कहते कि गुरुजन सर्वथा अपने ऊपर से, इस का बोझ फेक दें परन्तु वे कदापि कुछ भी असावधानी न करें। क्योंकि प्रचलित प्रणाली में यदि सयोगात् कहीं विधि मिल गई अथवा अन्धे के हाथ बटेर लग गई

तब तो कुछ पूछना ही नहीं है नित्य ही घर में नया उत्सव है, नित्य ही एक नये प्रणय का उल्लास देखने मे आता और नित्य नए आनन्द हाथ लगते हैं। नित्य ही दम्पति सारे ससार के दुखड़ों पर फिटकार देते हैं। वह कहता कि प्यारी! भगवान् तुम्हे जिलाये रक्खे और हमारी प्रीति तुम पर यों ही दृढ रहे तो हम ससार की छुद्र चिन्ताओं पर लात मारते हैं। जिन वचनों को सुन वह हँस पडती और वे कृत कृत्य हो जाते। और जब यों प्रीति का फल प्रगट हो जाता, तब उनके प्रेम कुछ अद्भुत हो जाते है, और वे ससार के सारे झमेलों के सहने के लिये सन्नद्ध रहते हैं और दोनों चैन से अपनी जिन्दगी के छोर पर चले जाते हैं, किन्तु यदि कुन्डली ही मिली हो और रूप गुण शील के विरोध में दिल न मिला तो कौन कौन और कैसी कैसी आपत्तिआ पडती हैं, यह कदाचित अब आप सब के समक्ष है।"

"सत्यमुच वह एक कर्तव्य शून्य मनुष्य हो जाता, क्योंकि यावत् कृत्य मनुष्य इस ससार में करता है वह सब उन्हीं इन्द्रियों ही के हेतु करता है और जब इन्हीं से कोई दृढ वासना न रहा तो फिर वस्त्र कैसा, अलकार कैसा, मकान कैसा, संसार की कोई फिक्र कैसी, क्योंकि उन्हे कोई कहने वाला नहीं कि आप क्यों व्यर्थ बैठे हैं, कुछ करते क्यों नहीं, आपके लडके क्या खायगे, और आपका कौन सा सुख समझेंगे। सो निश्चय यह सिद्ध होता है कि यदि किसी की गृहणी यदि दुष्टा हुई तो न केवल उसके एक बडे भारी आनन्द का मूलोच्छेद करने वाली, न केवल उसका घर अरण्य तुल्य करने वाली और न केवल अपने वाक कलह से सारे कुटुम्ब को वैरी बना देने वाली, वरञ्च उसके इस अमूल्य जीवन को योंही निष्फल कर देने वाली होती है"।

कवि

आज कल के राज कवि और उनके पोषक राजाओं पर उपाध्याय जी (पृष्ठ २८ प्रथम भाग) कहते है।

"अब तक किसी न किसी रूप से सभी महाराजाओं के यहा कविराज लोग बिराजमान हैं, चाहे वह चूरनवालों ही की सी कविता क्यों न कर सकते हों परन्तु अविद्या के कारण स्वयं महराज को तो समझने की शक्ति रहती ही नही अतः बालकों के समान इन्ही सब की कविता पर, वाह ! वाह ! कर लोट पोट हो जाते और समझते हैं कि बस साहित्य का मटका तो फूट चुका। इस नियम के देखने से यह तो निश्चय सिद्ध होता है कि अवश्य ही किसी समय इन कवियों का राज दर्बारों में बहुत बड़ी चाह थी। परन्तु आज कल के महराजाओ को तो यदि विषयिता और विलासिता से कुछ अवकाश भी मिलता तो घोड दौड, इमारत बाजी वा उसके साज बाज वा बाराह अथवा व्याघ्र के आखेट की उत्कट चाह में नगर छोड अरण्य निवास करने ही में उनकी मनोरञ्जनता की परमावधि है। तब सत्कवि साक्षात्कार वा सत्कविता के सुख का भागी होना, उनके लिये कैसे सम्भव है।"

उपाध्याय जी कहते हैं "कवि वही है जो स्वभाव ही से विरञ्चि के द्वारा विरचित हुआ है और मनुष्य जाति को सिखाने के हेतु दयालु प्रकृति का परम उदाहरण है" पृ ३२ प्रथम भाग।

"कवियों का आकाश दूसरा है और भूमि भी कुछ दुसरी यहा तक कि जितने प्रकार के पुष्प वहा खिलते हैं वे निराले रंग ढग के होते हैं, उनकी नदिया कभी तो कामान्ध कामिनी

सी पैतृक मर्य्यादा को तोडती, वेग से अपने पति महोदधि से मिलने को भागती अथवा इतराती आवर्त्त मिस निज नाभि देश को दिखाती स्वैरणी सी गाती चली आती हैं (पृ २३ प्रथम भाग) कवियों के देश का क्या ही मनोहर और अद्भुत वर्णन है किन्तु स्थानाभाव से यहा नहीं सकलित कर सकते।

कवियों का तो इतना बडा आदर करते है कि कहते हैं "यद्यपि ब्रह्मा के चार मुख है पर एक मुख वाले कवि रचित काव्यरूपी परम अद्भुत लोक को निरख, लज्जा और ईर्ष्या के वस हो उन्हें मलिन वदन होना ही पडता होगा।"

प्रेम

ससार को सरस बनाने वाले प्रेम की क्या ही अनुपम व्याख्या है कि कदाचित् ही किसी कविने ऐसी की हो। "प्रेम हृदय की एक अपूर्व ग्रन्थि, किम्वा ज्वर, अथवा मूर्छा वा प्रियतमा के रूप की शोभा का हृदय में खचित हो जाना है वा प्रति दिन देखते २ हृदय दर्पण पर एक प्रतिबिम्ब का बन जाना है जो फिर त्रिकाल में मिटने वाला नहीं।"

इसको उपाध्याय जी इतना पूज्य समझते हैं कि लिखते है (पृ ६१ प्रथम भाग) "यदि ऐसा प्रेम का उद्गार हृदय में हुआ तो अवश्य आदरणीय है क्योंकि वह तो मनुष्य नहीं वरञ्च एक भाति का हिंसक पशु है जिसका हृदय इतना कठोर और अन्धे दर्पण के समान है जिसमें प्रेम का प्रति बिम्ब नहीं पड सकता। हमारी जान जैसे शास्त्रकारों ने क्लीव पुरुषों को ज्ञान का अधिकारी नही माना है वैसही ऐसे कुत्सित पुरुष भी भगवद् भक्ति के उपयुक्त नहीं हो सकते।"

पत्नी

उपाध्याय जी पत्नी को ससार का सर्वस्व समझते हैं और मनुष्य के जीवन में बहुत ही उच्चस्थान देते हैं। वह कहते हैं "यही गार्हस्थ्य सुख की मूल है। मगल और उत्सव की स्वरूपा है। जगत के स्थिति की हेतु है। मनुष्य के मन रूपी उच्छृङ्खल पतङ्ग को नेह रूपी डोर से बाध अपने वश में रखने वाली है। पति के हार्दिक गुप्त कथा रूपी सरिता की पावन महोदधि और मनुष्य के सहज स्नेह रूपी रसाल का थाटिका है। मनुष्य का दूसरा हृदय, द्वितीय शरीर, अथवा उसका द्वितीय मन, और वास्तव में उसकी दूसरी छोटी दुनिया है। विष्णु सी रक्षा करने वाली, कमलिनी सी निज प्राणपति रूपी प्रभाकर को देख प्रफुल्ल रहने वाली, गगा सी निजपति भगीरथ का अनुसरण करने वाली, कुमारियों सी केवल अपने प्राणनाथ ही की कथा कहने वाली, अन्नपूर्णा सी परिवार को पोषण करने वाली, कामिनियों के कटाक्षों के आक्षेप से अपने धर्मिष्ठ पति को दुर्ग के समान सुरक्षित रखने वाली, विपत्ति में नौकासी अथवा जब विपत्ति तूफान मनुष्य रूपी नौकापर हाहाकार कर चतुर्दिक से दौडता है तो उससे बचाने में जादू की छडी सी, पत्नी मनुष्य की सर्वस्व और गृह की लक्ष्मी होती है"।

"यदि इस लोक मे कोई यावज्जीवन का साथी है तो पत्नी, यदि कोई सच्चा मित्र है तो स्त्री, यदि कोई सत्प्रेम की पात्री है तो भार्य्या। इससे यदि कोई ससार के सुखों को अनुभव करते हुए भी कल्मष रहित रहना चाहे तो वह अपने स्नेह सम्पत्ति का कोषाध्यक्ष अपनी पत्नी को बनावे। ललना से सम्बन्ध रख कर भी यदि ब्रह्मचारी होने की इच्छा हो तो

पत्नी ही से नाता रखे। निष्ठुर प्रेम भी इन्ही के स्नेह में मुग्ध रहता और हृदय को स्नेह से पूर्ण रखते हुए भी जलाता नहीं। सुखकी अनन्त सम्पत्ति देता और विछोह की घबराहट से सदा मुक्त रखता है।"

धर्म और लेखक।

जिस प्रकार हमारी स्मृतिया (कानून) धर्म पर निर्मित है, जिस प्रकार आर्य्यों का जीवन धर्म के निमित्त है, उसी प्रकार लेखक का जीवन धार्मिक जीवन है अथवा इस प्रकार का है कि जैसे मिल्टन का जीवन कविता के लिए समर्पित था (Dedicated life) उसी प्रकार उपाध्याय जी का भी जीवन ईश्वर प्राप्ति के लिए समर्पित था। अध्ययन के अनन्तर परिवार वर्गों ने वकील बनाने के लिए ला क्लास में रखा किन्तु यह तो ईश्वर की अदालत के वकील होना चाहते थे, इसस उन दो सालों में रात दिन साहित्य की पुस्तकें पढ़ा करते थे और कहते थे कि यह दरवाजा तो अब बन्द करना है इस बाग की सैर अच्छी तरह करलें। ऐसा विद्यार्थी क्यों कर वकालत पास कर सकता है, जिसको न उसे पढ़ने का समय है और न पास करने का उद्देश्य है। दासाल फेल होकर, पास करने की योग्यता के अभाव की ओट में घर बैठ रहे और वेदान्त के ग्रन्थों का अनुशीलन और ईश्वराराधन में सिविल सर्विस के विद्यार्थी सा लग गए। कोई भी समय उससे खाली नहीं और कोई भी ऐसा समय नहीं जब अपने जीवन को सफल न समझते थे और अपने जीवन के उद्देश्य को सर्वोत्तम और परम वाञ्छनीय न समझते थे। बहुधा उनको कहते सुना है कि असल बादशाही तो हम लोग करते हैं और संसार के बादशाह तो नाम के लिए हैं।

Uneasy lies the head, that wears the crown (अस्वस्थ रहता है जो राजमुकुट धारण करता है) । कभी कभी तो हमारे यहा जब पधारते ता हँस कर कहते तुम्हारे यहाँ रोज मोअक्किल आते हैं तब भी पूरा नहीं पड़ता किन्तु हमारे यहा तो एक रोज भी अगर मोअक्किल साहब आजायगे तो हम मालोमाल और अयाच्य हो जायगे ।

उनके आध्यात्मिक जीवन का अच्छा दृश्य उनके लेखों में प्रदर्शित होता है। यद्यपि कहीं कहीं उनकी उपमाएँ ऐसी हो जाती हैं कि उनकी उपयोगिता समझना कठिन हो जाता है क्योंकि उस आध्यात्मिक ससार से हम अनभिज्ञ हैं यथा—

(१)

"कभी सुरत योग के तीव्र अश्व पर आरूढ़ हो, भक्ति का चाबुक लगाते, चन्द्रमा और सूर्य्य को पीछे छोड़ते उस निर्मल शुभ्र चैतन्य धाम को पहुंचते जो सब की उत्पत्ति भूमि है।" हमारी मसहरी प्रथम भाग पृ. १३६

(२)

"कभी असंग शस्त्र से अन्त करण-वाटिका से विषय भ वनाओं के, वृक्षों को समूल उच्छेदन कर, सयम और नियम की वृहत्खाईं खन, विवेक और वैराग्य के अमृत फल वाले वृक्ष आरोपण कर, जपजल से सींचते, कभी प्राण दोलना पर इस चञ्चल मन को सुलाते......

प्रथम भाग पृ १४१

(३)

"कभी षोडश कला वाले ब्रह्म कोष को इस गृह देहली में खोजते रह जाते और कभी सुरत बन्दर को आकाश और जमीन को एक करते हुए अनुभव करते रह जाते।"

प्रथम भाग पृ० १५३

(४)

इससे जब हम सुरत योग के तीव्र अश्व पर चढ़ अविद्या तिमिर आच्छादित मार्ग को किसी भांति पार कर उस सच्चे निर्मल देश को पहुंचते हैं तो यदि ऐसे समय में चाह चमारिन ने चीत्कार किया वा भावना दूती ने सन्देश दिया वा अहङ्कार बन्दर बीच में कूद पड़ा या प्रतिष्ठा वेश्या बगल में चुपचाप आ बैठी तो बना बनाया अध्यात्म का गृह गिर पड़ता है"

(पृ० ३८ द्वितीय भाग)

अंगरेजी के उद्भट पंडित होते हुए भी इस विद्या से जो धर्म पर आघात पहुंचता है उससे वह सदा दुःखी और चिन्तित रहते हैं। वह स्वयं कहते हैं "ज्यों ही वैश्वानर विश्वरूप सहस्र रश्मि वाले' प्रजा के प्रतिपालक सूर्य्य भगवान ने अपने अमल शुभ्र आनन को बाहर निकाला, त्यों ही सब महर्षियों, नैष्ठिक ब्रह्म चारियों तथा ब्राह्मणों ने अनेक श्रुतियों को पढ़, जगत के प्राण सूर्य्य को श्रद्धा पूर्वक अर्घ्य दिया और जब से अंगरेजी विद्या का कलुषित अंश हृदय से दूर हो गया है तब से मैं भी नियत काल से प्यारे भगवान् सहस्र रश्मि को अर्घ्य देने, उपस्थान और प्रणाम करने लगा हूं"।

उपाध्याय जी के लेखों में जो प्रौढ़ता, नवीनता और सरसता है उसका कारण उनका आध्यात्मिक जीवन है। जो मनुष्य हरिनाम ही की खेती आठों प्रहर चौसठ घड़ी किया करेगा, उसका मन और बुद्धि कितना कुशाग्र और शक्तिमान हो जायगी आप स्वयं समझ सकते हैं। क्योंकि हरिनाम की खेती तो केवल मन ही द्वारा होती है, और वह मन सब ओर से निग्रहीत उस स्थान पर लाया जाता है जो चैतन्य पुञ्ज है, बुद्धि सागर है, सौन्दर्य्य समूह और आनन्द का घर है। पाठक स्वयं समझ

सकते हैं कि जब आप स्वतंत्र एकाग्र हो कल्पना की उडान कुछ उड डालते हैं तो उपाध्याय जी के नगर का महाजन कविता आकाश में कैसा Non-stop flight (अप्रतिहत परिक्रमा) कर सकेगा।

जब कि वह अपने कुटी से ९, १० बजे दिन को निकलते थे उस समय वह इतने प्रसन्न रहते थे कि यह प्रतीत होता था कि इनके लिये तो प्रति दिन फगुआ हो लगा हुआ है या सदा दिवाली मनाते रहते हों। इस समय दिल की मजाक की भी भरमार मची रहती और कभी कभी तो पुरजनों से ऐसे मजाक कर बैठते या उनके जीवन की कुरदई-दो ना जाना। हम सब सदा कहते कि ऐसी बात आप क्यों करते हैं। किन्तु कुछ ही दिन बाद वह दिल्लगी या दोषारोपण सत्य जान पड़ता और हमी लोग पुनः आकर कहते, गुरुजी, आप जो अमुक मनुष्य के संबंध में उस दिन कहते थे वास्तव में सच निकला जिसके उत्तर में वह मुस्कुरा कर कहते कि क्या तुम समझते थे मैं झूठ कह रहा हूं। किन्तु आप विश्वास करें कि उनके जानने का कोई बाह्य मार्ग नहीं था यदि था तो उनका अध्यात्म जीवन। इसमें सन्देह ही क्या है "ऋत भरा-तत्र प्रज्ञ" अर्थात् उस लोग के निवासी की बुद्धि जो चिन्तना करती है वह सत्यमय होती है।

ऐसे समय में तो जो लोग कुछ प्रच्छन्न रखने योग्य कार्य करते रहते, वह इस समय को बचा जाते क्योंकि अपना भण्डा फोड़ना कोई नहीं चाहता। इस समय उनके शिष्य और प्रिय जन यदि विजया की गोली तैयार रखी और कहा कि यह धारण कीजिये और आज किसी विषय पर बोलिए, हम लिखेंगे तो हम लोगों की प्रार्थना को स्वीकार कर लेते और विजया धारण करने के आधा घन्टे बाद, वह आते, आखों को

मूद लेते और इस प्रकार बोलते मानों कोई एक्टर अपना पार्ट सुना रहा है। लिखना असम्भव सा हो जाता और यदि कहीं कुछ कोई बोल उठता या पूछ बैठता तो वह अक्सर कहते कि अजी हम तो भूल गये क्या कहा था। वह आधे घन्टे या बीस मिनट बोलते त पश्चात् कहते बस आज हो चुका।

उपाध्याय जी को अपने हाथों से लिखने में बडी चिढ वा उलझन मालूम होती थी इससे अधिकाश लेख दूसरों ही के लिखे हुए हैं।

इनको अपने लेखों के सुधारने, शब्दों को परिवर्त्तन करने को कुछ भी इच्छा नहीं रहती थी यह उन लेखकों में है जो काउपर (Cowper) के मतानुयायी हैं "Give me a manly rough line with a deal of meaning in it rather than a whole poem of musical periods that have nothing but their oily smoothness to recommed them"

अर्थात् मुझको एक प्रौढ उद्भट (लेख की) पंक्ति दो जिसमें अर्थ प्राचुर्य्य हो (मुझे वह विशेष प्रिय है), बनिस्बत् एक सम्पूर्ण कविता के जिसमें कि सरस विराम हैं किन्तु सिवाय स्नेहस्निग्धता (शब्द लालित्य) के और कुछ प्रशंसनीय नहीं है।

इतर कवियों का प्रभाव

जिस समय उपाध्याय जी पढते थे उस समय उन्होने लबक का लिखा हुआ प्लेजरर्स आफ लाइफ (Pleasures of Life) पढा और उसी समय 'आनन्द कादम्बिनी' मासिक पत्रिका का पुनः प्रकाशन प्रेमघन जी ने स्थिर किया था और सब भाइयों से लिखने को कहा। हरिश्चन्द्र जी मुझसे कहने लगे कि लबक सा इतर कवियों की उक्तियों को अपने भावों के

साथ ग्रन्थित कर देना क्या कठिन है ? और कादम्बिनी के लिए लिखना आरम्भ किया। उनके आरम्भिक तीन लेख— मित्र, पुस्तकों की महिमा, और लक्ष्मी में, प्लेजर्स ओफ लाइफ (Pleasures of Life) की छाया वर्तमान है किन्तु इससे भी इनकी कल्पनाओं में उपज थी, उनका शास्त्रज्ञान विशद था, उनके अनुभव असामान्य थे, लबक (Lubback) की लेखन प्रणाली ने हिन्दी के लिये अद्वितीय एसेइस्ट पैदा कर दिया। इनके लेखों को इनके ज्येष्ठ भाई प० यदुनाथ प्रसाद जी बहुत ही पसन्द करते थे और उन्हीं की सतत प्रेरणा और स्वयं गणेश जी बनकर बैठ जाने से लेख लिखे जाते थे। यह मैं कह ही चुका हूं कि हरिश्चन्द्र जी को स्वयं लिखना इतना अप्रिय था कि यदि स्वयं लिखना पडता तो 'कादम्बिनी' का प्रकाशन बन्द होने पर कुछ भी न लिखते और हिन्दी संसार को ६, ७ लेखों ही से सन्तुष्ट रहना पडता।

काउपर की चिट्ठियों को पढ कर उनको यह समझ पड़ा कि लेखक अपने विषय में भी लेख ऐसा रोचक लिख सकता है कि पाठक आनन्द में दोलायमन हो अपने को विस्मृत कर सकते हैं। इसी लेखन प्रणाली का अनुसरण कर उन्होंने 'हमारी दिनचर्य्या' 'हमारी कुटी' 'हमारी मसहरी, 'हमारा कृत्रिम शैलगृह' 'शीतलगञ्ज की जन्माष्टमी' लिखा जो पश्चिमीय साहित्य के नियमानुसार वस्तुत एसेज हैं।

कुछ काल ही पश्चात् सर रवीन्द्र नाथ ठाकुर की छोटी छोटी कहानिया निकलीं जिस को पढकर उन्होंने 'प्रहलाद' 'सुदामा जी' 'रुक्मिणी' लिखा। इनमें प्रसाद गुण और भक्ति ऐसा भरी हुई है कि पढ़ते २ पाठक गदुगद और रोमाञ्चित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति का चशमा चाहिये कि इनमें आनन्द आवे किन्तु मेरा तो यह अनुमान है कि यदि

मनुष्य निष्पक्ष मन से पढ़े तो उसके हृदय में अवश्य भक्ति का सञ्चार हो जायगा।

उपाध्याय जी ने दो मरसिया भी लिखा है एक तो महाराज अयोध्यानरेश प्रताप नारायण सिंह जू देव बहादुर के परलोक पर जिसका नाम 'प्रताप परिताप' है और दूसरी अपने ज्येष्ठ भ्राता 'प्रेमघन जी' के स्वर्गवास पर जिसका नाम 'भारतेन्दु और प्रेमघन का हृदय, अथवा प्रेमपुष्पाञ्जलि' है। ये गद्य नहीं कहे जा सकते परन्तु इसमें कि उपाध्याय जी के कुल लेखों का प्रकाशन अभीष्ट था। इससे वे भी सम्मिलित कर दिये गए हैं।

हरिश्चन्द्र जी को एडिसन (Addison) का ह्यूमर (विनोद) बड़ा रोचक था इसमें इन लेखों में एडिसोनियन ह्यूमर मिलते हैं लखनऊ के लेख में जहां वहां के निवासियों पर चुटकियां ली गई है, वह बड़ा ही सुन्दर है और जो पाठक उसके ह्यूमर को न समझ सके तो उस लेख में आनन्द ही नहीं मिल सकता।

(१)

माशूकों की जुतियां, लात और डन्डे खाकर भी उनके शरीर के कल्याणार्थ मसजिद और मन्दिरों में दोबारे भार मन्नतें मानते हैं तो यहीं के लोग।

प्रथम भाग पृ० १६३

(२)

"मुख में बटेर बसनी नहि राम या रहीम, हाथ में सुमिरनी फैशन के लिये रहती न कि भजन के अर्थ;

प्रथम भाग पृ० १६५

(३)

कोई संगीत सुन वहीं के यहीं लका कबूतर लेपट जाते।

प्रथम भाग पृ० ५६

(४)

" सिर्फ मोहर्रम के मातम के मनाने में एक दिन के साल भर की संजीदगी और शान्तता को भी हराने वाले।"

कभी कभी ऐसे बड़े बड़े महात्माओं को उपाध्याय जी बुलाते हैं और ऐसे दो एक प्रश्नोत्तर हो जाते हैं कि पाठक को लेन्डर (Landor) याद आ जाता है। तब भी आप उनकी कल्पनाओं में ऐसी नवीनता पायेंगे कि आप अवश्य कह उठें कि इनका पढ़ना तो सफल है। यथा—

" कभी पाताल लोक के ज्ञानी इमर्सन (Emerson) से साक्षात्कार होता तो कहता कि अविद्या अन्धकार से घिरे अन्धेयुग में तो आप ही एक आंख वाले मिले जिसे सुन वे बद्धाञ्जलि हो कहते कि यह सब ब्राह्मणों के शास्त्रों का प्रताप है यह सुन मैं गद्गद हो उन्हें गले से लगा लेता और कहता कि तब ही तो आप यूरप में ऐसे अविदित हैं"।

संस्कृत के कवियों में बाण भट्ट की विशेषण शैली और विरोधालङ्कार इन लेखों में इस प्रचुरता से वर्तमान हैं कि समालोचक स्पष्टतया देख कह सकता है कि उस कवि की शैली उपाध्याय जी को बड़ा ही रुचती थी। यद्यपि यह शैली अवश्य उन्होंने बाण भट्ट से सीखी किन्तु यह कोई भी नहीं कह सकता कि कहीं भी उनके विशेषणों की छाया मिल सकती हैं। यह दूसरी बात है कि कोई ढूंढ कर किसी विशेषण को कह सके कि यह तो बाण भट्ट का प्रयुक्त विशेषण है परन्तु यह कि All great men think alike (महान आत्माओं के विचार में समानता होती है) ये बाण

भट्टो विशेषण धाराएं 'आषाढ का आरम्भ' 'श्री शीतलगञ्ज को जन्माष्टमी' 'श्री शीतलगञ्ज की द्वितीय जन्माष्टमी' 'लखनऊ' और 'ज्येष्ठ' में प्रवाहित हो रही है । इनमें से एक भी उद्धृत करना अयुक्त होगा क्योंकि वह दो दो तीन तीन पृष्ठ की हैं, और पाठक उनको स्वयं पढ कर अपने साक्षरता को चरितार्थ करेंगे । यह यहां पर कह देना पर्याप्त है कि जब आप श्री कृष्ण भगवान् के गुण-गान-विशेषणावलि पहिली जन्माष्टमी के लेख मे पढेगे तो आप को यह विचारना कठिन होगा कि उपाध्याय जी दूसरी जन्माष्टमी के लेख में श्री कृष्ण भगवान् की प्रशंसा में क्या कहेंगे किन्तु जब जन्माष्टमी के दूसरे लेख को आप पढ़ेंगे तो उपाध्याय जी के कल्पना शक्ति और विशेषणों की नवीनता से मुग्ध हो जायँगे ।

वसन्त समीर का वर्णन किस को नहीं दण्डी के 'दश कुमार' का स्मरण दिलाता और किस कवि ने 'वसन्त समीर' पर अपनी लेखनी नहीं चलाई है किन्तु उपाध्याय जी के भी वसन्त समीर का अनुभव कीजिये कि उसमें क्या नवीनता, ओज और प्राकृतिक छटा है । इसमे 'साहित्य दर्पण' परिखा का क्या ही सुन्दर और कमनीय उल्लङ्घन किया है. पृष्ठ ६३ प्रथम भाग ।

"स्वभावत कामानल को भड़काता निद्रित पुष्पों को जगाता, वृद्ध जीर्ण तपस्वियों के समान सर्पों को सूचना देता कि उनके तप का समय पूरा हो चुका और अब वे शीतल सुगन्धित समीर से सुवासित मलयगिरि पर निवास ले सकते हैं, मानिनी भामिनियों के मान को क्षण के क्षण में कपूर सा उड़ाता ; कहीं तो जंगलों में जा परमहंसों के सदृश जप करता और कहीं कर्कशा नारियों सा झगड़ता; कहीं लड़कों के समान शस्य पूर्ण क्षेत्रों को झनझनाने मिष सहस्रों घुनघुने

बजाता, कहीं यदु वंशियों सा बंश कुल में तलवार चलाता और कृष्ण सा कलहाग्नि उत्पन्न कर, घूम के मिष भगवान् भूतनाथ सा प्रलय में नृत्य सा करता, वाटिकाओं में जामुन को गिरा बन्दर सा प्रसन्न हो अट्टहास करने वाला, कहीं लडकों सा ववण्डर को घूम घुमैया खेलता, पत्तियों को पतग उडाने वाला, कहीं कीचक वंश रन्ध्रों में बैठ बाँसुरी बजाता, कहीं, ताड के वृहत् पत्तों को झडझडा, गिरहवाज कबूतरों की सी गिरह लगाने वाला, कहीं कास श्वास पीडित मनुष्यों सा झाऊ और सर्व के वृक्षों में साय साय बोलता, धूँ आकाश सा स्वान्तः करण से भाफ निकालता, पथिक बालकों को डराता, कहीं हाली की सी धूल उडाता, नदियों में स्नान करता हुआ, देवालयों में पहुंच घंटा को बजा भूतनाथ की अर्चना करता, यों अपनी मनमानी दौड लगाता जो किसी पहाड की कन्दरा में जा किञ्चित् काल के लिये विश्राम करता तो फिर उठ चलता और कामिनियों के कपोलों पर बिखरे कुन्तलों को उडाता, धृष्ठ नायक सा हठात् उनके परिच्छद हटा हटा उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग को देख मोहित हो, उन्हें भुज भर आलिङ्गन करता हुआ, बसन्त का पवन सञ्चलन करने लगा।"

भविष्य कथन।

यह आश्चर्य की बात है कि सब ही असामान्य लेखकों की और कवियों के प्रारम्भिक लेख वा कविता को पढ़, कोई न कोई विचक्षण पुरुष उसके भावी कवि वा लेखक होने के अङ्कुर उसकी रचना में देख लेता है। हमारे चरित्रनायक ने भी अपनी १७,१८ वर्ष की अवस्था में 'प्रेम घन' जी द्वारा सम्पादित 'नागरी नीरद' के अर्थ एक अनुवाद "निशीथोच्छ्वास" और एक लेख 'मध्याह्नमनः कल्पना' लिखा जो कि उसके अङ्कु

में प्रकाशित हुआ।

प्रेमघन जी अपने अभिन्न मित्र श्रीमान् देवशरण सिंह जू देव बहादुर, राजगुरु महाराज भरतपुर, जो बरना के पुल काशी में रहते, उनसे मिलने को गए। स हित्य की चर्चा के सम्बन्ध में उन्हों ने पूछा कि मदगाहु मनः बहलाना किसका लिखा हुआ है? प्रेमघन जी के यह कहने पर कि मेरे अनुज का लिखा है, वह बड़े प्रसन्न हुए और कहा कि यह बालक किसी समय मे असामान्य लेखक होगा।

महाराज भरतपुर बड़े ही विचक्षण विद्वान और अनुपमेय हिन्दी के लेखक थे किन्तु शोक का विषय है कि उनके प्रणीत ग्रंथ जो प्रकाशित नहीं हुए थे, उनके देहावसान पर इर्षी लाल बाबा कुल उठा ले गए। यही प्रेमघन जी का अनुमान था और हिन्दी साहित्य के एक उत्कृष्ट लेखक का लोप हो गया। उनका केवल एक लेख 'स्वप्न' 'आनन्द कादम्बिनी' में प्रकाशित है जिसे पढ़ हिन्दी रसिक इस हानि का अनुमान कर सकते हैं।

महाराज भरतपुर ने स्वयं भी हमारे चरित्र नायक की, जब वह उनके दर्शनों का गए थे, बड़ी प्रशंसा की किन्तु इस प्रोत्साहन पर भी, उपाध्याय जी ने आधुनिक लेखकों के सदृश कागज रंगना नहीं आरम्भ कर दिया, यद्यपि घर का साप्ताहिक निकलता था। क्योंकि उन्होंने उस अवस्था में भी यह सिद्धान्त कर लिया था कि Without learning genious soars in vain (बिना विद्या के प्रतिभा व्यर्थ उड़ान लेती है) इसने इस लेखों के पश्चात् १०, १५ वर्ष तक न कोई लेख लिखा और न लिखने की इच्छा की। यह जीवन भविष्य के लेखकों के लिये आदर्श होना चाहिए जिसमें "उपर्युपरि पश्यति सर्वं एव दरिद्रति" ऊपर से ऊपर

देखने पर सब ही (अपने को) दरिद्र समझता है—के भाव को ग्रहण कर अल्प जीवी लेख वा कविता के प्रणेता कागज और कलम को व्यर्थ के लिए न लज्जित करें और साहित्य सरोवर को आधुनिक तीर्थ सरोवरों सा न दुर्गन्धित बनावें ।

उपाध्याय श्री हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र

प्रात स्मरणीय धर्मधुरीण ब्राह्मण कुल तिलक सरवार जाति के निष्कलङ्क चन्द्र उपाध्याय श्री गुरुचरण लाल शर्मा के, जिनके विद्यादान के प्रशंसक अनेक पण्डित अद्यावधि इस प्रान्त में वर्तमान हैं, हमारे चरित्र नायक पाचवे पुत्र थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता चौधरी बदरी नारायण प्रेमघन हिन्दी साहित्य संसार में सुविख्यात और लब्धप्रतिष्ठ कवि थे जिससे हमारे चरित्र नायक को आदर्श घर ही में वर्तमान था ।

पारिवारिक विग्रह के कारण बाल्यावस्था में जैसा अध्ययन का प्रबन्ध होना सम्भव था न हो सका किन्तु विद्यानुराग प्रतिभा और स्मरण शक्ति अद्वितीय अथवा अद्भुत थी। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही सन्ध्या पूजा से बड़ी रुचि थी किन्तु यज्ञोपवीत तब तक नहीं हुआ था इससे उनके चित्त में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई । मिरजापुर की कोठी पर जहा वह रहते और अध्ययन करते थे, वहा एक बड़े महात्मा जिनको "बाबा जी" सब कहा करते थे, आया करते थे । इनकी अद्भुत अध्यात्म शक्ति के विषय में परिवार के अनेक व्यक्तियों से सुना है जिस से यह प्रतीत होता है कि यह बाबा जी जीवन मुक्त मनुष्य थे और महर्षियों की कक्षा में थे, जिनको भूत भविष्य वर्तमान तीनों हस्तामलक था। एक दिन हमारे चरित्र नयक इनके स्थान

पर गये और शोकाकुल हो कहने लगे 'बाबा जी' हम को पूजा करने की बड़ी इच्छा होती है किन्तु अभी तक हमारा जनेऊ नहीं हुआ है बाबाजी ने मुस्कुरा कर कुछ काल के लिये आखों को बन्द कर लिया। इसके पश्चात् उन्होंने पूछा, क्या तुम पूजा करना सीखना चाहते हो? किन्तु अभी तुम बालक हो खेलो कूदो पूजा करना फिर सीख लेना। यह सुनते ही यह रोने लगे और कहा नहीं हम सीखेंगे। बाबाजी ने कहा अच्छा तुम होम की सामग्री लाओ और अचला सप्तमी को हम तुमारी दीक्षा करेंगे।

इनको बड़ी प्रसन्नता हुई और-कूदते घर लौटे। अब होम सामग्री के लिये पैसे का प्रश्न आया। वह इस होम के विषय में न अपनी माता से कह सकते थे और न प्रेम प्रन जी से माग सकते थे, क्यों कि ११ वर्ष वाले बालक का ऐसी बातों में कौन विश्वास करता, यदि उनमें इतनी हिम्मत भी होती कि वह उनसे मांगते। चार पैसा इनको जलपान के लिये मिला करता था। इनके विचार में यह आया कि यदि यह पैसा बचाया जाय तो अभी सत्रह अठारह दिन है, पर्याप्त पैसा होम की सामग्री के अर्थ एकत्रित हो जायगा। क्याही अपूर्व श्रद्धा थी! और क्या ही दारुण संकल्प था? इस छोटी अवस्था में अपने जलपान को त्याग, दीक्षा की सामग्री सग्रह करना उनकी असामान्यता का उज्वल प्रमाण है।

दीक्षा होने के पश्चात् गुरु जी की सेवा करने यह सदा जाया करते थे। उनकी सेवाही कोई क्या करता? उनको किसी वस्तु की आवश्यकता ही क्या थी? एक रोज यदि भिक्षा करने हम लोगों के यहा आते थे तो तीन चार आदमी का भोजन कर जाते थे, और फिर पाच छ दिन कुछ भोजन

ही नहीं करते थे। उनकी अवस्था उस समय ८०, ८५, की रही होगी। उन से यदि कोई नाम ग्राम पूछता था तो वह वहा से तुरन्त उठ कर चले जाते थे। ससार से भोजन मात्र का नाता था। ऐसे महात्मा की सेवा सिवाय हाथ पैर दबाने के और कोई क्या कर सकता था और यह हमारे चरित्र नायक इतने प्रेम और निपुणता से करें कि बाबाजी बडे प्रसन्न हो जाते थे। उनको जब वह बडा प्रसन्न देखें, तब वह कहें कि हम जप बहुत करते हैं किन्तु भगवान् कृष्ण का दर्शन नहीं होता आप दर्शन करादें। वह कहते थे कि इस प्रकार कई दिनों की प्रार्थना पर कभी गुरु महराज प्रसन्न होकर कहें कि अच्छा तुम्हारे पीछे जो चिराग जल रहा है देखो। वह कहते थे कि साक्षात् भगवान् कृष्ण का दर्शन मिलता था। जब वह हमसबों पर बडे प्रसन्न हों और अपनी इस आत्म कहानी को कहने लगें तो नेत्रों में अश्रु भर आवें और कहें "इतने कवियों ने वर्णन किया और इतने चित्र कारों ने चित्र बनाया किन्तु कृष्ण भगवान् के रूप रंग की मनोहरता शताश भी इनमें नहीं आती"। इसके सिलसिले में कुछ काल तक गुरु जी की प्रशसा वह करते चले जाते और स्वाभिमान कहते कि किस को ऐसा गुरु इस कलियुग में प्राप्त हुआ था।

कालान्तर में अपने बडे भाइयों के साथ यह लखनऊ पढने गए। यहा पर एक कोठरी थी जिसमें यह अकेले बैठकर जप किया करते थे। इनके बड़े भाई बासुदेव प्रसाद को यह मालुम हुआ कि यह कोठरी बन्द कर घन्टों उसके अन्दर रहा करते हैं। उन्हों ने बहुत पूछा किन्तु इन्हों ने नहीं बताया। तब किवाड बन्द कर बैठ रहने से उन्हों ने मना किया और इनके न मानने पर उन्हों ने इनको मारा, जिससे

यह रुष्ट हो रात को घर से भाग गए। इस समय इनकी अवस्था करीब १५ वर्ष की रही होगी। यह लखनऊ से भाग कर शीत और भोजन का दुःख सहते, क्योंकि बड़े आदमी के लड़के होने से किसी से कुछ, माग नहीं सकते थे, चित्रकूट को चल खड़े हुए। उस समय चित्रकूट तक रेल भी नहीं गई थी इससे ८,१० माइल पैदल जाना पड़ा। चित्रकूट में एक प्रसिद्ध महात्मा जी थे, उनके यहां गए उन्हों ने बड़े आदर से बुलाया और एक शिष्य से कहा कि आध सेर रोट ला दो। उपाध्याय जी कहा करते थे कि ३ दिन के उपवास के पश्चात् यह जान पड़ा मानो महात्मा जी ने मुझे ससार का सवस्व दे दिया। रोट लेकर वह एक ऐसे पत्थर पर गए जिस के दोनों तरफ से झरना चल रहा था और चार पांच रोट खाए रहे होंगे कि तीर्थ स्थान के डाकू एक बन्दर महाशय पहुचे और कुल उठा ले गए। वे कहते थे कि मैं अत्यन्त दुःखी हुआ कि ऐसी मेरी फूटी भाग्य है कि भोजन जब मिला भी तब कलियुग सा बन्दर मेरी रोट चादर को उठा लेगया। किन्तु अब समझता हू कि वह देव दूत था, क्योंकि अगर हम कुल खा जाते ता मर ही जाते। भोजन करने के पश्चात् मैं महात्मा जी के पास गया तो उन्हो ने इस प्रकार मेरी जीवनी कहनी आरम्भ किया कि यह जान पड़ता था कि उन्हो ने स्वय सब देखा था। इसके पश्चात् उन्होंने यह आदेश किया कि तुम अभी बालक हो तुम को सन्यस्त मार्ग की इच्छा नहीं करनी चाहिए; घर लौट जाव। मैंने भी इस आदेश को स्वीकार किया और मार्ग का दुःख भी स्मरण कर यही निश्चय हुआ कि मैं अभी घर के बाहर रहने के योग्य नहीं हू। घर की एक एक बात याद आने लगी। वह स्वय लिखते हैं "मैं जब अपने घर से कभी किसी कारणवश विदेश चला गया था तो घर और इसके

प्राणीमात्र कैसे कुछ अधिक प्यारे हो जाते है, इसका अनुभव सम्यक प्रकार से हुआ था। घर की सुध आते ही चक्षुओं से अश्रुधारा वर्षा के झरनों की भांति, लज्जा छाडअन्तः करण रूपी पर्वत से भर भरा कर निकल पडती थी। गृहस्थित एक २ वृक्ष और लताओं की सुध आती थी। वहां के सभी मनुष्य स्वर्गीय समझ पडते थे, कुछ चालें उनकी अलौकिक समझ पड़ती थीं। जिनसे कभी प्रणामाशिष तक भी नहीं था, वे दूर होने के कारण आत्मीय से जान पड़ते थे। कभी आहभर मनीमन में यह कहता कि देखो इस अनजान देश में हमारे नाम तक को भी कोई प्रेम से लेने वाला नहीं। स्वागत देनेवाले, अनेक गूढ रहस्यों की कथा, कटाक्षों में कहने वाले नेत्रों के तो कभी दर्शन भी नहीं होते। कोई प्यार से यह भी पूछने वाला नहीं देख पडता कि हम सुखी हैं वा दुःखी, खाना खाया है वा यों ही दिन भर पहाडों के के श्टङ्ग गिनते फिरते हैं" (पृ १११ प्रथम भाग)

जब उपाध्याय जी विदा मागने के लिए महात्मा जी के सम्मुख उपस्थित हुए तब उन्होने आशीर्वाद दिया कि जाव तुम और तुमारे भाई लोग बडे सम्पत्तिवान होंगे और राजसी सुख भाग करेंगे, किन्तु बेटा! तुम ऐसा ही रहना। उपाध्याय जी कहा करते थे कि मैं उस समय सविस्मय समझने लगा कि यह कौन सा आशीर्वाद है कि परिवार वर्ग आनन्द उप-भोग करें और मैं जीवन पर्यन्त दुःख भोगू। महात्मा जी यह आशीर्वाद देकर खडे हुए और कुछ दूर चल कर कहा यह जङ्गल का रास्ता सीधा चला जाता है, तुम निःशङ्क चले जाव। उपाध्याय जी इन महोदय के योग वैभव की प्रशंसा में कहा करते थे कि जब कभी मेरा मार्ग दो या तीन दिशाओं में विभक्त हो जाता था और मुझ को सन्देह होता था तो मैं

देखता था कि महात्मा जी २५ ३० क़दम मेरे आगे २ भागे चले जा रहे हैं और मैं उसी ओर प्रस्थित हो जाता था।

चित्रकूट से लौटने पर कुछ ही काल के अनन्तर परिवार में ऐसी कलहाग्नि भभकी कि इनका और इनके तीनों ज्येष्ठ भाइयों का पढना बन्द हो गया। यह लखनऊ से शीतलगञ्ज ग्राम, जो कि जिले गोंडे में है, आए और वहीं समय व्यतीत करने लगे। इस समय धन का अभाव तो सर्वथा रूप से था किन्तु पुस्तकों का नहीं। यह पुस्तकों ही में समय व्यतीत किया करते थे। इनके और उपाध्याय जी को पढने की इतनी इच्छा थी कि ज्येष्ठ भ्राता प० मथुरा प्रसाद चौधरी बी ए परिवार की दुरवस्था देख कर, अयोध्यानरेश प्रताप नारायणसिंह जूदेव बहादुर के यहा प्राइवेट सेक्रटरी होगए और वहीं पर इनका विद्यानुराग देख कर इनको बुला लिया। यह अयोध्या में रहने लगे और घर पर पढने लगे। १८८८ वे ईसवी में जब की इनकी २३ वर्ष की अवस्था थी इन्होंने इन्ट्रेन्स पास किया और उसके पश्चात् फैजाबाद के गवरमेन्ट कालिज में पढने लगे। इनकी अगरेजी की विद्वत्ता इतनी श्रेष्ठ थी कि प्रोफेसर बोनी इनको बहुत मानते थे क्योंकि परीक्षाओं में यह अपने ही शब्दों में व्याख्या किया करते, इतर विद्यार्थियों के सदृश छपी व्याख्याओं को नहीं लिखते थे। यदि यह सिल सिला लगा रहता तो उपाध्याय जी भी ग्रेजुयेट हो गए होते और सासारिक मनुष्यों का कोई न कोई व्यवसाय ग्रहण किये होते। किन्तु यह तो दूसरे ही युनिवर्सिटी के ग्रेजुयेट होने वाले थे।

पं नारायण देवजी जा कि गाजीपुर के एक बडे प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध ज़िमीदार थे और इनके बडे मित्र थे; इनको एक दिन

पूज्यपाद बाबा जानकी वरशरणजी के, जो लक्ष्मण किला अयोध्या के महन्थ थे, दर्शनो को ले गए। उनमें कुछ ऐसी प्रीति और स्नेह उपाध्याय जी के हृदय में उत्पन्न हो गई कि वह बहुधा उनके यहा आने लगे और ज्ञान वार्त्ता और ईश्वर प्राप्ति के उपाय में गाढ श्रद्धा उत्पन्न हो गई। बाबा जानकी वरशरण जी इनकी प्रतिभा श्रद्धा और आस्तिकता से इतने प्रसन्न थे कि इनको अपना उत्तराधिकारी बनाने पर उद्यत थे, किन्तु उपाध्याय जी इससे कुछ हिचकते थे। किसी ने यह व्यवस्था जाकर इनके ज्येष्ठ भ्राता मथुरा प्रसाद जी से कहा। वह ऐसे समय से महन्थ जी के यहा पहुचे, जब उपाध्याय जी भी वहा बैठे थे, उस समय उन्हो ने महन्थ जी को बडा सघन सुस्त सुनाया और उसी दिन उपाध्यायजी को लेकर प्रयाग चले आए और कायस्थ पाठशाले में भरती करा दिया। इनके ज्येष्ठ भ्राता ने यद्यपि अयोध्या से इनको हटा दिया किन्तु वहा का असर न हटा सके। यह दिखाने के लिए तो अवश्य कालिज जाते थे किन्तु घर पर सिवाय साहित्य के ग्रन्थों के अवलोकन करने के और छुट्टियों में भूसी जाकर महात्माओं के सत्सग करने के परीक्षा के ग्रन्थों को कभी देखते नहीं थे। दो वर्ष उन्हों ने एफ ए की परीक्षा दी और उत्तीर्ण न हुए। तब इनके ज्येष्ठ भ्राता ने इनसे कहा कि तुम ला कालिज में नाम लिखा लो और वकालत की परीक्षा दो। इन्हो ने ऐसा ही किया।

इस समय प्रयाग में विख्यात भास्करानन्द जी के गुरु भाई बाबा कृष्णा नन्द पधारे थे और उनसे उपाध्याय जी से परिचय हो गया। बाबा कृष्णानन्द बडे उच्चकोटि के महात्मा थे और उनको उपाध्याय जी के मन की वृत्तियों को समझने में देर न लगी। वह इनका इस प्रकार प्रेम करने

लगे जैसे गुरु शिष्य का करता है। प्रति सायकाल उपाध्याय जी जाते थे और बाबा कृष्णा नन्द इनके आते ही इतर भक्तों को बिदा कर देते और इन से ज्ञान वार्ता आरम्भ करते और श्रोता और वक्ता ऐसे मुग्ध हो जाते कि समय का ज्ञान नहीं रह जाता और उपाध्याय जी कभी १० कभी ११ और कभी १२ बजे रात्रि को घर लौटते थे। कुछ दिन यह सिल सिला ऐसा चला कि उपाध्याय जी को यह प्रतीत हो गया कि इस संसार में कर्म ही बन्धन का कारण हैं, इस से कर्म करने से दूर रहना चाहिए और आत्मा स्वयं चैतन्य है, ज्योंही कर्म का परदा हटा त्यों ही मनुष्य त्रिकालविद् हो जायगा। इस समय वह अक्सर कहा करते थे।

"जिस दरिया की ये बूंद हैं, उस दरिया मे मिल जायँगी।
ना टन्टा है ना बखेडा है, यह जग दर्शन मेला है॥"

और रात दिन शतरज खेला करते थे।

इस प्रकार शतरज खेलते और बाबा कृष्णानन्द से ज्ञान चर्चा करते, गर्मी की छुट्टी आई और प्रयाग से प्रस्थान का समय आया।

उपाध्याय जी कई वर्षों से जब कभी यात्रा में काशी पडता था तब काशी जी उतरते थे और बाबा जानकी दास के, जो जीवन मुक्त मनुष्य थे और जिनके भण्डारी काशी नरेश महाराज उदितनारायण सिंह जूदेव थे, दर्शनों को जाते थे। बाबा जानकी दास इनका इतना मानते थे कि अपने तख्त के निकट इनको रहने देते थे, जहा कि और किसी की गति न थी। इस बार जब वह काशी जी गये और बाबा जानकी दास से मिले तो बाबा कृष्णा नन्द से सीखी हुई "कर्मण्यकर्म य पश्येत् अकर्मणि च कर्म य॰" के सिद्धान्त की चर्चा चलाई और बाबा जी से

प्रश्न किया कि महाराज जप तप की क्या आवश्यकता है? जब इस गेह देहली का स्वामी "शुद्धोसि बुद्धोसि निरञ्जनोसि ससार माया परिवर्त्तितोसि"। यह सुन बाबा जी ने पूछा कि यह विचार विपर्यय किसने किया और किसने इन व्यर्थ सिद्धान्तों को सिखलाया। बाबा कृष्णानन्द का नाम सुन कर वह मुस्कुराये और पूछा कि क्यों जी जब तुम वर्ण परिचय करते थे, क्या तब तुलसी दास का रामायण पढ सकते थे? नहीं। तब तुम कैसे अभी इन सिद्धान्तों का अवलम्बन करके वैदिक कर्मों को छोड बैठे हो। कर्म जनित जिस बन्धन में जीवात्मा पडा है क्या बिना सुकर्मों के शस्त्र चलाये वह कभी कट सकता है? क्या बिना भक्त हुए, बिना ईश्वर प्रसाद के यह जीव मुक्त हो सकता है? इस प्रकार उन्हो ने कर्म योग की आवश्यकता और महत्ता उन्हे समझाई और आदेश किया कि

"विद्याञ्चविद्याञ्च यस्तद्वेदो भयं सह
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥"

"तुम अभी पढ रहे हो, विद्या के पारगत हो और तब ईश्वरा राधन में तत्पर होना। इसका यह नतीजा हुआ कि गरमी की छुट्टियों में और वहा से लौटकर प्रयाग में, उपाध्याय जी रात दिन पढा करते थे, कानून की पुस्तक नहीं किन्तु अगरेजी साहित्य की। ऐसा मनुष्य कैसे परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता था! एक साल फेल हुए और दूसरी बार पुन वही परिणाम हुआ, किन्तु मैं स्वय इसका साक्षी हू कि इतर ग्रन्थों के अवलोकन में वह इतने दत्तचित्त थे कि यही जान पडता था कि सिविल सर्विस के विद्यार्थी हैं। वह स्वय कहा करते थे कि उन दिनों में हम स्थिर कर चुके थे कि हम दूसरी युनिवर्सिटी में जाने वाले हैं इससे साहित्य वाटिका के प्रसून कोई न बचे रहें कि हमारे मन

में उनके देखने की इच्छा हो।

प्रयाग के कम्पनी बाग में, टेनिसफील्ड के निकट, एक महात्मा रहा करते थे जो बाबा कृष्णानन्द के शिष्य थे और छोटे बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे। बाबा कृष्णानन्द के अनुग्रह और आदर को देख छोटे बाबा भी इनसे प्रीति करने लगे और इनमें सहोदरसा व्यवहार हो गया। बाबा कृष्णानन्द के चले जाने पर नित्य सायंकाल में उपाध्याय जी इनही के यहा ज्ञानचर्चा करने आया करते थे। छोटे बाबा के दर्शनों का तो सौभाग्य मुझ को भी प्राप्त हुआ है। क्याही, असग, तृप्तात्मा और आनन्दमय जीव थे कि उन निकट जाते ही ससार जनित ग्लानि और चिन्ता क्षण के क्ष में नष्ट हो जाती थी। ऐसी उनकी आत्मशक्ति थी कि जब क में अथवा मेरा छोटा भाई—हम लोग यहा कालेज में पढ थे—बीमार पडता था तो वह दैवदूत सा पहुचते और ए चूर्ण को वह रखते थे जो सकल व्याधियों का व्याधा था, उसे खिलाते और कहते कि अब तुम अच्छे हुए, खाट पर पडे रहो।

उपाध्याय जी ने दूसरी बार कानून की परीक्षा में अनु त्तीर्ण होने पर अपने ज्येष्ठों से कहा कि न मैं परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता हू, न मुझको स्पर्धा है और न मैं कोई ससार का कार्य्य करना चाहता हू। यदि परिवार दो रोटी और कपडा देना चाहे तो रहूँ, नहीं तो कोई दूसरा ही प्रबन्ध करूँ। जिस परिवार में बडे बडे धार्मिक और तपस्वी लोग हो चुके थे, उनके सन्तान कैसे यह कह सकते थे कि तुम ईश्वराराधन न करो और सांसारिक कार्य्य अवश्य करना होगा। बस क्या था, शीतलगञ्ज ग्रेन्ट, जो गोंडा जिला में एक ग्राम है और इस परिवार के स्थावर-सम्पत्ति का

हेड क्वारटर है, वहा पर उपाध्याय जी रहने लगे और सध्यापूजा के साथ संस्कृत साहित्य और वेदान्त का अनुशीलन करने लगे।

इस समय इनकी माता जीवित थीं और इनके इस विचार पर बहुत कहा सुना किन्तु इन्हो ने कुछ न सुना और माताजी को उत्तर दिया कि माई! तेरे सात पुत्र हैं किन्तु समय पड़ने पर हमही काम आवेंगे। इसको उन्हो ने कई बार चरितार्थ किया, जिसका एक ही दृष्टान्त पर्य्याप्त है। इनकी माता को वातव्याधि थी और बहुत औषधि कर चुकने पर यह स्थिर हुआ कि इन्जेकशन कराया जाय। कर्नेल फ्रेन्च जो मिरजापुर में सिविल सर्जन थे, बुलाये गए, और उन्होंने इन्जेकशन दिया। दैवात् सूई टूट गई। क्लोरोफार्म देकर अपरेशन किया गया किन्तु सूई न मिली। कर्नेल-फ्रेन्च शोकाकुल हो रोने लगे और कहा हमने तुमारी मा को मार डाला, हमको क्षमा करो। माता को जब चैतन्य लाभ हुआ तो उन्हो ने कहा 'हरी को बुलावो'। उपाध्याय जी को तार दिया गया, वह आये और माता को देखकर, प्रयाग लौट आए और छोटे बाबा को विन्ध्यगिरि घुमाने को कह कर वहाँ से ले आए। छोटे बाबा घर पर आकर पधारे। जब घर की मजदूरिन ने रोकर छोटे बाबा से सब कहा और प्रार्थना किया कि माता जी आपका दर्शन चाहती हैं, उन्हो ने हंस कर कहा माता जी से प्रणाम कहो और कह दो "छोटे बाबा घर भर में वर्तमान हैं जहा चाहें प्रणाम करें। तीन अञ्जलि चावल अपने हाथ से भेज दें, आज उसको पका कर छोटे बाबा खायगा और सुई को उसी के साथ हजम कर जायगा"। हुआ ऐसा ही कि इसके बाद करीब १० वर्ष वह जीवित थी किन्तु उनको तदुजनित कोई व्याधि

वा दु.ख नही हुआ।

उपाध्याय जी ऐसे आध्यात्मी पुरुष के महात्माओं में कुछ कैसा आदर और स्नेह होगा आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं। भला तब यह सुन कर कि शीतलगञ्ज से कुछ ही दूर पर बाबा रघुबर दास बसते हैं जो कि रात्रिन्दिव एक कुरसी पर बैठे रहते हैं और बीसों वर्ष से कभी शरीर को सीधा कर एक नींद सोया भी नहीं, कब बिना उनसे मिले रह सकते थे। "सतां सप्तपदी मैत्री" (सज्जनों में सात कदम मे मित्रता हो जाती है) की कहावत चरित्तार्थ हुई और बाबा रघुबर दास इनसे अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गये। उपाध्याय जी ने इन से यह प्रार्थना किया कि वह शीतलगञ्ज चलें और वहीं उनके अर्थ एक कुटी बन जायगी। उन्हो ने सहर्ष उसे स्वीकार किया और एक कुटी उनके अर्थ शीतल सरोवर के निकट बनवाई गई।

बाबा जी बडे तपस्वी और आत्मानन्दी थे। २४ घन्टे बिना हाथ वाली एक कुरसी पर बैठे रहते। एक समय कुछ फलाहार करते और सारी रात हरिनाम की खेती मे बिता देते थे। कोई बडा आदमी जब किसी महात्मा की प्रतिष्ठा करता है तो उसकी प्रसिद्धि बहुत ही जल्द हो जाती है। पाच छ वर्ष मे बाबा जी के यहा मेला लगने लगा और बाबा जी भी "प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा" से इन्द्र के समान मुग्ध हो गए। उपाध्याय जी को इस जन-सन्दोह से बडी घबडाहट होने लगी, क्योंकि लोग उनके पास भी आने लगे और उनके अध्ययन में बडा व्याघात होने लगा। उन्हों ने बाबा जी को बडे कोमल शब्दों में 'प्रतिष्ठा' की बुराईयों की कथाएँ सुनाई और इस फन्दे में न फंसने की चितावनी दी। किन्तु क्या ही मनोहर माया का

जाल होता है कि ऐसा महात्मा जिसकी आयु करीब सौ वर्ष की हो गई थी और जो एक घन्टा भी निद्रित हो समय का अपव्यय बीसों वर्ष मे नहीं किया था वह भी इस प्रतिष्ठा राक्षसी से नहीं बच सका।

एक दिन बाबा रघुबरदासके प्रेमी लोग उनसे सत्सग करके, उपाध्याय जी के यहा ऐसे बेवक्त पहुचे जब कि वह आत्मानन्द में निस्तब्ध थे। वह लोग "एक पथ द्वै काज" के सिद्धान्त पर, समय कुसमय बिना समझे उपाध्याय जी का जगाही दिये। फिर क्या था, वह बडे क्रुद्ध हुए और यह स्थिर कर लिया कि बाबा रघुबरदास को यहा नहीं रहने देना चाहिए। परिवार के हितैषियों ने उन्हे इस सकल्प से विचलित करने को बहुत चाहा किन्तु वह कब मानते। उनका सदा का सिद्धान्त था कि चाहे सर्वनाश हो जाय, किन्तु अध्यात्म अध्ययन में व्याघात न हो। अस्तु बाबा रघुबर दास को कुटी छोड अन्यत्र जाना पडा जो इस स्थान से एक मील पर था और जहा पर उनके लिए कुटी बनवादी गई और उपाध्याय जी इसी बाबा जी की कुटी मे रहने लगे जिसकी गीत उन्हों ने 'हमारी कुटी' के लेख मे गाया है।

सासारिक कलाओं में यदि कोई उपाध्याय जी को प्रिय थी तो सगीत जिसको वह दैवी कहा करते थे। जब कभी वह सगीत सुनने बैठें तो आख मूद कर ऐसे, ध्यानावस्थित हो जायँ कि दूसरे को यह जान पडे कि वह सो गये। वह मीरा बाई का दृष्टान्त दे कहा करें कि यदि कोई ठाकुर जी को प्रेम से गाना सुनावे तो अवश्य कुछ काल के अनन्तर सिद्ध हो जाय। सगीत इतना प्रिय होते हुए भी उन्हें कहीं जाकर सुनने, और जन समुदाय में सम्मिलित होने मे बडी

३रुचि थी, इससे जब कभी व्याह शादी या और कोई उत्सव का अवसर आता, तब उनके विनोदार्थ बड़ा ही सुन्दर नृत्यगान का प्रबन्ध किया जाता था और वह बड़े हर्ष के साथ महफिल में पधारते और दो एक घन्टे बैठते थे। किन्तु महफिल के अवसान में वह आह भर कहते कि यद्यपि सगीत दैवी विद्या है, बड़ा आनन्द देती है किन्तु तब भी इसका आनन्द तब ही मिलता है जब हम अपने आत्मा में स्वस्थ बैठे रहते हैं, नहीं तो अच्छो से अच्छी सगीत दो कौडी की महँगी हो जाती है।

उपाध्याय जी ने दत्तचित्त हो और निष्ठा से अध्यात्म का अध्ययन आरम्भ किया और अपने व्यवसाय से परम सन्तुष्ट, प्रति दिवस आगे को बढ़चले। कालान्तर में उनकी दिन चर्य्या ऐसी श्लाघनीय हो गई कि यदि कोई कवि एक आदर्श आध्यात्म जीवन चित्रण करना चाहता तो इससे उत्तम कल्पना करना असम्भव था।

दिन चर्य्या

तीन चार बजे रात्रि को उठ प्रात: कालीन कृत्य समाप्त कर वह जप और ध्यान योग में लग जाते थे जब तक कि सूर्य्यार्घ का समय न आजाता। सूर्य्यार्घ देकर वह घूमने चले जाते जिस समय प्रकृति का निरीक्षण और प्रणव का जप साथ ही ही साथ होता था। वह कहा करते थे कि प्रकृति की छटा, जब हम स्वाध्याय करते निरखते हैं, तब तुम लोगों के साथ से कहीं अधिक प्यारी लगती है, तुम लोगों के साथ तो उसका दैवी रूप जीवात्मा की तरह छिप जाता है। इन्ही प्रातः कालीन परिभ्रमणों के अनुभवों का फल "दिन चर्य्यादि" लेखों में पाये जाते हैं। घूम फिर कर वह अपनी कुटी को लौटते थे।

शीतल सदन' जो पैत्रिक मकान हैं जिसके उत्तर में "शीनलसरोवर" है जिसकी प्रशसा में वह कहते हैं "हम सब का सत्य ही में जीवन, मर्य्यादा, अनेक जल क्रीडा महा सुखों का दाता और बचपन से हम सबों के साथ खेलने वाला है", इसका मनोहर वर्णन पृ ८५ द्वितीय भाग में पढने योग्य है. इसी के डीह पर एक फूस का प्रशस्त मण्डप है जिस में रात्रि व्यतीत करते थे। इससे सौ कदम पर वह अद्भुत कुटी है जिसमें एक छोटा कमरा है और चारों तरफ बारामदा है। इसमें वह लौट कर चले आते और ध्यान योग करते लगभग दस बजा देते। इसके पश्चात् वह पुन. शौच और स्नान करते। इस समय वह इतने प्रसन्न रहते कि लोग आनन्द की भिक्षा लेने आते थे।

ग्यारह बारह के बीच में भोजन का समय आता और इसी समय वह लडकों बच्चों से भी हंसते और खेलते। इतनी ही थोडी सी देर में वह बच्चे ऐसे निहाल हो जाते कि कदाचित् ही कोई माता पिता दिन भर के लाड चाव में भा इतना सन्तुष्ट कर सकता।

भोजन के अनन्तर पुन अपनी कुटी में चले जाते और चारपाई पर लेटे हुए कुछ काल "माडर्नरिव्यू" पढते थे। इस पत्र का वह बडा आदर करते थे और पढा करते थे। दो घन्टे विश्राम के अनन्तर, पुन. जप आरम्भ होता था और सूर्य्यास्त के पूर्व चित्रया धारण कर वह घूमने को निकलते थे जिसका परिमाण यह था कि जब दशों उपनिषद्, जा उन्हें कण्ठ था अन्त हो जाता, तब वह लौट पडते और गीता स्वाध्याय करत, घर लौटते। समग्र गीता भी उन्हें कण्ठस्थ थो। वापसी में कुल नहीं समाप्त होता था किन्तु तीन चार अध्याय बाक़ी रहता था। घर पहुच वह व्यायाम

आरम्भ करते थे और घन्टे डेढ़ घन्टे व्यायाम करके तब शेष गीता का स्वाध्याय समाप्त करते थे।

उपाध्याय जी से हमने कई बार सुना है कि जब तक व्यायाम से शरीर शुद्ध नहीं होता तब तक प्राण का संयम अथवा ध्यान योग उत्तम रूप से हो ही नहीं सकता।

६ बजे रात्रि को पुनः भोजन कर, चारपाई पर लेटे २, १२ बजे, १ बजे तक ध्यानादि किया करते थे।

उपाध्याय जी का यह अटल विश्वास था कि चारपाई अथवा जूता और कपड़ा से ईश्वराराधन से कुछ सम्बन्ध नहीं है। उनका यह मत था कि पूजा मन से होती है और मन में यह बाह्य व्यवहारों का कुछ असर नहीं पड़ता और न इन बाह्य आचार विचारों का कुछ भी मूल्य है, यदि मन दुष्ट भावनाओं से कलुषित है। उनका यह सिद्धान्त था कि सोते जागते, बोलते चलते फिरते उस मालिक के चरणों में रहने, स्मरण करने, स्वास्थ्य और सुख के लिए कृतज्ञता प्रगट करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। मैंने कभी भी नहीं सुना कि ईश्वर की अनुदारता का उलहना वह देते रहे हों अथवा अपने भाग्य को कोसते रहे हों। वह तो कभी कभी कहें कि देखो संसार में ऐसे मूर्ख हैं जो कांटों पर बैठते हैं और कहीं एक हाथ को उठाये रहते हैं अनेक प्रकार का दुःख शरीर को देते हैं, जब कि इस आत्मा के अमल धाम में सैर करने को शरीर को परम सुखद बिछौना, मसा मच्छड़ तथा गर्मी सर्दी का अभाव चाहिए जिसमें मन सन्तुष्ट और सुखी उस ओर उन्मुख हो।

उपाध्याय जी करीब २५ वर्ष तक शीतलगंज को अपना हेड क्वार्टर बनाए थे, कभी कभी पहाड़ पर प्रकृति का आनन्द लेने के विचार से मिरजापुर चले आते थे।

विन्ध्यगिरि पर जहा अष्टभुजा भगवती का मन्दिर है उसी के ऊपरी भाग में गैरिकसर (गेरूअहिया तालाव) है। वहीं पर श्रावण के मगलों पर एक मेला सा होता है और वास्तव में जगलों में मंगल का ठाठ दिखाई देता है। इस ही अवसर पर मीरजापुर की मीरजा वीणा से प्रादुर्भूत कजरी लहराती है और गर्जन करते हुये घन को सुरीला हाने की शिक्षा देती है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि किसी को साफ मेला देखने की इच्छा हो तो वह मीरजापुर का मग्ल देखे, जिसमें मलिन वस्त्रधारी यदि कही भूल भी पडे तो वह भी सत्सग से श्वेत हो जाय। इसमें जितने जाते है एक दूसरे से रगीन दिली और तबियत दारी में बढ जाने क' प्रयत्न करते। ऐसा कोई न दीख पडता जो पैसे के लिए भीखता और ससार को कोसता सुनाई पडता है।

ऐसे अवसर पर तो उपाध्याय जी जाते नही थे किन्तु यदि ४, ५ दिन पहिले ही से वहाँ विराज रहे है तब तो कर ही क्या सकते थे। इस मेले का गीत "उन्होंने मीरजापुर का सावन" के लेख में लिखा था और कदाचित उनके लेखों मे, वह जन्मभूमि की कथा होने के कारण, बहुत ही हृदय स्पर्शी था, किन्तु 'कादम्बिनी यन्त्रालय' की अक्षम्य असावधानी से 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका सी वह भी साहित्य ससार से लुप्त हो गया। अष्टभुजा भगवती के चरणों से पवित्र इस स्थान को वह अध्यात्म के लिये वैसही समझते थे जैसे भोजन के लिये भूँख। इन पहाडों पर के तपस्वी जीवन से जब ऊबते तब घर लौट आते और गङ्गा जी के तट पर प्रात. साय किसी घाट के शान्त भाग मे बैठ आत्मानन्द लेते और कहा करते थे कि गगा जी जो एक क्षण में बिजली पैदा कर देती है वह घन्टों योग और जप मे नहीं पैदा होती।

महीना पन्द्रह दिन में नगर निवास से असन्तुष्ट हो अपने हेडक्वार्टर शतिलगज को प्रस्थान कर देते और लौटने पर सदा यह कहते थे कि अध्यात्म विद्या ऐसी लज्जावती है कि इसे नगर का घूरना बिलकुल बरदाश्त नहीं है।

उपाध्याय जी ने मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार हृषीकेश, आबू, द्वारिकाजी और जगन्नाथ जी आदि तीर्थ स्थानों में महीनों निवास किया है। क्योंकि वह उन लोगो मे नही थे जो पहुचते ही लौटने का प्रोग्राम बनाने लगते हैं। इन स्थानों की महिमा की कथा कहते हुये भी वह कहते कि जैसा हम अपनी कुटी में अध्यात्म का आनन्द उठाते हैं वैसा और कहीं नहीं। अन्तिम दो तीन वर्ष ब्रोन्काइटिस से पीडित वह जगन्नाथ जी और मीरजापुर में ऋतु अनुकूलता के अनुसार रहा करते थे। मीरजापुर में इस महान आत्मा का अवसान १९२८ ई में हुआ। उनके दो पुत्र, पुत्रियाँ और उनका धर्म पत्नी वर्तमान हैं।

उपाध्याय जी के अवसान में साहित्य की कोई हानि नहीं हुई क्योंकि इधर आठ दस वर्ष से वह अध्यात्म की ऐसी अधित्यका पर पहुच गए थे कि उनको न कुछ लिखने का अवकाश था और न जरूरत समझते थे। जितना लिख दिया है वह साहित्य के आभरण के लिए पार्याप्त है, यही कह कर प्रार्थना को अस्वीकार कर देते थे।

जिसको वह अपने साथ रखते थे उसके आनन्द का क्या ठिकाना। उनके साथ से ही आत्मा इतनी प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाती थी कि दिन पजाब मेल से निकल जाते थे। महात्मा भला जब आतिथेय करेगा तब सासारी जन किस प्रकार उसकी समता कर सक्ते हैं। वहा तो किसी वस्तु की आवश्यकता भावना में आई और उनके मुख से निकला कि अमुक चीज तुमारे लिये मगावे। किन्तु इस आतिथेय से वह जल्द ही थक जाते

क्योंकि अध्ययन में उनको विघ्न होता जिसको वह किसी न किसी प्रकार लक्षित करते और यदि वह न समझ सकता तो उनकी अनिच्छा से उसे ऐसा उद्वेग होता कि वह स्वयं विदा मांगने लगता। इस सम्बन्ध मे एक बडी ही सुन्दर घटना हुई है।

आनन्द मुनि जो हडिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं उनकी कुटी में पहुंचे और बडे आतिथेय से रखे गए। दो तीन दिन मे उनके अत्याचारी शौचव्यवहार से इतने ऊबगए क्योंकि उसके सम्पादन के लिए भृत्यों का आवागमन अधिक हो गया। उन्होने उन से अपनी यात्रा आरम्भ करने की इच्छा प्रगट की जिस पर आनन्द मुनि ने अपनी आध्यात्म उच्चता प्रगट करने के लिए कहा 'अभी दो चार दिन और ज्ञानवार्त्ता सुनो, फिर हम लोगों से प्रति दिन कहां समागम होता है, इसका उत्तर उन्हो ने दिया बातें करने में क्या है, यहां चुप बैठकर पढने का काम है। खैर रात्रि हुई। आधी रात्रि के बाद इतनी चींटियों ने मुनी जी के आसन पर आक्रमण किया कि किसी न किसी प्रकार प्रात काल हुआ और मुनि जी वहां से चलता हुए।

यदि अपने पार्श्व वर्ती अतिथि की सेवा में जिसका उन्हें बडा शौक था, साहित्यचर्चा करने लगते तो यही इच्छा होती कि यदि ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने का यन्त्र होता तो लोग सुन सकते थे कि कैसी कवियों और कविताओं की सराहना और समालोचना वह करते थे कि उनके अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य की मर्मज्ञता थी उनके लेखों में समालोचना का कहीं नाम ही एक प्रकार से नही है क्योंकि समालोचना को वह निकृष्ट कविता कहा करते थे।

ऐसे महात्मा लेखक की जिनको गद्य साहित्य का बाण भट्ट कहना चाहिए आत्म कहानी पूर्ण रूप से लिखना एक

पुस्तक ही हो जायगी किन्तु 'साहित्य हृदय' के हृदय में प्रवेश करने के लिये जितने की आवश्यकता थी उतना चित्रण कर दिया गया।

प्रथम भाग का स्वागत

प्रथम भाग जब 'साहित्य हृदय' का निकला तो हिन्दी साहित्य रसिकों के पास समालोचनार्थ भेजा गया। बहुत लोगों ने तो समालोचना करने की कृपाही नहीं की। कुछ को तो उसने आनन्द से गद्गद् कर दिया, कुछ उसके 'का' 'के' 'की' की ग़लतियों से ऐसे रुठ गये कि उन्हें उसके अर्थगाम्भीर्य साहित्य प्रौढता और मौलिकता दिखाई ही नहीं पड़ी, एक अभिमानिनी नायिका सी पत्रिका अपना बचपन इस समालोचना में प्रगट किया कि उपाध्याय जी मे अच्छे कोटि के लेखक होने के अङ्कुर दिखाई पडते है, जैसे जब कोई आप अच्छी विनोद की कथा कहें तब बच्चा कहता है 'हाँ तब'।

अभी तक परीक्षा विभाग के सैनिकों ने इस की अमूल्यता को नहीं समझ पाया क्योंकि हमे विश्वास है कि कभी आद्योपान्त पढा ही नहीं, यदि पढते तो अवश्य समझ पडता कि ऐसा गद्य अद्यावधि हिन्दी में लिखा ही नहीं गया है, भविष्य का ईश्वर जाने। यह हिन्दी इतिहास लेखक भविष्य मे समालोचना करते लिखेगा कि इतने वर्ष ऐसी लेख माला की महत्ता को देखने में साहित्य मर्मज्ञों को लगा।

द्वितीय भाग को प्रकाश व कर जितने उपाध्याय जी के लेख है मैंने समाप्त कर दिया और करबद्ध गुरुदेव से प्रर्थना है कि गुरु ऋण से मुझै मुक्त करदे। उपाध्याय जी के सुपूत भुवनेश्वर प्रसाद को धन्यवाद देना आवश्यक है जिसकी सहायता के विना इस भाग का सम्पादन असम्भव हो जाता।

नर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय



द्वितीय भाग ।

धैर्य्य ।

कान्ता कटाक्ष विशिखा न लुनन्ति यस्य
चित्तं न निर्दहति कोप कृशानुताप ।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशा,
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीर ॥



ब मनुष्य को विपत्ति की आँधी चतुर्दिक् से घेर लेती है, जब उसके प्रेम की ग्रन्थि विधिवशात् अकस्मात् टूट जाती अथवा जब मोह और अविद्या का निविड अन्धकार उसकी बुद्धि को भ्रान्त कर देता, वा जब घनी गोलियो की वर्षा के मध्य वह मुग्ध सा देख पडता अथवा जब किसी घाटा के कारण, चाहे वह अर्थ-जनित, भूमि-जनित वा किसी और प्रकार से हो, अचेत सा हो जाता है उस समय पर्वत से बोझे को भी कणिका के तुल्य करने में, यदि कोई भी समर्थ है तो

धैर्य्य। सुतराम् इसे प्राप्त करने का प्रयत्न सब को करना परमावश्यक है। क्योंकि धैर्य्यवान् यदि सात्विक और देवता है तो अधीर राजसी तथा तामसी बालक सा है। यदि एक वीर तो दूसरा कादर है, यदि प्रथम कठिन से कठिन काम को सहज ही में कर लेता है तो दूसरा बीच ही में फटफटाता रह जाता है। यदि वह समझदार, विचक्षण तथा चुस्त है तो अधैर्य, बालक सा उच्छृङ्खल है, यदि धैर्य्य पण्डितों का धर्म है तो यह मूर्खों की प्रकृति है।

सब ही कार्य्यों में धैर्य्य का अधिक प्रयोजन है, परन्तु ईश्वर के भजन और उसके अन्वेषण में तो इसकी अत्यन्त ही अधिक आवश्यकता है। मैंने देखा है कि बहुत से मनुष्य जो सत्यत बड़े पण्डित और बुद्धिमान थे कुछ ही दिनो के लिये ईश्वर में अपनी लय को लगा सके क्योंकि आनन्द वा विश्वास देने वाली कोई वस्तु अपने जप तप में न देख पड़ने पर यह समझ कि यह विषय ही परम शुष्क है और ईश्वर अप्राप्य है, ये लोग धैर्य्य छोड़, पूजा जप करना, गीता वा उपनिषद् का पाठ करना त्याग देते हैं। इसी सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि धैर्य्य पूर्वक इस संसार की लुभावनी वस्तुओं से उपराम लेना चाहिये, और यदि ये विश्व की अनेक चित्ताकर्षक वस्तुयें हम सब को अपनी ओर खींच ले जांय तो फिर भी धैर्य्य पूर्वक निग्रह कर अपनी लव में लीन होना चाहिये। अधिकतर लोग यह समझ कर कि माया बड़ी प्रबला है इससे चर और अचर कोई बचा ही नहीं और न बचेगा, विशेषतः सुन्दरियाँ उसकी एक ऐसी अमोघ हेति है जो ज्ञान के सहस्रों पद्धतिओं को अपने कटाक्ष कृपाण की धार से बात की बात में छिन्न भिन्न कर सकती हैं, यह समझ

अधीर हो, अपनी शान गुदड़ी को लोग लपेट कर ताक़ पर रख देते हैं और भूल से भी उधर नहीं देखते।

हम लोग देखते हैं कि घोड़े वा बाइसिकिल पर चढ़ने वाले वा परीक्षा देने वाले विद्यार्थी गिरने या फेल होने से नहीं डरते। यद्यपि कोशिश उनकी यही रहती है कि वे न गिरें और न फेल हों, तथापि जब वे गिर पड़ते हैं तो आप उनके मुंह से यह न सुनियेगा, कि अब हम घोड़े पर न चढ़ेंगे या इमतिहान न देंगे। इसी तरह ईश्वर के भजन में भी हम लोगों को धैर्य्य धारण करना चाहिये, यदि माया घसीट ले जाती है और हमें अपने वश में कर लेती है तो उससे हार नहीं मान लेनी चाहिये वरञ्च फिर भी द्विगुणित वेग से उसे ध्वस्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

सब कामों में धैर्य्य की आवश्यकता है। पढ़ने में जो धैर्य्य धारण किये हुये उसकी अनेक तकलीफों को सहता है तो वह देखता है कि कालान्तर में विद्या रूपी पवित्र निर्झर उसके अन्त करण से स्वत प्रवाहित हो उसको सन्तुष्ट कर देता है। इसी प्रकार और सांसारिक कर्म्मों के करने में धीर सदा सफल प्रयत्न होता है और अधीर आधा या चौथाई कर उसे असम्भव समझ कर्त्तव्य-संग्राम क्षेत्र से भाग जाता है। सिद्धान्तत सबको निरन्तर कार्य्य करते चले जाना चाहिये चाहे बाधा रूपी वायू कैसह तीव्र क्यों न बहे, क्योंकि किसी कार्य्य में सच्चे यत्न और स्नेह से प्रवृत्त होना कभी निष्फल नहीं होता। देखिये यद्यपि जगत् कलम्बस को बेवकूफ बनाता और कहता रहा, कि अमेरिका अथवा कोई नई दुनिया, केवल उसके दिमाग की कल्पना मात्र है, पर उस धीर ने किसी की एक न सुनी और अन्त को अमेरिका रूपी अज्ञात भौधना मारी

का घूघट पट खोल ही दिया। ऐसा ही विलवर फोर्स इंगलैण्ड में गुलामी के लिए मनुष्यों का क्रय विक्रय बन्द करने के प्रयत्न में पैम्फलेटों द्वारा अर्थात् पार्लियामेंट से प्रार्थना करता ही गया, पर उसकी एक भी नहीं सुनी गई। किन्तु वह धैर्य्य धर निर्विघ्न ही इस विषय पर सब से कहता ही गया कि यह परम गर्हित निचातिनीच व्यवहार है तथा हम सभों की सभ्यता में यह एक बडा भारी कलङ्क है। इसका यह परिणाम हुआ कि जब वह अपने मरण शैय्या पर लेटा था और उसके मित्रों ने यह प्रिय सन्देश उसे सुनाया कि गुलामी-प्रथा को पार्लियामेण्ट ने समूल नाश किया, वह अपनी सफलता पर हर्ष प्रगट करते हुए, प्राणों को त्यागा। योंही सर्व साधारण लोग, रोम में, जो भद्रकुल वालों से सदा नीच और तुच्छ समझे जाते थे और नित्य ही नये अपमानों के भागी होते थे, धीरज धर अपने स्वत्वों की प्राप्ति के अर्थ उनसे लडते ही रहे, अन्त को उन्होंने इस अनुचित् भेद को निर्मूल ही करके छोडा।

धैर्य्य गुण सब में तुल्य नहीं हो सकता। भाग्यवश किन्हीं किसी में तो यह इतना अधिक रहता है कि जब सारा लोक मारे भय से काँपता और चिल्लाता है उस समय भी धीर उचित कर्तव्या कर्तव्य पर शान्त चित्त से स्थिर रहता। देखिये अर्जुन और कृष्ण जिस समय दोनों तरफ की सेनायें युद्धोन्मुख खडी थीं, आपस में यह निर्णय कर रहे थे कि युद्ध उचित है या नहीं, और यदि युद्ध में सारे कुटुम्बी मारे जायेंगे तो उसमें पाप होगा या नहीं। कहते हैं कि नेपोलियन, वेलिङ्गटन, मार्लबरो इत्यादि युद्ध के समय भी ऐसे अविचल भाव से रहते थे कि मानों वे अपने गोल कमरे ही में बैठे हैं। विलियम थर्ड के चेहरे पर यह प्रसन्नता तब तक नहीं देख पडती थी

जब तक कि वह युद्ध में नहीं लड़ा होता था। योद्धा लोग कहते हैं कि वे ही संग्राम में मारे जाते हैं जो कायर हैं या धीरज छोड़ भभर जाते हैं।

सुकरात जब डेलियन से हार के एथीयनों के साथ भागते चले जाते थे तो उनके दो एक विद्वान धनी शिष्यों ने उनसे, जो जिरह बखतर से लदे पैदल ही चले जाते थे, प्रार्थना की कि ऐसे समय में भला होगा यदि आप भी अश्वारूढ़ हो जायँ परन्तु उस बड़े उपदेष्टा ने हँस कर कहा कि वे सब उनकी चिन्ता न करें। कहते हैं कि सुकरात ऐसी धीरता और स्वस्थता पूर्वक चला जाता था, और उसकी आँखें कुछ ऐसी ज्वाला फेंकती थीं कि जो उसपर आक्रमण करने की इच्छा करता था वह पहिले अपने ही बचने की फिक्र सो बार सोच लेता था क्योंकि ऐसे घोर वीर पर आक्रमण करना कुछ सहज न था, यद्यपि वह पैदल ही था।

धैर्य बड़े से बड़े बोझ को हलका कर देता है। जहाँ एक सदा काम के भार से रोया और झींका करता, वहीं दूसरा उतना ही काम करता हुआ भी सुखी और सानन्द अपने दिवस को काटता है क्योंकि उस के पास धैर्य है जिसके कारण वह सब काम करता हुआ भी सुखी रह सकता है। एक कहावत है कि, "धैर्यवान् को पाँच कोस पाँच गज है परन्तु अधीर को वही पाँच कोस पाँच सौ कोस है।" धैर्यवान् अपने भार को प्रसन्नता से अपने सिर लेता है, जिस को अधीर उठाता है पर रोता झींकता और कराहता रहता है।

यह सच है कि जब शतघ्नी और बन्दूकें अपने मुख से ज्वाला फेंकती हुई अग्नि के ओले उद्गमन करती हैं और घोर अन्धकार में बिजली की धार से चमकते हुए भाले और

कृपाण की पंक्तियाँ देख पड़ती हैं तब भी मनुष्य धीर और स्वस्थ्य रह सकता है पर जब कामिनियों के कटाक्ष रूपी तीर हृदय विहङ्ग को वेधता है तब धीरता, लोकलज्जा, जप, तप, शास्त्र ज्ञानादिक साथ छोड़ भागते हैं। एक साहब का कथन है कि यदि इस लोक में हसीन माशूकाएं न होतीं तो ईश्वर से मिलने में उन्हें कुछ देर न लगती, पर लाचारी है कि जहाँ पाजेबों की झनकार उन्हें सुन पड़ी कि सच मानिये, यहीं से उनका मनमातङ्ग रामशास्त्र की सुरझानेवाली लाखों पंक्तियों के बन्धन को, अल्हड़ बछेड़े सा अगाड़ी पिछाड़ी, तोड़ कर उसी देश में भ्रमण करने लगता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तत्क्षण की चोट हम सब को ऐसा ध्वस्त कर देती है कि हम अपने चेत में नहीं रह जाते, विशेष कर जब प्रेम वा विरह की चोखी तीर मन को बावला सा बना देती है परन्तु उस समय यदि धैर्य्य धर कुछ काल मन से मोंगें, यानी कुछ देर तक चुप चाप बैठें, और तब शास्त्रों के उन पंक्तियों को, जो उसके पोलेपन को दिखाती हैं, सोचें वा मित्रों से कहें तो ऐसे दुःखों की तीक्ष्णता बहुत कुछ चली जाती है और जान पड़ता है कि वह बोझ जो हमारे सिर पर लदा हुआ था, उन सभों ने आपस में बाँट सा लिया, जिससे कि वह प्रेम रूपी दारु, जो अन्तःकरण को प्रतिक्षण क्षीण सा कर रहा था, कहने मात्र से मिट गया और बहुत कुछ सन्तोष और धैर्य्य प्राप्त हो गया। ज्ञानियों और भक्तों पर जब यह प्रेम अपना पाश फेंकता है, तो वे भक्ति और ज्ञान द्वारा उसे छिन्न भिन्न कर देते हैं और अपने परम प्रिय स्वरूप में पुनरपि स्थित हो जाते हैं, और समझते हैं कि कोई चाण्डाली उनके पवित्र अन्तःकरण देहली में प्रवेश कर

गई थी, जिसे निकाल कर वे फिर भी सुखी हो गए हैं। ऐसे लोगों पर जब प्रेम आघात करे, जो इस सिद्धान्त के हैं कि विषय उपासना से उत्तम और उत्कृष्ट सुख और कोई नहीं है तो उन्हें ऐसे समय उस देश को छोड देना चाहिये या लोक के अनेक कर्म्मों में दत्त चित्त होना चाहिये जिसमें उनका इधर ध्यान ही न जाय, लेकिन यह उपाय मनुष्य तभी कर सकता है जब वह धैर्य्य को न त्यागे।

जब विपत्ति के तूफान इस जगत में उठते हैं वा विक्षेप समुद्र की ऊँची उर्मियां आकाश तक प्रलम्बायमान होती हैं वा क्रोध भूत इस शरीर को जब अपने वस में कर लेता, वा मोह का निविड अन्धकार जब विवेक सूर्य्य को अपने हृदय में अन्तरलीन कर लेता, वा लालच स्वैरिणी जब अपने कटाक्षों का आक्षेप करती है, तब ऐसे समय में केवल धैर्य्यवान् इन दुखों और झमेलों को काटता हुआ पार पहुँच सकता है क्योंकि जो स्वस्थ है, और धैर्य्य पर्वत से च्युत नहीं हुआ, वह अपने हिताहित को समझ सकता है, बुरे और भले कर्म्मों को जान सकता है, मित्रों और शत्रुओं को पृथक् कर सकता है। एक अग्रवाल महाशय जो साधु हो गये हैं और जो वास्तविक् में साधु हैं, कहते हैं कि जब वह गृहस्थाश्रम में थे तब उन्हें डर मालूम होती थी, पर जब से वह इस आश्रम में आये, चाहे कैसा ही भयङ्कर दृश्य उन्हें क्यों न दीख पडे, उनका धैर्य्य उन्हें कभी नहीं छोडता। यहाँ तक कि एक दिन जब वे शराब पी रहे थे उन्हें एक कृष्ण सर्प दीख पडा और उन्होंने उसे डाट कर कहा कि तू चला जा अब तुझे दर्शन मिल चुका।

साराश यह कि सात्त्विक मनुष्यों में धैर्य्य का अंश बहुत विशेष रहता है, चाहे ऐसा कहें कि जितना सात्त्विक मनुष्य होगा

उतना ही उसमें धैर्य्य का अंश अधिक होगा। देखो पुराने लोग हम लोगों से कहीं अधिक सात्त्विक थे इससे उनमें कैसा धैर्य्य पराक्रम और वीर्य्य था। देखिये भीष्मपितामह धैर्य्य पूर्वक शर शैय्या पर लेटे ही लेटे अपने शिष्यों को उपदेश देते रहे और उचित काल उपस्थित होने ही पर अपना प्राण त्याग किया। न जाने क्यों जैसे अत्यन्त जरत्व सिवा योगियों के और सब के बुद्धि में ह्रास पहुँचाता और उनके अनेक सद्गुणों को नष्ट कर उनके स्थान में अवगुणों को भर देता है, ऐसी ही इस दुनियाँ की भी गति है कि आगे जो मनुष्य होते थे वे विशेष बुद्धिमान, तपस्वी, सात्त्विक तथा सन्मार्गगामी होते थे किन्तु अब कलियुग में उनकी प्रकृति विशेष कर राजसी तामसी होती चली जाती है।



ज्येष्ठ

बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन तन माहँ ।
देखी दुपहरी जेठ की छाहौं चाहति छाहँ ॥



ष्ट क्रूर लोभी नृपति सा, नदी सरोवर तड़ाग, और अनेक जलाशयों के जल सम्पत्ति को निःशेष लूटते हुए भी सन्तुष्ट नहीं होता और नित्य ही कलक्टर सा तहसीलदार सूर्य्य को घुड़कता कि वे अपने अंशु सिपाहियों को ताकीद करें कि आर्द्रता सम्पत्ति कहीं से वसूल होने को पड़ी न रह जाय। ऐसी आज्ञा दे, सारे आकाश को धूलि धूसरित कर, खाकी अखाड़े के महन्थ सा, मध्य आकाश में बैठ तप करने वाला, या भगवान् शंकर सा दिगम्बर वेष धारण कर झञ्झावात मिस अट्टहास कराने वाला और हिंसक पशुओं को, ग्रीष्म तप से संतप्त कर अरण्य को तपोवन बनाने वाला, मृगों को मृगतृष्णा सरोवर का दर्शन करा और उसके प्राप्ति के अर्थ दौड़ा कर, माया के दुःखद परिणाम का अनुभव कराने वाला, तेजवान् होते हुए भी, कीर्त्तिवान् नहीं, ज्येष्ठ होते हुए भी, कनिष्ट इतना भी आदर न पाने वाला, भुवन विजयी

होते हुए भी ऋतुराज नहीं सब को स्वेद से मस्तृण करते हुए भी स्नेही नहीं, सहस्त्रों रसाल के फल रूपी गजमुक्ता को पहिने हुए भी शबर सेनापति नहीं, मधूक, जम्बू इत्यादि वृक्षों को हरियाली जागीर देते हुए भी, खदिर (खैर) से अनेक उलहना पाने वाला, लाल लाल लीचियो मिष अपनी जवानी को दिखा, मोगरा, मोतिया और बेला रानी को लुभाने वाला, सयोगियों को हठात् ब्रह्मचर्य्य का पाठ पढ़ाने वाला, मधूक वृक्ष को अनेक रंग की पत्रावलियों से सम्पन्न कर, यूरप की इतराती बीबी कोलियस को लज्जित करने वाला, अरुण कर्णिकार का कर्णाभरण पहिन, चम्पारानी से पाणिग्रहण करने वाला, और राधालता सखी का अपमान कर, परम् सुन्दरी महारानी मालती से, शनैः २ स्नेह के चाटुकार वचन बोल, उन्हें उन्नि द्रित करने वाला, लोनी पुष्प की बूटेदार चूनर मिष, माड़वारी रंगरेज सा रोजगार करने वाला, कवियों के परम् प्रिय और वियोगियों के वैरी कोइल के कण्ठ को खोलने वाला, बड़े बड़े लम्बे बरफ के चट्टानों को हिमालय के मस्तक से पुण्य क्षीण मनुष्यों सा मर्त्यलोक में भेजने वाला, वा हिमालय के बृहत श्वेत जटाभार को नापित सा मुण्डन करने वाला, वर्ष भर हिम के मध्य में बसने वाले पूजनीय भगवान बदरी नारायण के हिमवर्ज फाटक को खोलने वाला, ज्येष्ठ, अपने प्रताप को जङ्गल, पहाड़, एव सकल भूतल पर प्रसार करने लगा।

भगवान कृष्ण के विरह से मधुबन चाहे न पर्ण विहीन हुआ रहा हो और विरहियो सा वेष चाहे न धारण किये रहा हो, किन्तु घनश्याम के विरह से पर्वत तो तृण परिच्छेद हीन, सूखे वृक्षों से दीन विरक्त वा दिगम्बर सा राख लपेटे खड़ा रहता है और मित्र पवन के आते ही, उनसे दुःख और दारिद्रय की

कथा इतनी कह सुनाता कि वे भी सतप्त हृदय और उद्विग्न मानस हो हाहाकार करने लगते। झरने विचारों के मार्ग का चिन्ह मात्र, उजडे बादशाही, वा नगर सा अवशिष्ट रह गया है, जो कि केवल उत्प्रेक्षा देवी अनुमान कर सकती है कि यहाँ भी कभी जल कलकल शब्द करता, वृक्षों को प्रसन्न कर, पक्षियो के मिष वाह वाह की दाद लेता रहा होगा और यहीं कभी पथिक, प्रेमी, कवि वा सयोगी जनो ने इसके अनेक शब्दों और विभ्रमों को देखने में घण्टो बिताया रहा होगा। वनलता-मण्डपों के उजड जाने से, वन देवियाँ रात्रि में पर्वत के वक्षस्थल पर क्रीडा करने नहीं आतीं इससे सारी रात चीतों मिष चिल्लाता और लूह के मिष आह भरता पर्वत लखाई पडता है।

यद्यपि पर्वत की ऐसी उजाड अवस्था है पर तराई के जङ्गलों को देखिए तो ज्ञात होगा कि ज्येष्ठ यहाँ के जङ्गलो का तो सतत उपकार ही कर रहा था। नूतन पल्लवलियो से सम्पन्न जम्बूक, शाल, करवन और कुसुम इत्यादि को देखने से यही भान होता है मानो अद्भुत रस के अधिष्ठाता ब्रह्मा ने इन्हें अभी निर्माण किया है। वा ये वृक्ष ब्रह्मचारी गण से है जो पाप धूलि को अपने भागवत कर्मों से नष्ट कर, अब माणिक्य से चमक रहे है वा भगवती कालिन्दी हलधर के त्रास से वृक्षों के रूप में यहाँ विचर रही है। लम्बे लम्बे हरे वृहत् सचिक्कण पत्तों से सजे शाल वृक्ष तो ऐसे जान पडते मानो सारे वन के अधिपति यही हैं, वा उत्कृष्ट तप करने से उन्हें वर मिला है कि तुम्हारा शिर वनस्पति वर्ग में सब से ऊँचा रहेगा वा आकाश शाहन्शाहने के चाव से है, लम्बे होते हुते हुए भी बेढे नहीं, सब से उच्चपद पर बैठकर भी जिन्हें अहकार का लेश नहीं, शाल नामधारी होकर भी, शाल के धारी नहीं, हर हर जप करते हुए भी, शैवी

को जाते हुए सूर्य्य भगवान की, अपने घोसले से स्तुति कर रहे हैं।

ग्रीष्म का उत्पात और निलयश क्रूरता बढ़ते देख और मोर पपीहा कोइलों की पुकार को सुन, पूर्व समुद्र में सोता हुआ पूर्वानिल दया से दौड़ पड़ा और अपने आगमन की घुरघुराहट मिष तुरही बजाई और सिंह मिष, ग्रीष्म के उपद्रव पर, कुम्भ में नियन्त्रित कुम्भकर्ण सा, भयावह चीत्कार करते, अपरिमित पयोद पदातियों को लिये, विद्युत कृपाण फेरता हुआ, ललकारता, गर्जता, ग्रीष्म शत्रु पर बढ़ा, तो देखिए सकलवृक्ष, वर्षा के आगमनसूचक दूत पवन को झुक झुक कर अभिवादन करने लगे। कुटज पुजारी ने पुष्पार्घ्य दिया, कोइल पपीहों ने स्वागत और झिल्ली सूतगणों ने स्तुति आरम्भ किया। किन्तु थोड़े ही काल पश्चात् पवन ऐसा प्रचण्ड हो गया कि चिड़ियो और बन्दरों का शाखा पर रहना असाध्य हो गया। बसवारी, झाऊ और सर्व के वृक्ष तो प्रसन्न हो गीत गाने लगे जिसे सुन गवाँर सा तालवृक्ष तबला पीटने लगा परन्तु गाएँ तो जंगल से शब्द करती हुई, पूछ उठाए घर की ओर भागीं। आकाश में चक्कर लगाने वाले, और मृतक शरीरों को भी भक्षण कर जाने वाले गृद्ध, पूर्व दिशा में हलचल देख बीस बीस हाथ की डुब्भी ले, वृक्षों पर उतर आए। चील्ह और शिकरा इत्यादि इस उत्पात को देख अपने कलरव मिष पक्षी वृन्द को जनाया कि तुम्हारे घोसले को उजाड़ने वाला, मोगल बादशाहों की फौज सा, पवन आ पहुँचा।

सब के प्राणदाता पवन जी ऐसा इस समय सबको हिला रहे हैं जैसा कदाचित् ही कोई मालिक अपने नोकर को भाक्यो से झकोरता हो। इतने ही से न सन्तुष्ट रह पितापवन,

अपने पुत्र के समान् उन्पात जो मचाने लगे तो महा उपद्रव हो चला किन्तु यह सब आपत्ति बड़े आदमियों के समान बड़े वृक्षों पर ही आती थी, छोटी छोटी वनस्पतियाँ नो लम्बी लम्बी दण्डवत लगा प्राणदान माँगती और पाती थीं। पृथ्वी-तल पर पडी सूखी पत्तियाँ जो आकाश में नर्तन करने का स्वप्न भी नहीं देखतीं थीं, आज क्षुद्रों सी आकाश में इतराने लगीं। इधर यदि पवन देव के अनेक शब्दों को सुनिये तो कहीं जान पडता कि निमन्त्रित सन्यासियो का गोल हर हर करता चला जा रहा है, कहीं ऐसा अट्टहास करता मानो बावला है। एव कहीं ऐसे खरखराहट का स्वर निकालता कि यह जान पडता मानो कोई लोमडी वा खरहा पर्ण विकीर्ण स्थली में कुत्ते के आखेट से उद्विग्न भागा चला जा रहा है।

परन्तु जब कि वायु शान्त हो जाती और चन्द्रमा आकाश में आ विराजमान होते हैं तो अद्भुत ही सौन्दर्य्य प्रकृति धारण करती है जिसको अनेक उत्प्रेक्षाओं से कविता कह सकती है कि क्या लोक था और क्या हो गया। प्रकृति की शान्तता की उपमा यदि बोपार-निती से छूटा मनुष्य मुख से दी जाय तो अयुक्त न होगी। अथवा अविद्यातिमिर तिरोहित अन्त करण सा, जो गुरू की शिक्षा द्वारा, शास्त्र अवलोकन से वा विपत्ति से, शुद्ध और शान्त हो गया है अथवा उस प्रशान्ति सी जो कि किसी ग्राम में आती है जब कि दो चार दस झग-डालू औरतों का झगडा निपट जाता है। इसी प्रकार जब तूफान, समुद्र में भागते हुए, स्टीमर और जहाजों को अपनी लहरों से ताडित और तरलित करता, एव उसके मुसाफिरों को व्याकुल कर, दैवी, भक्त और आस्तिक बना, कुछ काल के पश्चात् निकल जाता तो उस समय नाविकों का हृदय भी ऐसा

ही सुखी होता है जैसी कि इस समय प्रकृति की अवस्था हो रही है।

यद्यपि तूफान चला गया है तब भी आकाश ऐसा ध्वान्त और धूलि धूसरित हो रहा है और तारापति ऐसे निस्तेज और आभा रहित हो रहे हैं मानो पक लुण्ठित हस से वा धूलि धूसरित कश्चित् दिव्य आकाश यात्री से हैं। अथवा अनेक जन्म के दुष्ट सस्कार से जैसा यह हृदय ध्वान्ध और मलिन हो जाता है कि परम् पुरुष परमात्मा की दिव्य ज्योति का ही प्रकाश उसमें नहीं दिखाई पडता अथवा ऐसा कहें कि भगवान सूर्य्य अपने तेज से वनस्पति वर्गो के तथा तृणवस्त्र मे ढकी पृथ्वी के वस्त्र को दुःशासन सा अपहरण कर लिया, जिसे देख चन्द्रमा शोक से व्याकुल अज्ञानी सा सारे आकाश में धूलि उडाने लगे।

इस समय जङ्गल में ऐसी शान्ति आ गई है मानो वह हर हर जप करते अब समाधीस्थ हो गया। पत्तियों ने भी अपने खडखडाहट से तामसी पुरुषों के हृदय में डर उत्पादन करना छोड दिया। शूकर मृग और सावर इत्यादि पशुगण जो भयभीत हो इतस्ततः भागते थे अब शान्त मन हो अपनी अनेक क्रीडाओं का आरम्भ किया। अब तो हाँफता हुआ महोदधि भी तूफान से विश्राम पाकर मद विघूर्णित कुम्भकरण सा सोने लगा।

यह वडे आश्चर्य्य की बात है कि प्रकृति का प्रभाव हम सबों के हृदय पर ऐसा पडता है कि उसके उद्विग्नावस्था में हम सब भी अशान्त हो जाते हैं और किसी प्रकार प्रकृतिस्थ नहीं हो सकते और जब प्रकृति में शान्ति रहती तो हम सबों का भी अन्तःकरण बसन्त कालीन समुद्र सा शान्त रहता।

इस प्रकार अपनी पर्णकुटी में बैठे बैठे प्रकृति की अनेक लीलाओं को देखा करता हूँ और जब मन में आया तो साहित्य लोक में भगवती सरस्वती के सहारे, आप लोगों के चित्त विनोदार्थ, तूफान उठाते और ज्येष्ठ के सुख तथा दुःख की समा दिखाते हैं।



भक्ति-योग

भक्त्यात्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातु द्रष्टु च तत्वो प्रवेष्टु च परंतप ॥



कार सगुण उपासना को भक्तियोग कहते हैं । अथवा परमात्मा की अकथनीय महिमा और औदार्य्य को देख वा उनकी अनेक लीलाओं पर—जिन्हें उन्होंने धर्म के उद्धारार्थं वा भक्तो के रक्षणार्थ किये हैं—विचार कर, एव सुन्दरियों अथवा पुरुषों के सरस अद्भुत रूप, तथा वनों की रम्यता को देख, रचयिता को सकल सौन्दर्य्य समुद्र समझ, जो उससे नेह जोड़ते हैं, वे भी भक्तियोग सम्पादन करते हैं । कुछ लोग प्रकृति के अनेक अद्भुत कार्य्यों का परिशीलन कर तथा यह अनुमान कर, कि कोई अवश्य आकाश में ऐसा खिलाडी है जो सहस्रों नक्षत्र-कन्दुकों को ऐसी विचक्षणता से नचा रहा है कि अनादि काल से वे एक दूसरे से बिना लडे परिभ्रमण कर रहे हैं और कुछ लोग वेदव्यास विपश्चि से शिक्षा प्राप्त कर संसार की नि सारता और नश्वरता से रुष्ट हो, अपनी विद्या, बुद्धि तथा विवेक को सच्चिदानन्द के चरणकमलों में समर्पित कर, अहंकार शून्य हो जाते हैं । उक्त सबों की उपासनाओं को भक्ति-योग कहते हैं ।

यह कि सकल लोक का स्रष्टा, अदृश्य प्रपञ्चातीत अव्रण अकाय, भावनातीत हैं, सब से अलग, द्रष्टा मात्र, सदा परोक्ष प्रिय, तप ब्रह्मचर्य्य और भजन से भी अवश्य नहीं मिलने वा देख पडने वाले हैं यथा —

ना वह नाचै ना वह गावै ना वह वेनु बजावे।
वह तो माहेर ऐसा मालिक गर्भवास नहिं आवे॥

अथवा वह विद्युत शशि सूर्य्य और अग्नि से भी अप्राप्य है, मन सा प्रबल यात्री को भी शिथिल कर देने वाला है, और वह अपने निर्मल देश को कभी छोडता ही नहीं, ऐसा, भक्ति योग के उपासक भगवान् को नहीं मानते। ये तो उसके साकार-रूप राम अथवा कृष्ण को पाकर, अपनी भक्ति भावना से ऐसा समझते मानो ठाकुरजी इनके साथ साथ घूमने वाले, और विपत्तियो में उनकी टेर सुननेवाले हैं। यहाँ तक कि भक्तजन सभी ठौर वर्त्तमान रहने वाले को, एक ठौर पधार देते हैं। उन्हें खिलाते तब स्वय खाते, पानी पिला कर पीते, कपडा पहिना कर स्वयम् पहिनते, इस प्रकार इष्टदेव का दास बन, उनसे अपने मानसिक, तथा कायिक वेदना तथा दुःख को हृदय खोल कर कहते, और देखते कि दुःख दरिद्र क्षण के क्षण में दूर हो जाता है। ऐसा पद पद पर सहायक और मित्र, भक्तजन भगवान को समझते हैं और ऐसी दृढ उपासना में कुछ काल स्थित रहने से मनुष्य निश्चय भक्तियोग को प्राप्त कर, परमपद को पहुँच जाता है। इसी से भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जो ज्ञान योग से साध्य है वही भक्तियोग से और जो मनुष्य दोनों को एक सा देखता है वही वस्तुतः देखता है।

आदि में आत्मविद्या को भक्तियोग से प्रारंभ करने में अत्यन्त सुगमता होती है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि शरीर-

धारो का अव्यक्त उपासना प्राय: क्लिष्ट और दुखदायिनी होती है क्योंकि मात्राओं के संस्पर्श से मनुष्य की बुद्धि कुछ ऐसी स्थूल और मन्द हो जाती है कि उससे "सूक्ष्मात्ति सूक्ष्मो महतो महीयान्" सोरह कलावाले, अद्वितीय ब्रह्म में मन का स्थित करना परम कठिन और प्रायः दुस्साध्य होता है। इसी से हमारे पूर्वजों ने मूर्तिपूजा की प्रथा चलाई है। जब मनुष्य मन्दिर में किसी विशिष्ट व्यक्ति के रूप की सुहावनी प्रतिमा विराजमान देखता तो मन शीघ्र बोल उठता कि ये महावीर हनुमान, ये रामचन्द्र और ये कृष्णभगवान् हैं। इसके पश्चात् आराधन में तत्पर हो जाता है। अपने समझने के लिए मनुष्य ने सब वस्तुओं का चिह्न निर्माण किया है, इसी प्रकार अदृष्ट ईश्वर की सम्यक् उपासना और ध्यान के लिए प्रतिमाओं का स्थापन कर, सर्वसाधारण को बड़ा उपकार पहुँचाया है। भारत की सब गलियों में एव घर घर शिक्षा देने वाले, कलियुग के व्यास, गुसाईं तुलसीदास जी भक्तों की समता बालक से देते हैं, यह ठीक है। क्योंकि भक्त और बालक दोनों में विश्वास का आधिक्य है। जैसे बिना शास्त्रार्थ किये बालक विद्याध्ययन करने लगता है वैसे ही ये भी सशय रहित अपनी उपासना करना प्रारम्भ करते हैं। अपने सकल सुख को- जैसे बालक केवल गुरुजनों के कृपाचक्षु में देखता है, वैसे ही भक्तजन भी अपनी मुक्ति को इष्टदेव के कृपा कटाक्ष पर निर्भर समझते हैं, न कि अपने कर्मों के बल पर। जैसे बालक रात्रिन्दिव सहायता के लिए चिल्लाया करता, वैसे ही ये भी माया के तनिक उत्पात वा कुछ भी अत्याचार होने पर चिल्लाते और रोरोकर, इष्टदेव से उलहना देते हैं। इतना ही नहीं, भक्तजन तो सारे लोक में व्याप्त जगदीश्वर को एक छोटी सी मूर्ति और मन्दिर में प्रति-

छित मानते, अव्यक्त को व्यक्त समझते, प्रपञ्चातीत को प्रपञ्चगय करते, न खाने वाले को, खाना खिलाते, जिसने कोई स्वरूप नहीं धारण किया, उसे अनेक स्वरूप देते, और जिसे कभी नहीं दुख मिलता है उसे अनेक दुख झिलाते हैं। कहिए यदि यह बालक सा ज्ञान नहीं तो क्या है ?

मैं बचपन से रूप या सौन्दर्य का उपासक था, चाहे वह प्रकृति में या दैवात् मनुष्य में हो। इसी के आखेट में आखें अचाञ्चक एक ऐसे रूप के जङ्गल में फस गईं कि मैं उन्हें वाजों के सदृश लाख बुलाया पर वे कुछ भी न सुने। उसी समय से कुछ ऐसा प्रेम का नशा भरपूर चढा कि सिवाय उस निष्ठुर रूप के और कोई रूप आखों में भला ही नहीं लगता था। प्रेमियों सा नक्षत्रों को सारी रात गिनता रह जाता, कभी कलानिधि के ही देखने में रात्रि बीत जाती, कभी उसके वाक्यों एव मुसक्यान, और कटाक्षों के आक्षेपों के अर्थ लगाने को सारे कवि बुलाए जाते थे। उन दिनो यह स्वच्छन्द मन भी मन्मथ के सजे धजे उद्यान में एकाएक बन्द हो जाने से चिडियो सा फडफडाता और देहधारी को भी व्याकुल सा कर देता था। ऐसी अवस्था में दर्शन महोत्सव से वञ्चित, अत दरिद्र दीन मन, प्रकृति के सुहावने दृश्य देखता चला जाता था कि अचाञ्चक यमुना जी के हरित पुलिन पर एक बृहत् कदम्बवृक्ष के तले भगवान् कृष्ण को वशी बजाते देखा, जिसे, रति देवी को लावण्य में, नारद को भक्ति में और दिव्याङ्गनाओं को दाक्षिण्य में लजानेवाली रूपगर्वीली प्यारी राधिका चकित नेत्रों से सुनती और सराहती थीं और उनकी सखियाँ तो ऐसी विमुग्धावस्था में प्राप्त हो गई थीं कि जान पडता था कि वे भगवान् के रूप में तथा उनकी वशी के तानों में निमज्जन सी

करती थीं। उनका यह भाव देखकर सुकुल दूती और श्रद्धा देवी कहने लगीं कि अरे मूर्ख यदि प्राण देना है तो उसको इनपर निछावर कर, यदि प्रीति का नाता जोडना है तो इनसे प्रेम कर, यदि रूप की ही तुझे उपासना करनी है तो ऐसे रूप को क्यों नहीं हृदय में वास देता? वाग्मी विवेक उपदेश देने लगे कि ये महोदय तो नित्य झिडकियाँ न सुनाएँगे, और न घर से बिना भिक्षा दिए लौटाएँगे, जिसे सुन, सकल इन्द्रियाँ अत्यन्त प्रमुदित हो करतलध्वनि करने लगीं, आँखे कहने लगीं कि मैं जो नित्य ही प्यासी और तरसती रहती थी, वह दुख अब न झेलना पडेगा। मन मयूर सा चहक कर कहने लगा कि हम तो कारागार से आज छूट गए। कर्ण कहने लगा कि हम जो रात्रिदिव नूपुर की आहट जोहा करते थे, अब प्रकृति के अनेक शब्दों को सुनेंगे और मेरी आत्मा भी कहने लगी कि इनकी भक्ति में एक बडा सुख तो यह है कि न कोई दुर्जन, इर्षा द्वेष कर सकता और न कोई दुष्ट नेत्र इस प्रेम की ग्रन्थि को तोड ही सकता है। प्रेम के इर्षी ब्रह्मा की भी यहाँ कुछ नहीं चलती, और संसार भी अपनी वक्रता छोड़ सहायता ही करेगा। फिर क्या था इस शरीर राज्य के अधिपति श्रीकृष्णचन्द्र हो गए और सकल इन्द्रियाँ उनकी दासी हो रहीं।

रङ्गीन दिल कहते हैं कि जिसने हुस्न परस्ती नहीं किया वह बुतपरस्ती के क़ाबिल ही नहीं और न उसकी आँखें ख़ुदा के नूर को देखने के लायक़ ही हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा है,—

फूटें वे आँखें जिसमें लगा इश्क का तीर नहीं।

शेक्सपियर ने भी कहा है कि जिसको सङ्गीत कर्णकटु है और जो प्रेम की गली में नहीं विचरा है, करुणा के पुनी-

साधु जिसके नेत्रों से नहीं गिरे हैं ऐसा नीच पुरुष तो द्रोही और जालिया होता है।

कुछ लोगों का मत है कि जिसने प्रेम नहीं किया है उसका हृदय एक प्रकार का अन्धा शीशा है जिसमें प्रेम का प्रतिबिम्ब नहीं पड सकता या कमल पत्र सा है जिस पर जब तक ओस की कणिकाएँ चमक रही हैं सम्पन्न सा लख पडता, पर उसके हटते ही फिर दरिद्र और दीन हो जाता या बालू के क्षेत्र सा है जिसमें यदि प्रेम कोई तस्वीर भी खींचे तो तुरन्त ही वायू उसे जैसा का तैसा कर देता है। ऐसे हृदय केवल तप और ज्ञान योग या द्रव्य योग करने के योग्य होते हैं, इसी से बुड्ढी बाइबिल (Bible) कहती है कि जो अपने भाइयों को नहीं प्यार कर सकता जिनको उसने देखा है वह क्या परमेश्वर को प्यार कर सकेगा जिसको उसने नहीं देखा है।

शुष्क ज्ञान बिना प्रेम और भक्ति के तो उस उद्यान सा है जो यद्यपि अनेक प्रकार के सुहावने वृक्षों से संयुक्त है पर जिसमें सुगन्धि वाले एक भी वृक्ष नहीं है या पण्डित सा है जिसने यद्यपि सकल साहित्य पढ डाला है किन्तु रसज्ञ न हो सका या सुगन्धि रहित चन्दन सा है। मनुष्य चाहे लोक में उच्चाति-उच्च पदवी को क्यों न प्राप्त कर ले और कुबेर सी लक्ष्मी इकट्ठा कर मिस्टर गोल्ड सा क्यों न हो जाय, शास्त्र में पण्डितों को भी विस्मित कर दे, एवं विज्ञान के प्रभाव से गरुड सा आकाश में क्यों न चक्कर लगावे और वाग्मित्व में सिसरो (Cicero) डिमास्थनीज (Demosthenes) वर्क (Burke) इत्यादि को क्यो न लज्जित कर दे, अथवा एलेक्जेन्डर सा विश्व को अपने कृपाण से पराजय कर एकाधिपत्य क्यों न प्राप्त कर ले, परन्तु यदि उसके हृदय पर्वत में कोई भक्ति निर्झर नहीं है या भगवत

नाम स्वरूप कोई वृक्ष उस पर नहीं विराजमान है अथवा घनश्याम की दया बून्दें उसके शिखर पर यदि नहीं गिरतीं तो ऐसे हृदयों को मरुस्थल वा उजड भूमि ही कहना उपयुक्त है।

यदि ज्ञानी ज्ञान की स्वच्छ नदी बहाता है तो भक्त प्रेम की सरिता को प्रस्रवित कर, उपासना वृक्षों को भगवतगुणानुवाद सुनाते, अपने को महाप्रेम सागर में विलीन कर देता है। यदि ज्ञानी के इष्टदेव परोक्ष में बैठे हैं तो भक्त के किरीट मकुट धारण किये हुए मुक्ता की मालाओं और वस्त्रों से सुवेष्टित सिंहासन पर प्रत्यक्ष स्थित हैं। यदि एक प्रपञ्चातीत होने का अहर्निश उद्योग करता है तो दूसरा प्रपञ्चों को मित्र सा बुला, उन्हें इष्टदेव के कर्मों में, आसक्त कर, स्वयम् प्रपञ्चातीत होता है। यदि एक की कुटी में शान्ति की सम्पत्ति देख पडती तो दूसरे के यहाँ उत्सव और आनन्द की बधाई हर क्षण बजती है। यदि एक का हृदय शरद सा शीतल है तो दूसरे का वर्षा सा स्नेह सलिल सम्पन्न है, यदि एक कर्म को साँप सा डरता तो दूसरा कर्म करते हुए भी निष्कर्म रहता है।

शास्त्र में एक बार बृहस्पति से ताल ठोकने वाले, स्थूलता में गणेशजी की समता करने वाले और लिपि में शेष जी की कुटिल वक्र गति को लजानेवाले, परम विचक्षण, रसीले, ईश्वर-परायण स्वर्गवासी साहित्यव्याकरणाचार्य्य प्रवर पण्डित चन्द्र भूषण जी एक दिन, पुनीत सरयू नदी से सन्ध्या कर, मेरे गृह पधारे, और एकाएक कहने लगे कि मुझे आज निश्चय हो गया कि अयोध्या जी के यावत् वैरागी हैं, जिन्हें हम अधोलोक के पात्र समझते थे, उनकी अवश्य भली गति होगी। मैंने उनसे पूछा कि आपने यह कैसे निश्चय किया तो वे कहने लगे "क्यों, कि ये जो कुछ करते हैं सब अपने ठाकुर ही जी के लिये, जल

भरें तो ठाकुर जी के लिये, भोजन निर्माण करें तो इन्हीं के अर्थ, यदि झाडू लगायें तो इन्हीं के मन्दिर के स्वच्छार्थ, अदालत करें तो ठाकुर जी की भूमि के लिये, सारांश यह कि जब सब कर्म ठाकुरजी के लिये ही करते हैं तो इनकी सद्गति न होगी तो किस की ?" इसमें सन्देह ही क्या है भगवान् कृष्ण कहते हैं—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्यत्रायते महतो भयात् ।

भक्तियोग में जैसी पुष्ट व्रजगोपिकायें थीं वैसा इस भूमण्डल में कोई नहीं हुआ। जब ज्ञानी ऊधो ने काण्ड का काण्ड ब्रह्मज्ञान का लुटा डाला तो उन सबों ने आह भर कर कहा कि यह ईश्वर जो हम सबों के साथ, सहृदय मित्र सा, अनेक लीलाएँ करता था और हम लोगों के सब कामों में अपने प्राणी सा सहायता करता था, हमारी गौएँ चराता था और दधि माखन की नित्य याचना करता था, उस हमारे मित्र को आप अनजान पथिक किया चाहते हैं, जो हम सबों का जीवनाधार है उस प्रत्यक्ष पुरुष को, आप अप्रत्यक्ष क्यों बनाते हैं, निश्चय आप हम सबों की मैत्री में बाधा डालने आये हैं। जान पडता है कि क्रूरकर्मा कुब्जा ने आप को भेजा है जिसमें व्रज से रूठे हुए कृष्ण को हम सबों के हृदय से भी भुलवा दें, जिसमें हम सबो को स्वर्गलोक में भी उनसे मिलने की सम्भावना न रहे। यह सुनते ही उधोजी को निश्चय हो गया कि ये सब कृष्ण पर ऐसी विमुग्ध हैं कि यदि उन्हें कोई ज्ञान सिखाने आएगा, वह स्वयं ही कृष्ण की उपासना करने लगेगा। यह समझ उधोजी अपनी ज्ञान गूदड़ी को लपेट पुन द्वारिका को सिधारे।

कौन जाने कि भगवान कृष्ण ने पण्डित उधो को व्रज में की भक्ति की उत्कृष्टता देखने के हेतु, गोपिकाओं के पास

भेजा था जिसमें वे देखें कि ज्ञान के सहस्त्रों गोले भक्ति के अटल दुर्ग को नहीं पराजय कर सकते वा श्रद्धा और भक्ति के समक्ष ज्ञान फूटी ढोल सा शब्द करता है। मेरी तो कुछ ऐसी सम्मति है कि वे निश्चय मूर्ख और बालक हैं वा एक भाँति के नृशंस हैं जो किसी की उपासना पर कटाक्ष करते हैं और ईश्वर के स्नेह में वा उसके भक्ति में शङ्का कुलिश फेंकते वा कुटिल हास्य अस्त्र का प्रयोग करते हैं। इसी से मनुष्य को चाहिये कि अपने भागवत कर्म को एकान्त स्थान में करे जिसमें कि अभक्तों के कठोर वचनों के सुनने का अवसर न मिले। हमारे एक परम विचक्षण प्रिय मित्र कहा करते थे कि जिसे हम बहुत प्यार करते हैं, और चाहते हैं उसकी न तो बात किसी से करते और न कभी भी कहते कि अमुक पुरुष हमारा मित्र है। ईश्वर के विषय में भी मनुष्य को इसी प्रकार व्यवहार करना चाहिये। ईश्वरपरायण और भागवतकर्म में निष्ट मनुष्यों को नास्तिकों से व्यर्थ ईश्वर की सत्ता पर शास्त्रार्थ न करना चाहिये क्योंकि उसमें सर्वथा हानि ही है और कहा भी गया है —

तजियत उन्हें कोटि वैरीसम,
यद्यपि परम सनेहू"।

प्रेम से, जैसे मनुष्य वैसे ही परमात्मा भी आकर्षित हो जाता है। देखिये अहर्निश कमलनयन का नाम लेते हुए तपस्वी ध्रुव ने थोड़े ही दिनों में अमलत्व को प्रत्यक्ष कर लिया। भक्त प्रह्लाद के लिये तो ईश्वर ने ऐसा सर्वव्यापी रूप धारण कर लिया था कि अग्नि जलवत व्यवहार करता था, प्रस्तर कोमल कमल की शय्या सा हो जाता, एव उत्तुङ्ग शृङ्ग अत्यन्त खर्व हो जाता और सामान्य स्तम्भ तो प्रत्यक्ष कराल विराट रूप धारण कर नृसिंह हो नृशंस हिरण्यकश्यप के हृदय को विदीर्ण

किया था। इसी से भगवान कृष्ण ने कहा है :—

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

प्रेम, भक्ति या श्रद्धा का सच्चा सिक्का, उस निर्मल सात्विक लोक में चलता है अथवा प्रेम या भक्ति ही एक ऐसी दूती है, जो आप को माया के दुर्ग से किसी भाँति छिपा कर, बन्दी मन को स्वच्छन्द कर सकती है। अथवा आनन्द नदी को सन्तरण कर, निर्मल धाम को जानेवाली विद्या-नाव में भक्ति का डाँड चलता है और श्रद्धा की समीर उसकी उपासना पाल को भर कर, सुगमतया तट पर पहुँचाती है। भगवान कृष्ण तो भक्ति के कुछ ऐसे दास थे कि बालकों सा प्रत्येक प्रेमासव से छकी गोपिकाओं के साथ साथ घूमते, गाली और शिकायतों को सुनते, यशुदा जी के अनेक ताडनाओं को सहते, लोकापवाद से कुछ भी न डरते, परन्तु प्रिय भक्तों के सब कामनाओं को पूर्ण करते थे। देखिए प्रेम से सिञ्चित शबरी के जूठे बेर को भी श्रीरामचन्द्र ने चाव से ग्रहण किया था। एव भगवद् गुणगान का गीत गाते, श्रद्धा की शोभायुत साडी पहिने, प्रेम का घुघुर बाँधे श्रीमती मीराबाई को श्री मोरमुकुटवाले को दर्शन देते ही बना। इसी प्रकार भक्तों की प्रार्थना को परमात्मा परमेश्वर ने कभी भी नहीं टाला है।

भक्ति का प्राप्त करना इतना कठिन है कि एक सन्त ने जो पराक्रमी महावीर जी की उपासना किया करते थे, अपने इष्टदेव के प्रसन्न होकर प्रकट होने पर, उन्होंने त्रिवाचा लेकर माँगा कि "भक्ति दीजिए"। इसे सुन ज्ञानी भक्त हनुमान कहने लगे कि तू और कोई दूसरी बडी से बडी वस्तु माँग मैं दूँगा। किन्तु बडे हठ करने पर उन्होंने भक्ति का वरदान दिया।

ईश्वर में सची प्रीति केवल तस्वीर, कथा, या उसकी रचित वस्तुओं को देखने से नहीं आ सकती, जब तक उसका साक्षात्कार न हो। यद्यपि कविता कहती है कि नल, दमयन्ती की तस्वीर और कथा ही को सुनने से आसक्त हो गये, यों ही जानेआलम हुस्नआरा की प्रशंसा सुन, प्राण हथेली पर रख, घरबार छोड़ उसके खोजने को चल निकला। चाहे यह सब मिथ्या हो किन्तु ईश्वर के भक्त को तो उसकी खोजमें सदा ऐसा ही बिना मार्ग जाने निकलना पडता है, और उनसे सुना गया है कि भक्त भिक्षुकों का कहीं रोक टोक नहीं है। किन्तु जब वे अपने उपास्यदेव के दर्शन पा जाते हैं, तब वास्तव में भक्त हो जाते हैं। इससे यह कहना उचित है कि भक्ति बिना कुछ किये धरे स्वयं नहीं आ सकती अर्थात् ज्ञान, कर्म, या विपत्ति का ही परिणाम भक्ति हो सकती है। अतएव विपत्ति का बाट जोहने से अधिक समीचीन यह जान पडता है कि ईश्वर-की सत्ता का उत्कृष्टज्ञान लाभ करे अथवा ईश्वर के अर्थ अनेक कर्म करे जिसमें भक्ति को प्राप्त करके, भक्तवत्सल भगवान के दर्शन हों —

यथानद्य स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपं विहाय तथा विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः परात् परम पुरुषमुपैति दिव्यम्।

स्वास्थ्य ।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्य मुख्यकारणम्"



अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के साधन में स्वास्थ्य ही मुख्य है यानी स्वस्थता में ही इन चारों की चर्चा मन कर सकता है। हम जब स्वस्थ हैं तभी सोच सकते हैं और जगत के अनेक कर्मों को बड़े उत्साह और चाव से करते हैं किन्तु अस्वस्थता में यदि इनकी कोई चर्चा चलाये तो यदि हम उपदेष्टा को आर्जव से गलगर्दन कर निकाल न दें, तो मन में अवश्य कुढ़ते और कहते हैं कि इसे अवस्था और समय का ज्ञान नहीं है।

इस देह देहली का नेता और लोक से व्यवहार करने वाला मन है, इससे यह शरीर के रुग्ण होने पर सब ठौर से खिंच कर उसी स्थान पर आ बैठता, जहाँ किसी प्रकार का दुःख या हलचल होता और अपनी सब शक्ति से उसी के शमन और स्वस्थ करने में लग जाता है। इसी से प्राचीन आयुर्वेद कहता है कि स्वास्थ्य ही पुरुषार्थों के साधन का मुख्य कारण है।

हम सुखी तो जग सुखी। देखिये हवा के झोंके स्वस्थ हों

को भले लगते हैं, समुद्र की लहरें, चाँदनी रात, वनस्पतियों की सम्पत्ति, बाल ललनाओं के अनेक हावभाव वा उनके कटाक्षों की करामात वा सगीत के तानों के विचारने का सौख्य, ये सब तभी तक अनुभव हो सकते हैं जब तक हम स्वस्थ हैं। क्योंकि यह शरीर तो तन्त्री सा है जिसमें दैवीसुर वा स्वर्गीय अथवा ऐहिक वृत्तियाँ तभी उठती हैं जब इसके सब तार एक सुर में रहें। किन्तु अस्वस्थ होने पर वह बेसुरी हो जाती और दैवी वृत्तियाँ उठने के स्थान में हाय हाय का झनझन शब्द होने लगता है।

जैसे द्रव्य केवल विचक्षण मनुष्य ही व्यय करना जानते हैं और लोक का, केवल पण्डित कवि और योगी ही सम्यक् रूप से उपभोग कर सकते हैं, वैसे ही इन इन्द्रियों के और इस सारे शरीर के राज्य को ठीक ठीक तौर पर चालित करने वाले धन्वन्तरि और पतञ्जलि के उपासक ही हो सकते हैं। पण्डितों ने कविता की ओट में कहा है कि किसी समुद्र में नीर नारियाँ रहतीं थीं। उनके द्वीप के सन्निकट नौका जाने पर वे ऐसा गाती थीं कि मनुष्य पागल हो कूद पडते थे और सदा के लिये उनके उदर में पड जाते थे। ऐसे ही यदि युवकों की जवानी को नौका मान लें और ससार को समुद्र समझें तो देखते हैं कि जैसे ही मनुष्य इस लोक में प्रवेश करने योग्य होता है तो उसके ज्ञानेन्द्रिय मल्लाहों के समक्ष विषय-परियाँ अपने हाव भाव से लुभाने का यत्न करने लगती हैं कि वे उनके वश में हो जायँ और इस शरीर की ऐसी अवस्था है कि यदि कहीं आखें लड गईं तो सकल इन्द्रिया भी उसी के साथ नियन्त्रित हो जाती हैं। अत. सब देशों में जवानी के सम्हालने के लिए बालकों को विद्या देवी के पास सौंपते हैं जिसमें वे विषय

डाइनों ने तरुणावस्था में बचे रहें। हमारे यहाँ तो प्राचीन समय में यज्ञोपवीत करके द्विजातियों के लडके जङ्गल में महात्माओं के सन्निकट विद्याभ्यास करने के हेतु भेज दिये जाते थे जिसमें वे शरीर और मन से स्वस्थ घर को लौटें और गृहस्थी का यथेष्ठ उपयोग कर सकें।

जैसे फूलों की कली में कीडे के लगने से कली पूर्णतया नहीं खिल सकती और न प्रकृति को अपनी यौवन सम्पत्ति का उपायन दे सकती या जैसे तरुण अश्व को बचपन ही में जोत देने से उसकी जवानी नष्ट हो जाती है और वह किसी काम के लायक नहीं रहता या बिना पङ्खों के पुष्ट हुए शुक सा, जो आकाश में विचरते हुए काकों से मिल जाने पर पकड लिया जाता और सदा के लिए अपनी गोल से वञ्चित हो, अपने प्राणों ही से हाँथ धो बैठता है, वैसे ही मनुष्य की जवानी, विषय से नष्ट हो जाती है। जो उच्छृङ्खल रीति से तरुणावस्था में विषय का उपभोग करता है वह प्राय मृत्यु के गाल में नियत समय से पूर्व ही चला जाता है, क्योंकि विषय उसे अपना ग्रास बनाकर खा जाती है। विषय लोक के अपार समुद्र में प्राय बहुत से छिपे हुए पर्वत हैं जिन्हें माता पिता का काम है कि वे अपने बच्चों को बता दें कि जिसमें वे जीवन-नौका को इनसे बिना टकराए हुए खे ले जाँय।

स्वस्थता के दिन बादशाही वा सम्पत्ति के और अस्वस्थता दरिद्रता के दिन हैं वा पहिली वर्षाऋतु सी है जब सारा लोक सुखी मन अपने शरीर कुटी में आनन्द रूप से स्थित रहता है, और दूसरी ज्येष्ठ मास सी है, जब सकल इन्द्रियाँ व्याधि चण्डांशु से व्याकुल रहतीं वा स्वस्थता शरद के निर्मल रात्रि सी है जब सारे नक्षत्रगण अपने अमल आनन को निकाल

स्वैरिणियों सा आकाश वीथियों में बैठ, ज्योतिषियों को लुभा कूप में गिरा, उनकी हँसी कराते और अस्वस्थता उस रात्रि सी है जिसमें बौरहा कुत्ता शीत पश्चिमानिल मिस भूकते लगता और वस्त्रहीन मनुष्यों को दौड़ दौड़ कर काटता है।

सुख की घडी बीतते देर नहीं लगती और समय अपने पैरों को लाख कहने पर भी नहीं रोकता किन्तु अस्वस्थ दशा में मनुष्य को हर पल अपार सा दीखता है। स्वस्थता धर्म का राज्य है और अस्वस्थता पाप का। पर न जाने क्यों मनुष्य स्वास्थ्य का आदर नहीं करता और जैसे अज्ञानी जन धन पाकर बौरा जाते हैं वैसे ही युवकगण अपनी इन्द्रियों का प्राबल्य देख समझते हैं कि ये सदा ही पुष्ट बनी रहेंगी और उनको स्वस्थ रखने को कुछ चिन्ता नहीं करते। वरन् क्रूर नृपतियों के समान, व्यभिचार रूपी कर इस शरीर पर लगाते ही चले जाते हैं, जब तक कि अस्वस्थता रूपी विद्रोहाग्नि नहीं भडक उठती जिसके उठने पर लाख उपाय कीजिए पर वह कुछ न कुछ उत्पात कर ही डालती है।

जवानी में जब सब इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं तो मनुष्य अत्याचार करने में नहीं चूकता। बेकन (Bacon) कहते हैं कि "वृद्धावस्था में हर एक अत्याचारों का बदला चौगुना चुकाना पड़ता है" वा ऐसा कहें कि यौवन सम्पत्ति के दिनों में सब रोग-अरि दबे पडे रहते है पर वे जैसे ही देखते है कि जवानी लक्ष्मी की कृपा घट चली और दरिद्रा वृद्धावस्था के दुर्बलता के दिन आ चले, तो इस राज्य पर आक्रमण करते हैं। तब ख्याल में भी न आने वाली छोटी से छोटी शिकायतें लम्बी चौड़ी और अपार सी देख पडने लगती हैं। यह एक स्वयं सिद्ध परिभाषा है कि जब आनन्द को नशे से वा औषधि से

उधार लेते हैं तो समय आने पर सूद सहित भर देना पड़ेगा। इस से पण्डित जन अपने वर्तमान सम्पत्ति से सन्तुष्ट रहते और विषय वाराङ्गना के द्वार पर आनन्द की भीख नहीं मॉगने जाते हैं।

यह सत्य है कि संयम नियम तथा ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण अवलम्बन करने से वार्द्धक्य का वह कोर्यगुण जिसके लिए वह बदनाम है मनुष्य को न सतावेगा। संयम और नियम की महिमा अङ्गरेजों में, क्या सारे यूरप के मनुष्यों के रहन सहन में देख पड़ती है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि केवल इन दोनो सिद्धान्तों के पूर्ण अवलम्बन से मनुष्य दीर्घजीवी, पुष्ट और निरोग रहता है वैसे ही इसके प्रतिकूल चलने वाले न दीर्घजीवी होंगे और न वीर्यवान्।

चॉडूबाज, अफीमची या शराबी जब दैवात् कारागार में जाते हैं तो उनके लौटने पर देखा जाता है कि संयम और नियम से सूखी रोटी और साग भी आदमी को मोटा कर देता है और असयमी को घी दूध और मॉस भी नहीं पुष्ट कर सकता।

व्यायाम इस शरीर को निरोग रखने के लिए वैसा ही आवश्यक है जैसे मनको शुद्ध करने के लिए जप, स्वाध्याय या शास्त्रावलोकन है। व्यायाम एक प्रकार का इस शरीर पर कर है जिसको देते हुए बड़े आदमी लोग बहुत झींकते और प्राय यदि हिन्दुस्तानी या मुसलमानी अमीर हुए तो इस कर को देने में अपनी बड़ी बेइज्जती समझते हैं जिससे चिढ़ कर स्वास्थ्य तहसीलदार उन पर रोग के सिपाही नियुक्त करता है जिससे उन्हें डाक्टर के कचहरी में प्रतिदिन जाना पड़ता है और अन्त में प्राय उनके स्वास्थ्य का राज्य छीन लिया जाता और उनकी इन्द्रियाँ मीरफर्श हो जाती हैं। अब वे

विना सवारी के चार कदम वाहर नहीं जा सकते । उन्हें तीव्र वायु ऐसा लगता मानो तीर सा शरीर को वेध रहा है और यदि कपडे से न लदे हुए तो तुरन्त घर की शरण लेते हैं, उनसे जल विहार की वा उसके सौख्यों की कौन कथा चलावे। सारांश यह कि जो अपने संयम और नियम से इस शरीर गढी को पुष्ट और नीरोग नहीं रखता और व्यायाम से उसे नित्य नहीं मॉजता, वह प्रकृति के सुखों को तथा उसके अनेक रूपों को नहीं देख सकता । जैसे जब आकाश-महोदधि पृथ्वी को अपने सा सुफेद कर देता और जब सब नदी नाले झरने चलने लगते हैं और पुरवाई सारे वन के वृक्षों को गाने का पाठ पढाती, और स्वयं ऐसी तोखी चलने लगती है कि आकाश में जल नर्तन करने लगता है, ऐसे समय में यदि आप स्वस्थ नहीं हैं तो कैसे इन सुखों का उपभोग कर सकते है। हमने देखा है कि रोग दीमक लगी हुई देह, वेत सी कपती, हाथ जोडती कहती कि हम ऐसे सब तफरीह से बाज आए। इससे शरीर धारियों को चाहिये कि इस सहस्रों-तार-वाली तन्त्री को परम संयम, नियम और व्यायाम से सुरक्षित रखें जिसमें सब समय में सुखी रह सकें।

व्यायाम के पश्चात् व्यायाम की महिमा दिखाई देती है। जान पडता है कि मन अपने शरीर राज्य पर पूरा अधिकार जमाये है और बादशाह सा उसका शासन करता है वा यों कहें कि जैसे सितार वा वीणा मिलाने पर उसके सब तार सुर में बोलते हैं वैसे ही व्यायाम से यह शरीर तन्त्री एक सुर में रहती है। इसीसे वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) व्यायाम की प्रशंसा में कहता है कि न हमने ऋतु से सलाह ली न मुझे वैद्यों से सलाह लेनी पड़ी।

सन्यास-योग

सन्यास योग का नाम तो सुनते ही राजा बादशाह और धनियों के हृदय में कपकपी उठ जाती है, किन्तु यही तो ईश्वर के दरबार के चुङ्गीघर का सुपरिन्टेन्डेन्ट है, जिसके प्रचण्ड निर्दयी भृत्यों के कारण कोई सांसारिक विषयो के मान करनेवाले, वा कामनारूपी सुगन्धित द्रव्यो की सन्दूक बगल में रखनेवाले, वा मोहअहङ्कारादि रत्नों की पेटी हृदय में छिपानेवाले मनुष्य कदापि प्रवेश नहीं करने पाते। सन्यासयोग, वेग से हर हर शब्द करता हुआ एक लम्बा चौड़ा नद है जो सत्य धाम के इसी पार बह रहा है, जिसे आपको अवश्य पार करना होगा, यदि आप आनन्दमय रूप का दर्शन चाहते हैं वा सन्यास योग दया शून्य डाक्टर है, जो भली भाँति मनुष्यो के शरीर की सूक्ष्म परीक्षा करके देखता कि कहीं वह माया रोग से रुग्ण तो नहीं है, क्योंकि इस दशा में परम पुरुष के धाम को जाने के लिए वह कदापि पास पोर्ट (Pass port) नहीं देता; वा सन्यास एक कौलेयक है जो सदा भूँका करता ताकि अहङ्कारी और मान के भूखे दाम्भिक जन त्रस्त हो दूर ही से भाग जायँ। महात्मागण कहते

हैं कि यह तो एक भयानक व्याघ्रमुखमृग है जो लोगों के जाने पर ऐसा भयानक चीत्कार करता है कि जिसे सुन, सशयात्मा अचेत हो, पृथ्वी पर गिर पडते एव घर लौट कर और अधिक प्रेम से अपने माया गुदडी को ओढते और पुन. उधर जाने की इच्छा को चित्त से भुलावा देते हैं। यही वह मशहूर खाई वा ववूल का जङ्गल या काँटों से बिछा दुस्सह मार्ग वा बीहड पहाडी है जिसका नाम सुन मक्का का मुल्ला दाढी खुजलाने लगता और कहता कि इस प्रकार के यदि मार्ग में चलने से मुक्ति मिले तो वह श्रेय नहीं, चाहे हमारी आत्मा नरक के दुस्सह दुख को क्यों न झेले, एव विषयी यूरप के पादरी साहेब तो सुनते ही वेहाल हो, बाइबिल बन्द कर, वडे दीनता से कहते "भाई, यदि यह हमारा सजा धजा बङ्गला न रहेगा, अस्तबल से अरबी घोडे निकाल दिये जायँगे, और चार वक्त चाय एव आठ वक्त खाने की आशा छिन्न भिन्न हो जायगी, मेरी प्यारी मेम साहिबा मेरे बगल से अपहृत कर ली जायँगी तो ऐसे सन्यास योग से तो जीवन का त्याग ही भला होगा।"

इन्हीं दु खमयी भावनाओं के उन्मूलनार्थ हमारे बुद्धिदाता योगिराज श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में साफ साफ कह दिया है "सन्यास कपडा के रङ्गने से वा शरीर में राख लपेटने से वा जटाजूट का भार सिर पर रखने से नहीं होता, न सब कर्मों के त्याग ही से सम्भव है" न 'ब्रह्मास्मि' ऐसे पवित्र वाक्यों के वृथा प्रलाप ही से वा बहुत सा ज्ञान की धूलि उडाने से ही प्राप्य है, किन्तु सन्यास तो 'काम्य कर्मो' के विशेष त्याग से एव अहङ्कारातीत हो, कर्मों के करने से सुलभ है और द्वैत भाव के पूर्णतया मिट जाने से हृदय में भी निवास ले लेता है।

मेरी समझ में सन्यास और त्याग का उत्पत्ति स्थान दान है

ञा ज्ञान एक पीपल के वृक्ष सा है जो हृदय में जमते ही, माया और मोह के मकान को गिरा देता और कुछ ऐसा प्यारा और स्वरूपवान दिन पर दिन होता चला जाता है कि मनुष्य इसके, विविध शाखाओं को छोड, विषय के अनेक कुञ्जों में भरमने की इच्छा भी नहीं करता।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जो मनुष्य ससार के सकल कर्मों से अहङ्कार को त्याग, उनके फलों की कामना छोड, केवल यह समझ कि हम शरीरधारी हैं और यह हमारा उचित कर्तव्य है, निस्सङ्ग हो 'काम्य कर्मों' को करता है, वही सन्यासी है। 'कर्मफल त्याग' के विषय में और भी साफ साफ यों कहा है 'कर्म ही तुम्हारे आधीन है' न कि 'फल' इससे तुम्हें धैर्य धरना चाहिए और फल के विषय में चिन्तन छोड़ना ही उचित है क्योंकि वह तुम्हारे आधीन नहीं है।

कर्म फल त्याग के अनेक लाभ हैं। पहले तो यह कि फल-प्राप्ति-रूपी चिन्ता की गठरी, जो हृदय को दुखदायिनी होती, उसे आप उसके हाथ सौंपते हैं जिस से कि त्रिकाल में भी कभी धोखा सम्भव नहीं है। दूसरे यह कि मैंने तप, पूजा, धर्म, पुण्य, शास्त्र अध्ययन, उपकार आदि जो कुछ किया है इसका फल अच्छा होगा, यह अहङ्कार ससार के सरकार की दृष्टि में, जिसका कि अहङ्कार भदय है, निश्चय बुरा मालूम होता होगा, इससे हमारे लिए इस प्रकार का चिन्तन कदापि श्रेयस्कर नहीं है। तीसरे यह कि कर्म फल त्यागने से मनुष्य की दीनता, दरिद्रता और क्लीवता दूर हो जाती है, इससे वह अपने कर्मों को बडे उत्साह से कर सकता है। चौथे यह कि हमारा किसमें श्रेय है और सदा के लिए मङ्गल और हितकारी क्या होगा, यह सब हम नहीं समझ सकते। जैसा कि हमारे

और ग्रीस के पुराणों ने अनेक कथा कह दिखलाया है। सब से अधिक हानि, फल की कामना करने में यह है कि अच्छे फल के न मिलने पर या काम के न सिद्धि होने पर लोग प्रायः नास्तिक हो जाया करते हैं। जिसका कारण यह है कि वे न अपने सस्कार को देखेंगे, न अपने कर्मों पर ध्यान देंगे और न यह समझेंगे कि यह सब उन्हीं के कर्मों का दोष है।

भगवान् कृष्ण इस योग की प्रशसा में कहते है कि यदि तुम चित्त को स्थिर नहीं कर सकते तो योगाभ्यास करके, हमसे मिलने की इच्छा करो और यदि यह भी न कर सकते तो सकल कर्मों को मेरे प्रीत्यर्थ किया करो, इससे भी सिद्धि प्राप्ति करोगे किन्तु यदि इसमें भी अशक्त हो तो कर्मो के फलों की आकांक्षा मत करो, क्योंकि ज्ञान अभ्यास से श्रेष्ठ है और ज्ञान से ध्यान तथा ध्यान से कर्मफल त्याग, और त्याग से शाश्वत शान्ति सुलभ होती है।

मुमुक्षु जनो के लिये त्याग एक परमावश्यक वस्तु है जिसके बिना कथ कथमपि कोई ऊर्ध्व लोक को आरोहण नहीं कर सकता। जैसे जब हम कभी किसी बड़े ऊँचे पर्वत के शिखर पर चढ़ना चाहते है तो जहाँ तक हो सकता है कम असबाब रखते हैं, तभी सुगमता से चढ भी सकते हे, नहीं तो बोझियों के सदृश पद पद पर, बैठना पडता है। ऐसा ही यदि विषय-भावना-भार को अन्त करण से त्याग करदें तभी तो उस ऊँचे रहनेवाले के घर की ओर जा सकते हैं। इससे जब हम सुरत योग के तीव्र अश्व पर चढ़ अविद्या तिमिराच्छादित मार्ग को किसी भाँति पार कर, उस सच्चे निर्मल देश को पहुंचते हैं तो यदि ऐसे समय में चाह चमारिन ने चीत्कार किया, या भावना दूती ने सन्देश दिया, या अहङ्कार बन्दर

बीच में कूद पडा, या प्रतिष्ठा वेश्या बगल में चुपचाप आ बैठी तो बना बनाया अध्यात्म का गृह गिर पडता है। इसी से सन्यास योग द्वारा यावत् कामना इस लोक की है, यती और ज्ञानी, ज्ञान के झाडू से साफ कर देते हैं और मन्त्र जल से ऐसा पुनीत कर देते हैं कि उनके लगन में कभी बाध नहीं पडती।

सुक़रातस (Socrates) कहता है कि "जब मन मक्खी विषय मधु पर रमती है तो कभी कभी उसके प्राण की भी आशङ्का हो जाती है और उड जाने की क्या कथा है" यानी जब यह मन ससार के अनेक विषयों में रम रहा है तो उनको छोड, उसे आत्मा के निर्मल देश में जाना दुस्तर है क्योंकि वह विषय भार से भारित है वा यों कहें कि विषय-भावना, काम, क्रोध, मोह, इत्यादि अधोलोक को ले जानेवाले झूठे मित्र हैं, जिन्हें छोड, जब आप अपने बिछुडे हुए देश को जाना चाहते तो वे पीछे से आपकी कमर पकड खींचते हैं और यथा शक्ति आप को पराविद्या के देश में जाने देने के अतिरिक्त महाराज मोह की ओर ले जाते हैं।

इसी से भगवान् ने कहा है कि—"सन्यासयोग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना" अर्थात् सन्यास योग से स्थिर, चित्त की वृत्तियाँ विषय लोक में नहीं जातीं वा विषय सागर में जानेवाली इन्द्रिय रूप नदियों को सन्यास रूपी बाँध, सयम पुण्य तीर्थ वाले आत्मा महानद में स्नान कराती है; वा सन्यास एक प्रकार की परिखा वा चहारदिवारी है जिसके बिना आप किसी प्रकार से मोह महाराज के नृशंस डाकू पदातियों के आक्रमण से नहीं बच सकते वा सन्यास एक अत्यन्त कटु औषधि है जिसे माया ज्वर के शमनार्थ आपको अवश्य पीना पडेगा, वा

सन्यास एक प्रकार का कौलेयक है जिसे ज्ञानी, योगी और भक्तजन, अपने देह देहली पर नियत करके, हृदय देश में वसने वाले सर्वज्ञ, निर्मल आत्मा के दर्शन को जाते हैं और यह (कौलेयक) यदि ज्ञान योग से खूब पाला पोसा गया है तो निश्चय काम क्रोध मोहादि चोरों को कदापि न भीतर घुसने देगा।

मन की यह प्रकृति है कि जो कुछ उसने देखा है, सुना अथवा किया है फिर फिर उसे अपने धारणा के दफ़्तर में उलटा पलटा करता है। इसके इस प्रकृति के हटाने के लिए महर्षिगण सन्यास योग का उपयोग करते आये हैं या यों कहें कि महात्मा सन्यास योग एक प्रकार से वेदव्यास हैं जिनके बिना बैठे भगवत् चरचा हो ही नहीं सकती।

धनी जब त्यागी होते तो अनेक शुभ कर्मों को करते हैं। देखिये, पथिकजन उन्हीं की धर्मशालाओं में थकावट मिटाते और घर का सा सुख पाते हैं। इन्हीं के तडागों के हीरासदृश आपादि पूर्ण सलिल से अपने शुष्क कण्ठनाल सींचते और यथेष्ट स्नान महोत्सव का सुख लेते हैं। इन्हीं के क्षेत्रों में यात्रियों की अग्नि सी जलती हुई तीव्र क्षुधा भी शान्ति होती है, इन्हीं सब कार्यों के करने से कवि स्काट कहता है कि मरने पर भी दानी नहीं मरते। अत. देखा जाता है कि इस लोक में ऐहिक, दैवी, शास्त्रीय अथवा विज्ञान विषयक जितने कार्य हुए हैं उन्हें प्राय. त्यागीजनों ही ने किया है। वस्तुत. यदि वीरभद्र पण्डित सुकरातस (Socrates) अपने इस पञ्च भूतात्मक पुतले का या अपने परिवार वा सम्पित्ति के वृद्धि के लिए चिन्ता करता तो आकाश से देवी फिलासफी (वेदान्त) यूनानी पुरुषों के समझने को न ला सकता। योंही महाराज रामचन्द्र चौदहवर्ष

पर्यन्तवन में सुकुमार जनक नन्दिनी सीता और लक्ष्मण के साथ सुखपूर्वक न विचर सकते यदि सन्यास मन्त्री उनके साथ न रहता। इसी भाँति यदि ज्ञानी विचक्षण शुक्राचार्य के कहने पर कपटी छली वामन के लिये महाराज बलि तीन पद भूमि त्याग न देते तो नित्य बैठे बैठाये भगवान् के दर्शन का सौभाग्य न पाते।

ज्ञानी और भक्तगण जिन्होंने बचपन ही में ईश्वर का शरण ले लिया है, उनके लिए विषय-त्याग एक आनन्द का हेतु होता है, क्योंकि जैसे साँपों से केंचुल छूट जाती है वैसे ही माया भी इनके अन्तःकरण को छोड देती है और काम क्रोध मोहादि उसके अनेक पदातिगण विध्वस्त और नष्ट हो जाते, एवं सन्यास योग भी बिना प्रयत्न उन्हें आ जाता है। इस सन्यास योग का प्रतिरूप तो ससार में सभी ठौर दिखाई पडता है। जब कोई किसी कामिनी के रूप राशि पर पूर्णतया आसक्त हो जाता है और ऐसी बेखबरी आ जाती कि न उस समय, शरीर की, न मित्रों की और न परिवार की ही कुछ चिन्ता रहती, एवं न खाने पीने सोने या ससार के सौख्यों का ख्याल रह जाता है सिवाय उसके अलौकिक सौन्दर्य के ध्यान का। इसी भाँति लोभी भी अपने सब सुखों को छोड केवल द्रव्य ही के उपार्जन में दत्तचित्त रहता है, कभी तो देश देशान्तर की धूलि फाँकता, कभी समुद्र के छाती को चीडता फाडता द्वीपान्तरों में व्यापार के हेतु दौडता, कभी मिथ्या विज्ञापन देने मिष असत्य का गुब्बारा आसमान में उडाता, और कभी सूद दरसूद के पीछे वद्दू खाने में भी बैठा लेखा मिलाता रहता है। ऐसों से यदि आप दया कर कहिये कि वे गरदन उठाकर विश्राम कर लें या किञ्चित काल के लिए प्रकृति की शोभा देखें तो वे अवश्य झुँझला कर कहेंगे कि न तुमे

मिलता। ये मेरी समझ में सीधे ईश्वर के यहाँ पहुँच जाते हैं और अपनी मनमानी अर्जी उनसे लडाते हैं। आठवें हेनरी (Henery VIII) जब बूढ़े वूल्जे को (Wolsey) पदवियों के उच्चातिउच्च शिखर से भूमितल पर गिरा दिया और उसकी सारी सम्पत्ति तथा राज्य अपहरण कर लिया तो दीन हीन वूल्जे अपनी इस अवस्था पर यों कहता है, "मनुष्य की यही अवस्था है। आज उसकी नूतन आशाएँ पल्लवित होतीं और दूसरे दिन उसमें कलिकाएँ निकलतीं, कीर्ति और उपाधि रूपी फलों से वे लाल हो जातीं, तीसरे दिन जब वह मनुष्य अपने को पूर्णतया सुखी और स्वस्थ मानता है, एव समझता है कि उसका महिमा रूपी फल अब पकने ही चाहता है तो प्राणापहारक हिम आकर, उसके जड को जला देता और कीर्तिरूपी वृक्ष गिर पडता है, जैसे कि हम इस समय गिर गए हैं। मैंने एक बालक सा जो मशक ले तैरते हैं, लक्ष्मी और सम्पत्ति के समुद्र में इतने दिन तक वसन्त काल में निमज्जन किया, जो कि मेरे शक्ति और पराक्रम के परे था। किन्तु इन सब आनन्दों का परिणाम यह हुआ कि हमारा अहंकार इस समय चूर्णीकृत हो गया और विपत्ति रूपी क्रूर नदी का अब पाला पडा है जो हमें सदा के लिए लुप्त कर देगी। ऐ जगत की लक्ष्मी और सम्पत्ति! तूं क्षणिक है। इससे मैं तुझे घृणा करता हूँ। सत्य तो यह है कि मेरी आँखें आज खुली हैं"। किन्तु अबदुल्ला जब मन्त्रित्व से च्युत किया गया, तो सन्यास योग से युक्त होने के कारण उसने अपनी गुदडी और बसी को लेकर, सीधे अपनी पुरानी झोपडी को चला और बादशाह के बार बार कहने पर भी मन्त्री होना नहीं स्वीकार किया।

वेदव्यास जी ने विपत्ति विद्यालय से उत्तीर्ण छात्रों विद्या-

र्थियों की गणना मध्यम श्रेणी में की है, क्योंकि उनका वैराग्य उनको इच्छा, ज्ञान वा अध्ययन से नहीं उत्पन्न हुआ है, किन्तु विपत्ति के लात मारने पर, माया सगय को छोड़ सन्यास या ज्ञान का शरण लिया है। यह सत्य है, पर मेरी समझ में तो दीन दुखिया और आर्तजन ईश्वर को आँखों में अधिक प्यारे हैं, क्योंकि विपत्ति गङ्गा में नहाने से अहङ्कार काम क्रोधादि राक्षसगण, जो इनके सिर पर सवार रहते थे, उनके तत्काल उतर जाने पर वह सीधे परमात्मा के चरण का शरण लेते हैं। देखिए गजराज, द्रौपदी, प्रह्लाद इत्यादि ने इन्हें क्षण के क्षण में अपनी सहायता के अर्थ बुला लिया, जिसका बुलाना वर्षों के तप, प्राणायाम, ज्ञान योग आदि से भी सम्भव नहीं था।

दूसरा आँखवाला चतुर विज्ञानी है जो इस सारे सृष्टि को देख, इसके रचयिता के जानने का जिज्ञासु बन जाता है या मोक्षदाई शास्त्रों के सतत् अध्ययन से सद्गुरु के उपदेशों से ईश्वर प्राप्ति की इच्छा करता है। यह लोक और इसकी अनेक लीलाएँ तभी जी से भूल सकती हैं और इनका उचित त्याग तभी हो सकता है जब आप इस शरीर-गुहा निवासी, चेतन्य, द्वन्द्वातीत, विमत्सर, सर्वव्यापी, साक्षी, परब्रह्म का अपूर्व दर्शन नित्य प्रति करें। क्योंकि जैसे प्राची दिशा में सूर्यदेव के उदय होते क्षुद्र तारागणों की ज्योति अन्तर्लीन हो जाती वैसे ही जब ज्ञान का प्रकाश इस हृदय में होता है तो सकल कामनाएँ हृदय से नष्ट हो जाती हैं। इसी से शेक्सपियर (Shakespere) कहता है "एक आँख की चोट दूसरी आँख की चोट को भुला देती, और एक जलन दूसरे जलन को शान्ति कर देती है" इसी प्रकार ईश्वर की भक्ति और प्रेम सांसारिक वस्तुओं के चाह को जी से भुला देती है। ज्यूलियट (Juliet) से आँख

लगने पर रोमिओ (Romeo) ने रोजलिन से प्रीति छोड दी, इनसे वूढा ज्ञानी (Friar Lawrence) फ्रायर लारेन्स दाढ़ी खुजला कर, मुसकुराता कहने लगा कि जब मनुष्य ऐसे चञ्चल होते है तो कामनिओं की कौन कथा चलावे। सच्चे इश्क की तीर लगने पर मनुष्य विस्मृतावस्था को प्राप्त हो जाता है। उसे यह नहीं समझ पडता कि दुनिया किस ठौर बसती और माया कहॉ रहती है। हम को परमात्मा परमेश्वर पर जान देनेवालों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैंने देखा है, कि वे भी ठण्डी साँसें भरते हैं जैसे दुष्यन्त पुरुरवा इत्यादि अपने प्रियतमाओं के वियोग में लेते थे।

जब त्याग, कीर्ति के लिए वा केवल दम्भ के पेट भरने के लिए, वा शास्त्राज्ञा की उलहना मिटाने के लिए, या गद्दी के धर्म पालन के हेतु, वा ऐसा ही हमारे कुल में चला आया है, इसलिये किया जाता है, वह कुछ भी हितकारी नहीं होता और ऐसे दाम्भिक त्याग का उद्घाटन करना ईश्वर का परम कर्त्तव्य होता है। इससे यदि जी से त्याग नहीं हुआ तो न्यास नहीं हुआ, मन से यदि ससार के सुखों की हिर्स नहीं गई तो त्याग नहीं हुआ, और यदि ईश्वर के प्रेम में ससार नहीं भूला तो सम्यक् सन्यास नहीं हुआ।

ब्राह्मण

विपद्घनध्वान्त सहस्रभानव, समीहितार्थार्पण कामधेनव।
अपार संसार समुद्रसेतव, पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः॥



भगवान् वेद कहते हैं कि आदि विराट् महापुरुष के मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्री, वैश्य उदर और शूद्र पैर हैं। शिरोभाग होने से ब्राह्मण का यजन, याजन, अध्ययन अध्यापन, धर्म को सिखाना और ईश्वर के कानूनों का बताना, मुख्य कर्म हुए। इसी से ये इस और उस दोनो लोको में पूजनीय थे। किन्तु कराल कलियुग के आते ही काया पलट हो गया और ये भूदेव कर्म में कुत्सित और धर्म में कायर हो गये। क्षत्री लोग इनके चेले थे और इनकी इच्छानुसार चलते थे। गुरु महराज के गिरते ही उनपर प्रमाद, निद्रा, अविद्या इत्यादि प्रवीण शत्रुओं ने आक्रमण करके उनको राजच्युत कर दिया और भारत को मान मर्य्यादा हर लिया। अब ब्राह्मण इस समय उदर पोषण को छोड़ और सब कर्तव्यों को भूल गए हैं। कौन जाने महावीरजी सा अपनी प्रशंसा सुन ब्राह्मण दल उठ पड़े और पुन वैसी ही पूजनीय और शक्ति शाली हो जाय, इससे आज उनके पूर्वजो का संकीर्तन

अभीष्ट है।

बसन्त की समीर धीरे धीरे चल रही थी और हरेक झोंके में नूतन विकसित आम्र की मञ्जरियों के आमोद से वाटिका को अयाच्य कर रही थी। आकाश निर्मल और शान्त था, भगवान् चन्द्रमा तारा रूपी सहृदय सखाओं के साथ जगत मेला को बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे। तपता चटाचट करता हुआ सहस्रों चिनगारियों को प्रजा प्रति सा उत्पादन करता और पुन: अपने में लीन कर रहा था। आस पास के वृक्षों को कभी २ अपने तेज से रञ्जित कर जङ्गल के पर्दे की समा दिखाता और कभी जादूगर सा सब को ग़ायब कर देता था। मेरा मन भी स्वाध्याय करने और कानों में भ्रमण करने से अत्यन्त सुखी और सात्विक आनन्द समुद्र के तीर पर बैठा अपनी उल्लास सीमा को उल्लघन कर रहा था। यह देख भगवती श्रद्धादेवी सुअवसर जान कहने लगी कि हे मन यदि तू बड़ा शीघ्र गामी है तो मैं जिन जिन आश्रमों को कहूँ, वहाँ वहाँ तू चल और उनके पुनीत दर्शन, यदि तू मुझ को करा दे तो मैं निश्चय तुझे इन्द्रियों का राजा और अधिपति मान लूँगा। यह सब बातें मन और श्रद्धा में हो रहीं थीं कि महाराज विवेक बुद्ध पुराण को कृपा कर साथ ले आये और कहने लगे कि आओ चलो तुम सब को दर्शन करवा लावें और ऐसे २ पुनीत आश्रमों में ले चलें कि जहाँ हम सब स्वयं पुनीत और कृतार्थ हो जावें।

भरद्वाज

हम सब ज्योंहीं तेजस्वी भर द्वाज के आश्रम में पहुँचे तो देखा कि क्रूर कैकेयी के वचन वज्राघात से दुखी और दीन राजकुमार भरत विनीत वेष में भगवान् भरद्वाज के आश्रम में दर्शन करने और भगवान् राम-

चन्द्रजी के आश्रय स्थान को पूछने आये हैं। भरत के स्नेहमय तथा दीन वाक्यों को सुनकर महर्षि को भली भाँति निश्चय हो गया कि ये ससैन्य भगवान् रामचन्द्र को राज तिलक देने तथा वनवास महादुख से लौटाने की प्रार्थना करने आये हैं। इससे ऋषिवर गद्गद् हो कहने लगे कि तुम रामचन्द्र के कनिष्ठ होने योग्य हो, कुशकण्टकमयी केतकी केकेई से ऐसा प्रसून, दशरथ के तप का फल है। नितान्त स्वार्थपरायण केकेयी की कुक्षि से तुम ऐसे परम अस्वार्थी पुत्र, यह आश्चर्य्य जनक है। निश्चय तुम पाषाण के अन्तःकरण से निकले प्रदीपमणि से हो, जिसको पाकर कैकेई कृतार्थ हो गई। भरत के वाक्यों और आचरण से महामुनि भरद्वाज ऐसे प्रसन्न हो गये कि उनकी और उनके सेना की आतिथ्य करने की इच्छा प्रकट की और सेना को आश्रम में आश्रय देने को भरत से कहा।

भरत के जाते ही भगवान् भरद्वाज ने अग्निहोत्र कर द्विजातियों के गुरु अग्नि के समीप हाथ जोड विनयपूर्वक प्रार्थना की कि आज मैं भरत का ससैन्य इस आश्रम में दैवी आतिथेय करना चाहता हूँ इससे कृपा कर वे ऐसा प्रबन्ध करें जिससे तपस्वी ब्राह्मण नितान्त दरिद्र और रङ्क न समझे जायँ। आज आप इस आश्रम की लाज रक्खें।

जब भरत और उनकी सेना आई तो आश्रम को देवताओं ने उन सब के स्वागतार्थ सुसज्ज कर दिया था। कहते हैं कि रङ्गीन सडकें जङ्गल के चारों तरफ दौड गईं थीं कोई वक्र गति से कानन के भीतर चली गई थी, कोई कुटिल गति से पल्वल और तडाग को चूमती, घूमती फिरती कुञ्जों में प्रविष्ट हो गई थीं और कोई दैवी पुष्पों से भूषित प्रत्यक्ष वसन्त सी बन बैठी थीं। ऊँचे २ पटमडप का एक लोक

चतुर विश्वकर्म्मा ने बडे दाक्षिण्य से बसा दिया था।

पुष्पमय ऊँचे फाटकों पर सुरीली स्वर्गीय शहनाई प्रत्यक्ष संगीत देवी सी सब को स्वागत दे रही थी। भरत देख कर कुछ अचम्भित और आश्चर्यित हुए कि स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। आँखें मींजकर सब से पूछने लगे कि उन्हीं की आँखें धोखा दे रही हैं या सत्य ही यह वही आश्रम है, और भगवान् भरद्वाज के तप ने सम्प्रति स्वर्ग बना दिया है।

सभों ने कहा कि जैसा आप देख रहे हैं यह वैसा ही है। इस समय यह तपोवन अपना काया कल्प करके विषयियों से मिलने के लिए सुसज्ज है! ब्राह्मण बटुओं ने सामवेद के पुनीत मन्त्र से सब को आह्लादित किया और सब सैनिकों को नियत नियत स्थान पर पहुँचाया। भरत और उनकी माता को उस ठौर ले गये कि जहाँ लम्बी २ दाढी वाले जटा चीर धारी भगवान भरद्वाज अपने मृग चर्म पर स्वस्थ मन बैठे छात्रों को अध्ययन करा रहे थे।

भगवान् वाल्मीकि कहते हैं कि उस सन्ध्या को यह तपोवन होते हुए भी नन्दन वनसा हो गया था। सत्य वृत्तियों को छोड किंचित् काल के लिए अतिथियों के अर्थ राजसी बन बैठा था। विरागी भी सरागी सा हो गया था। भूलोक होते हुए भी स्वर्ग लोक की समां दिखाने लगा था। कहते हैं कि जगत् में कोई सुख का सामान नहीं था, जो उस ठौर भोक्ता को न प्राप्त था। कहीं आसव और शराब के निर्झर बह रहे थे, कहीं दूध का कुण्ड भरा हुआ था, कहीं अनेक चाल के शर्बतों का हौज भरा था। कहीं देवी हलवाई सैकडों प्रकार की मिठाई लिए बैठा था। कहीं अनेक प्रकार के पुष्पों के पहाड बने थे। कहीं लम्बी लम्बी ऑंर घाली प्रत्यक्ष अग्निशलाका सी गन्धर्व कन्यायें

और अप्सरायें सारे कानन को शोभायमान करती हुई, स्वच्छन्द घूम रहीं थीं। सैनिकों की गोल हरित दूब से आच्छादित मैदान पर लेटे हुए यथेष्ठ मिठाई और फल खाते और आपस में पूछते कि क्या कभी जिह्वादेवी ने ऐसी मिठाई और फल का रसास्वादन किया था। कहीं अप्सराओं के साथ नवयुवक नागरिक सब के दृष्टि पथ से बचकर किसी वृक्ष मूल के नीचे बैठे पछताते कि रात छोटी है और वियोग कराने वाला सूर्य्य क्षण के क्षण में निशा समुद्र पार कर हमें तुम्हें अलग करना चाहता है। कहीं मीठी राग गाने वाली अप्सराएँ अपने नृत्य और गायन से सभा की सभा को ऐसा सन्तुष्ट और सुखी करती थी कि सब के सब बोल उठते थे 'कि धन्य! भरद्वाज, धन्य! तुम्हारी उदारता! हम अब तुम्हें छोड़कर कहीं न जॉयगे, आपके चरणों की सेवा सदा करेंगे। रामचन्द्र को कौन वन २ पहाड़ २ अन्वेषण करते घूमेगा! और कौन दीन दुखिया अयोध्या का पुनर्दशन करेगा! "कुशल भरत स्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुख" हम अब इन्हीं के शरण रहेंगे तो नित्य प्रति ऐसी ही मीठी शराब पीने को मिलेगी और इन परियों के सगीत तथा नृत्य देखने का सौभाग्य मिलेगा, यह सुनसब सेना साधु! साधु! कहने लगी और पहाड़ की गुफायें भी गूजने लगीं।

जैसे विषय गर्त्त में गिरा हुआ ब्रह्मचारी, दैवकृपा से निकल कर अनन्त धन्यवाद अपने इष्ट देव को दे सुखी और स्वस्थ मन हो जाता है वैसे ही उस तपोवन ने अपने कृत्रिम भेष को त्याग प्रातःकाल प्रशान्त, सुखी और स्वस्थ देख पड़ा॥ आश्चर्य्य की बात है कि जब भरत और उनके सब अनुयायी वर्ग विदा मागने गए तो किसी ने रहने या ठहरने की चरचा भी नहीं कीया, इससे वाल्मीकि जी सूचित करते हैं कि इस

पुनीत आश्रम का कुछ ऐसा दैवी प्रभाव था कि राजसी उपयोग भोगने पर भी उन सब के अन्त करण में किञ्चित् विकार नहीं उत्पन्न हुआ इससे उन्हे आश्रम से विछुडने में महान कष्ट नहीं हुआ। और वे सब सुखी मन भरत के साथ भगवान् रामचन्द्र के मिलने को चित्रकूट चले।

अगस्त्य यहां से हम सब भी विदा हो, समुद्र के पान करने वाले, ब्राह्मण भक्षी वातापी को अपने जठराग्नि में हवन करने वाले, भगवान् रामचन्द्र जी को आदित्य हृदय का पाठ पढा, दशमौलि के हृदय को विदीर्ण करानेवाले, भगवान् अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे, जिनके चरणों पर द्वितीय समुद्र सा लम्बायमान पपासर पड़ा था। मानों मुनि के त्रास से प्रत्यक्ष समुद्र ही सूक्ष्म शरीर धारण कर भगवान अगस्त्य के चरणों पर गिर कर निज प्राण दान की भिक्षा माँग रहा था, जिसके तटस्थ वृक्षों पर पक्षियों के निनाद से अतिथियों का प्राथमिक स्वागत होता था। और जहाँ सुगन्धित वायु महर्षियों को तप में सहायता करती थी।

हम सबों को बडा भारी कौतुक था कि अगस्त्य भगवान् का कितना प्रशस्त मुख होगा कि सारा समुद्र पान कर गये और उनका उदर कितना वृहत् था कि जिसमें समुद्र समा गया। पर इस तेजस्वी के दर्शन से यह ज्ञान पडा कि इनकी योगाग्नि समुद्र का पाचन भी कर डालती, यदि इनसे विनय प्रार्थना न की जाती। धन्य ब्राह्मण श्रेष्ठ, धन्य! धन्य तपोबल धन्य!

वशिष्ठ प्रतापी सूर्य्यवंशियों के कुलगुरु, क्षमा के अवतार, अग्निहोत्री त्रिकालज्ञ पूज्य वशिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचे, जब वशिष्ट के आतिथेय और सत्कार का

कारण केवल नन्दनी गौ को जान कर, विश्वामित्र लोभ से दीन और दरिद्र हो वशिष्ट से सुरभी दे देने की याचना कर रहे थे और ऋषिवर कहते थे, कि यही गऊ मेरी सर्वस्व है, इन्हीं से समग्र अग्निहोत्र का काम निर्वाह होता, अतिथियों की पूजा होती और सारा आश्रम दूध पीकर निहाल होता है इसके सिवाय आप और कोई याचना करें । हम यथाशक्ति उसकी पूर्त्ति करेंगे पर सुरभी को कदापि नहीं दे सकता ।

बार बार याचना करने पर भी न मानते देखकर विश्वामित्र ने अपने क्षत्रीबल का तथा सेना का आश्रय लेकर बलात् नन्दनी को घर हाँक ले जाने का प्रयत्न किया ।

नन्दनी जो सदा पूजा की पात्री थी, जो बड़े आदर से खोली और बाँधी जाती थी, वह इस दुष्टव्यवहार को देख परम दुखी और आश्रम के वियोग से कातर हो लम्बी लम्बी लाल लाल आँखों से अश्रुपात करने लगी और भगवान् वशिष्ठ की दोहाई दे कहने लगी कि भगवान् मने कौन सा अपराध किया, जो मुझे इस अधम क्षत्री को ले जाने की आज्ञा दी है । मैं तो तुम्हारी सब कामनाएँ सफल करती आई, अग्निहोत्र के अर्थ घी और दूध पूर्ण रक्खा । यदि तुम्हारे साथ रहती हूँ, तो क्या उसका परिणाम आश्रम से निष्कासण होना चाहिये । मैं कदापि इस दुष्ट राजर्षि के घर न जाऊँगी, चाहे आप रुष्ट हों या प्रसन्न । भगवान् वशिष्ठ आँखें डबडबा कर कहने लगे कि इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है, यह दुष्ट नृप आपको बिना मेरी आज्ञा ही के लिए चला जा रहा है । यह सुन क्रोध से गऊ ने उत्तर दिया कि इस मूर्ख को कहाँ शक्ति है कि बिना आज्ञा के हमें ले जा सके । यह कह जो उसने अपने शरीर को झाड़ा तो बड़ी से बड़े रोम-कूपों से सहस्रों यवनों के झुंड के झुंड निकल

पडे और विश्वामित्र को ससैन्य आश्रम के बाहर मार कर निकाल दिया।

हठी विश्वामित्र इस पराजय से ऐसे दुखी हुए कि घर जाने के स्थान वन में दिव्यास्त्र प्राप्त करने के हेतु चले गये। जब उनने भगवान् त्रिशूलपाणि को प्रसन्न कर दिव्यास्त्र प्राप्त किया तो सीधे वशिष्ट के आश्रम को पहुँचे और साहकार, कहने लगे कि मैं अब दिव्यास्त्रों से सन्नद्ध हूँ और बलात् पराजय कर नन्दनी को बाँध ले जाऊँगा।

यह कह विना उत्तर की प्रतीक्षा किये वे तुरन्त नन्दिनी को खूँटे से छोड घर ले चले। नन्दिनी ने भी पूर्ववत् अपने रोम कूप से यवन और काल नेमियों को उत्पादन किया, पर इन सबों का बल विश्वामित्र की तीव्र अग्नि शिखा के समान जलते हुए दिव्यास्त्रों के समक्ष कुछ न चला, यह देख सुरभी तो अहङ्कार त्याग रोने लगी और भगवान् वशिष्ठ इस क्षत्री के अन्याय को देख पावक के समान जलने लगे और अत्यन्त क्रुद्ध हो, उन्होंने एक ब्रह्मदण्ड अपने तप के प्रभाव से पैदा किया जो कि क्षण भर में विश्वामित्र के सकल अस्त्र शस्त्रों को पराजय कर, अग्नि शिखा सा जाज्वल्यमान हो वशिष्ठ के सन्मुख आ खडा हुआ।

दुखी विश्वामित्र अपने क्षत्री बल को सतत् धिक्कारने लगे कि क्षात्र पौरुष, ब्रह्मशक्ति के सन्मुख सर्वथा तुच्छ है। ब्रह्मदण्ड ने हमारे सब अस्त्र शस्त्रों का पराजय कर डाला, इससे हम अब उत्कट तप करेंगे और वशिष्ट सरीखे तेजस्वी ब्रह्मर्षि होंगे। यह कह पराजय के अमृतरूपी फल का आस्वादन करते अरण्य को तप करने के अर्थ प्रस्थान किया।

अब महाराज विवेक बोले कि हे मित्रो! आज तुम, इतने

ही आश्रमों मे कृतार्थ हो गये होंगे और तुम्हारा मन भी कहता होगा कि तभी भारत के राजागण सम्राट की पदवी धारण करते थे जब ऐसे ब्राह्मण गुरु लोग थे जो विद्यार्थों की शिक्षा देते थे। दूसरे दिन इतर महर्पियों के दर्शन करायेंगे। मन हाथ जोड़ कहने लगा कि श्रीमान् यदि ऐसे ही आश्रमों का दर्शन मुझको प्रति दिवस मिले तो मैं सामन्त राज्य को भी स्वीकार न करूँ।



आप अपने पूर्वजों की कथाओं को और उनकी अपरिमितशक्ति के प्रभाव को बिलकुल ही भूल गये है, यदि आपके कुछ भी स्मरण है तो केवल इतना ही कि वे महर्षि थे। आपको यह नहीं स्मरण है कि उनके अरण्य के फूस की कुटी में अध्यात्म के कैसे २ शस्त्र पड़े रहते थे कि जिनपर देवराट इन्द्र का भी वश नहीं चलता था। उन ऋषियों ने ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली थी कि देवतागण भी आकर स्तुतियां करते थे। वे कैसे आत्मवान् थे कि उपास्य देव उनके स्मरण मात्र ही से उपस्थित हो, यम को परास्त करने को तत्पर हो जाते थे।

मार्कण्डेय

जब मृकण्डु को पुत्र उत्पन्न हुआ, उसकी जन्मपत्री के देखने से उन्हें यह निश्चय हुआ कि पुत्र आठवें वर्ष ही में काल के कराल गाल का ग्रास बनेगा तो वे अत्यन्त दुखी और दीन हो शिव मन्दिर में गए। मोह-वश त्रिशूलपाणि के दर्शन ही से उनके नेत्रों में अश्रु भर आए और वे कहने लगे कि आपने एक पुत्र भी दिया तो वह भी केवल आठ वर्ष जीने वाला। मैं ऐसे पुत्र को पाकर दुखी छोड़ सुखी कैसे हो सकता हूँ, निश्चय मेरा शिरार्चन सब को व्यर्थ प्रतीत होगा। मैं इस लड़के का कैसे लाड प्यार कर सकता हूँ

यह जानकर कि यह निश्चय हम सबों से विदा माँग यमपुर को सिधारेगा। निश्चय हम सब बड़े अभागे हैं। ऐसी २ बातें करते मृकण्डु मन्दिर ही में सो गए। क्या देखते हैं कि भगवान शिव उनके सामने खड़े हो कहते हैं कि तू हमें उस बच्चे को दे दे। यह यम का बेटा नहीं है यह तो मेरा बेटा है। प्रातःकाल जब मृकण्डु उठे तो परम प्रसन्नतापूर्वक नैमित्तिक कर्मों को समाप्त कर ब्राह्मणों से इस प्रिय स्वप्न की कथा कही।

मार्कण्डेय को बचपन ही से उनके माता पिता यही कहते कि भगवान्-भूतनाथ ही तुम्हारे माँ बाप हैं। हम सब तो धात्री कर्म करने के लिये नियुक्त हैं। जब बालक मार्कण्डेय आठ वर्ष का हुआ तो पिता ने उनका उपनयन कर उन्हें शिवाराधन विधान और पार्थिव उपासना सिखलाई। नित्य उपासना करते और निज पिता की शिक्षाओं को सुनते २ इस ऋषिकुमार को यह प्रतीत हो गया कि वास्तव में मेरे पिता शिव भगवान् ही हैं और इन्हीं की पूजा तथा अनुकम्पा से मुझे सकल सुख सामग्री मिल जायगी।

वह कभी जङ्गल में शिव २ की रटन लगाते, चिल्लाते, रह जाते और निराश हो अपने पिता से कहते कि भगवान् त्रिशूलपाणि नान्दी पर चढ़े डमरू बजाते हम से नहीं मिले, ये कैसे निष्ठुर हैं जो बालकों की टेर को नहीं सुनते। इनके पिता इसे सुन मुसकुराते और उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर आता और आह भर यों कहते कि बालक घबड़ाओ मत, अपनी उपासना में स्थित रहो जिस दिन तुम्हारी सच्ची आह लगी उसी दिन वे प्रगट हो जावेंगे। यह सुन मार्कण्डेय और दृढ़ता पूर्वक भजन करने लगे और आठ वर्ष व्यतीत होते होते उनकी उपासना कुछ ऐसी बलवती हो गई कि वे अपने भाव में कभी कभी

लीन भी हो जाया करते थे। आज उसी भाव में तन्मय थे, जब यमराज के दूत मार्कण्डेय को यमलोक को ले जाने के लिये आए। मार्कण्डेयजी हाथ में पार्थिव लिए आँख मूँदे शिव के चरणों पर लेटे हुए समाधिस्थ थे। इन्हें देख यमकिङ्करों को यह साहस न हुआ कि वे उनके गले में यमफाँस फेंकते। इससे वे सीधे अपने नायक श्री चित्रगुप्त से जाकर बोले कि वह बालक कुछ ऐसा तेजस्वी है कि हम सब उसे देख सीधे लौट आए। आप स्वयम् ही चलिये। यदि ला सकिये तो लाइए। चित्रगुप्त साहङ्कार यमकिङ्करों के साथ गाल बजाते उस ठौर पहुचे किन्तु बालक के महान तेज के कारण सन्निकट नहीं जा सके। इस कथा को उन सभों ने भगवान यमराज से जाकर निवेदन किया। सुनते ही कालातीत होने की त्रास से यमराज भैंसे पर सवार हो उसके पास पहुँचे और प्राणापहारक फास उनके गले में फेंक दिया। मार्कण्डेय की समाधि खुल गई और उन्होंने अपने सामने यमराज का कराल स्वरूप देखकर कहा कि आप तनिक ठहर जायँ जिसमें मैं पार्थिव का विसर्जन कर, आपके साथ हो लूँ। पर ये काहे को सुनने लगे। इनके खींचते ही पार्थिव मूर्ति गिर पड़ी और त्रिशूलपाणि त्रिशूल लिये प्रगट हो गये। उन्हें क्रुद्ध देख यमराज थर थर काँपने लगे और हाथ जोड बडी नम्रता से अपने भूल की क्षमा माँग कर कहा कि मैं अब मार्कण्डेय के समीप कभी न आऊँगा और ये सदा के लिये, आपकी कृपा से अमर हो गए।

विप्रदेव

भगवान् निशानाथ आकाश के मध्य में अपनी पूर्ण प्रभा से विराजमान थे। पवित्रता के आधिक्य से आश्रम के वृक्ष चमक रहे थे। मातरिश्वा धीरे २ बह रही थी। रीवां और झिल्लियों के झनकार से जङ्गल

पूर्ण हो रहा था। पर्णकुटीर के एक छोटे से सहन में विप्रदेव जी सन्ध्या और अग्निहोत्र कर परम सुमनस पर्य्यङ्क पर बैठे हुए थे। पर्य्यङ्क के नीचे बैठी उनकी ब्राह्मणी पैर दाब रही थी। वह विप्रदेव जी से कहने लगी कि मैं यज्ञ करना चाहती हूँ, इसमें स्वामी की क्या सम्मति है। यह सुन विप्रदेव जी ने हँस कर, कहा भला दरिद्र भी यज्ञ कर सकता है। दिन भर के भिक्षाटन से हम सबों की भूख केवल शान्त हो सकती है। तब यज्ञ की कौन चर्चा चलावे। ब्राह्मणी ने विप्रदेव जी के इस वचन का उत्तर न दिया किन्तु दूसरे दिन से अपने भोजन भाग से आधा निकाल कर रख देती थी। ब्राह्मणी की ऐसी सात्विकी श्रद्धा देख लज्जित हो, विप्रजी कहने लगे की जब यज्ञ करने को तुम्हारी इतनी प्रबल इच्छा है तो हमारे भाग से भी तुम आधा निकाल लिया करो, जिसमें दस पन्द्रह ब्राह्मणों का भोजन भी हो सके। निदान कुछ काल के पश्चात् वह दम्पति नव ब्राह्मणों को खिलाने भर को अन्न इकट्ठा कर सके। इन दोनोंने बडी श्रद्धा और निष्ठा से यज्ञ और ब्रह्मभोज किया। जहाँ पर ब्राह्मणों ने पैर धोया था वहाँ पर एक नकुल खजु के कारण लोटने लगा। वहाँ के कीचड की पवित्रता से उसका आधा शरीर स्वर्णमय हो गया। उस दिन से वह नकुल इस चिन्ता में मग्न रहता था कि कहीं फिर भी यज्ञ की कीचड़ मिले जिसमें कि शेष शरीर भी सुवर्णमय हो जाय। जब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ में करोडों रुपया और रत्न लुटाया और सहस्रों ब्राह्मणों को यथेष्ट भोजन कराया, तब भी वह नकुल वहाँ पहुँचा और पूर्ववत् जमीन पर लोटा पोटा पर शेष आधा शरीर स्वर्णमय न हुआ। धन्य था विप्रदेव का यज्ञ जिसमें पशु भी

सम्पत्तिवान् हो गये।

अनुसूया एक दिन एक ज्योतिषी मुनिवर अग्नि की कुण्डली देख भगवती अनसूया से कहने लगे कि कल्ह अग्नि महाराज इस लोक को छोड़ तप से अर्जित लोक को प्रस्थान करेंगे जिसे सुन भगवती अनसूया क्रोध से कहने लगीं कि पण्डित जी यदि प्रात काल मेरे भाल पर सिन्दूर न रहेगा तो प्राची दिशा के भी भाल पर सिन्दूर न सुशोभित होगा। यह कह कर निज पूजागृह में गईं और आसन पर बैठ स्वस्थ मन हो प्राणायाम करने लगीं और भगवान् सूर्य के घोड़ों के चरणों को हठात् ऐसा नियन्त्रित कर दिया कि वे जहाँ के तहाँ खड़े रह गए। इस प्रकार जब दस दिन तक सूर्य नहीं उदय होने पाये तो सकल प्राणी मात्र प्रलयरात्रि को उपस्थित जान अति दुःखी और दीन हो गए। इसे देख देवतागण व्याकुल हो भगवान् पितामह के सन्निकट गए और अनेक प्यार भरी स्तुतियाँ कर कहने लगे कि पितामह यदि भगवान् आदित्य देव इसी प्रकार एक ठौर समाधि लगाये बैठे रहेंगे तो निश्चय कोई प्राणी जीवित न रह सकेंगे। सकल वनस्पति पृथ्वी में मिल जायगी और सकल सृष्टि नष्ट हो जायगी। इससे कृपया आप इनको उदय होने की आज्ञा दीजिए क्योंकि इनके विरह से तो असह्य पीड़ा हो रही है। लम्बी २ श्वेत दाढ़ी वाले वृद्ध ब्रह्मा मुसकुरा कर कहने लगे कि यह सब भगवती अनसूया के तपोबल का प्रभाव है। उसने सूर्य के रथ में लगे घोड़ों के चरणों को ऐसा नियन्त्रित कर दिया है कि वे लाख चलने का प्रयत्न करने पर भी एक ही स्थान पर खड़े है। अत आओ हम सब चलें और उनकी स्तुति करें जिसमें वे प्रसन्न हो सूर्य को पुनः उदय होने की आज्ञा

दें। पितामह और देवताओं की अनेक स्तुतियों को सुन अनसूया ब्रह्मा से बोलीं कि क्या आपकी समझ में यह नहीं आया कि अनसूया कैसे वैधव्य दुःख को सहन कर सकेगी। इस पर उन सबों ने यह प्रार्थना किया कि आप किञ्चित् काल के लिए अत्रि को यमलोक जाने की आज्ञा दें, वे वहाँ से लौट कर आपको सदा के लिए सनाथ करेंगे। इस पर, प्रसन्न हो अनसूयाजी ने अपने पति को यमलोक जाने की और सूर्य को उदय होने की आज्ञा दी और विधि को न तोड़ते हुए भी सधवा बनी रहा।

यद्यपि ब्राह्मणों की पूर्व कथा इस जमाने में स्वप्न की कहानी सी समझ पड़ती है पर वे सब वैसेही सच्ची हैं जेसे ये सब सच्चे थे। महाराज कलियुग ने धर्मात्मा भारत पर न जानें क्यों इतनी अधिक कृपा की कि ब्राह्मण जगत् में अब सब से नीचे गिने जाते हैं। मैंने आप सबों से पहले ही कहा है कि इन ब्राह्मणों का कर्म यजन याजन तप स्वाध्याय और शास्त्रों की रचना करना था। भारत की युनिवर्सिटियाँ पहले जङ्गलों में रहती थीं न कि नगरों में। यहीं सब सभ्यता शास्त्रविचार तथा नीति की शिक्षा मिलती थी। शास्त्रार्थ हमारे यहाँ की परीक्षा थी इन्हीं में जो विजेता होता उसे योग्यतानुसार उपाध्याय, शास्त्री, पाठक इत्यादि की पदवियाँ प्रदान की जातीं थीं।

ब्राह्मण लोग यद्यपि जगलों में रहा करते थे पर तौभी सदा प्रजावर्गों पर ध्यान रखते थे और राजा महाराजाओं को भी अपने तपोबल से अपने वश में रखते थे। जब राजा दुराचारी तथा अन्यायी होता तो प्रजावर्ग इन्हीं के यहाँ अपनी अर्जी लटाते, और पढने में आता है कि जैसे ब्रह्मर्षि जी ब्रह्मदण्ड लिये राज द्वार पर पधारते तो नृपतियों का राज्य अह-

द्वार और अपनी सेना का बल क्षण के क्षण में कर्पूर सा उड जाता और वे मारे डर के हाँथ जोड विप्रदेव की सारी शिक्षा को ग्रहण करते और अपने अपराधों की क्षमा माँगते और उनका यथोचित आतिथ्य कर विदा करते थे। वैसेही जब राजाओं पर कोई असह्य कष्ट पडता तो वे सीधे इन्हीं महर्षियों के आश्रम को जाते और अपना दुखडा रो रो कर सुनाते और विप्रदेव के आशीर्वाद से सानन्द राजधानी को लौटते थे। महाराज दिलीप ने जब देखा कि वृद्धावस्था रूपी श्वेत शरद धीरे धीरे चला आ रहा है और युवराज के मुख देखने का सौभाग्य नहीं मिलने चाहता तो वे सुदक्षिणा को साथ ले भगवान् वशिष्ट के आश्रम को चले। मार्ग में मातरिश्वा ने अपने सानुकूल गति से उनके मनोरथ के पूर्ण होने की सूचना दी, सारसों ने भी अपने कल निनाद से दम्पतियों के चित्त को आश्वसन दिया। ऐसे अनेक शुभ शकुनों को देखते दिखाते और मार्ग में आभीरों से प्रदत्त नवनीत को ग्रहण करते तथा अग्निहोत्रियों के आतिथेय को सादर स्वीकार करते वशिष्ट के पुनीत आश्रम पर पहुँचे। अग्निहोत्र कर प्रत्यक्ष द्वितीय अग्निराशि सा भगवान् वशिष्ट अपने आश्रम में प्रसन्नवदन बैठे थे। सुदक्षिणा को अरुन्धती के पास छोड़कर महाराज दिलीप कुलगुरु के पास पहुँच साष्टाङ्ग दण्डवत लगा विनीत भाव से कहने लगे "आपके हाथों से सिञ्चित आम्रवृक्ष सा मुझे सन्तान रूपी फल विहीन देख क्या आपको कष्ट नहीं होता?" इसे सुन वशिष्ट जी कुछ काल के लिये समाधिस्थ हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि हे राजर्षि! जब तुम भगवान् इन्द्र के सहायतार्थ गये थे और शत्रुओं को पराजय कर गृहोन्मुख हुए तो मारे शीघ्रता के मार्ग में खडी हुई कामधेनु का प्रदक्षिणा करना

भूल गये। इससे उसने तुम्हें शाप दिया कि यावत् पर्य्यन्त तुम मुझे सेवा से सन्तुष्ट न करोगे तावत् पर्य्यन्त सन्तान देखने का सौभाग्य न प्राप्त होगा अत इसी आश्रम में आप निवास कीजिये और नन्दिनी जो कामधेनु की सन्तान है उसके प्रसन्नार्थ व्रत धारण कीजिये। निदान महाराज दिलीप और सुदक्षिणा ने विधिवत् नन्दिनी की सेवा करना आरम्भ किया। कविकुल कैरव कालिदास इस उपासना की प्रशंसा में कहते हैं कि जब नन्दनी चलती थी तो दिलीप चलते थे, जब वह खडी होती तब ये भी खडे होते, जब पानी पीना चाहती तो उसे पानी पिलाते अर्थात् दिलीप उसकी छाया के समान साथ साथ रहने लगे। इन दिनों की परिचर्य्या से प्रसन्न हो कामधेनु ने रघु सा प्रतापी पुत्र दिया।

वैसेही जब इन्द्र कोप करते और वरुण भगवान् बादलों को पहाडों के कन्दरों में बन्द करते और सारा लोक सूर्य भगवान् के प्रताप से शुष्क और निस्सार देख पडने लगता, वसुमती हरित तृण बिना दरिद्रा सी देख पडती ऐसे समय में नृपति लोग प्राय महर्षियों के सन्निकट जाते और दैव के कोप का कारण पूछते। देखा है कि जो वे अपने मुखारविन्द से कह देते वह वैसाही होता था। साराश यह है कि यद्यपि ये सब जगल और पहाडों पर रहते थे पर तौभी लोक के परमोत्तम कार्य इन्हीं आश्रमों से प्राय, भारतवर्ष सीखा करता था। पूर्व के ब्राह्मणों की कथा सुनने से और इनके चरित्र देखने से तथा उनके उग्र तप के प्रभावों की कथा सुनने से आज कल के लोगों को वह असम्भव साजान पडता है। क्योंकि विषय के लोक में आत्मादेव की कथा या उनकी महिमा केवल विडम्बना मात्र होती है। जैसे मनुष्य ईश्वर की सृष्टि को नहीं पूरी तौर

पर समझ सकता—प्रत्यक्ष होने से चाहे प्रकृति को कुछ समझ भी ले-पर इस देह देहली की अगम्य गुहा में बैठा हुआ आत्मा तथा उसके अनेक शक्ति को नहीं समझ सकता, वैसाही ब्राह्मणों का चरित्र जो केवल रात दिन आत्मा का अध्ययन किया करते थे नहीं समझा जा सकता। साराश कि आत्मा अनन्त है वेसेही ब्राह्मणों की महिमा अनन्त है। जेसे यह बड़े विचार और तप से समझी जाती है वैसे ही इनके शास्त्र भी बडे परिश्रम और विचार से समझे जा सकते हैं। जैसे पुरुष दिन रात विज्ञान के विचार में डूबा रहता है और नित्य विज्ञान समुद्र से रत्नों को निकाल लोक को चकित किया करता है वैसे ही ब्राह्मण लोग अपने आत्मा की शक्ति से लोगों को आश्चर्यित किया करते थे। आत्मा के ज्ञान के लिये और इसके देश में विचारने के महत् सुख के लिए विप्र जन अपना सब सुख त्याग करते थे और आत्मालोक की महान् पुनीत राज्य पाकर अयाच्य और सन्तुष्ट होते थे। शास्त्रों के पढने से यह बात सिद्ध होती है कि असस्कृत मनुष्य वा अनात्मावान वा अविद्या से ढकी हुई आखों के मान का नहीं है कि आत्मा की शक्ति समझ सके। विना दुर्वीन की सहायता के इनकी आखें कितनी दूर तक देखती थीं यह ज्योतिष के ग्रन्थों को पढने से मालूम होता है। नक्षत्रों की गति, भ्रमण, उदय तथा अस्त को जो लिख दिया वह अब तक वैसाही चला जाता है। विचारवान् यह कैसे थे यह व्याकरण, न्याय, मीमासा इत्यादि ग्रन्थों के अवलोकन करने से मालुम होता है। पाणिनि के सूत्र के पढ़ने से यह जान पड़ता है कि इनकी रचना आधुनिक मनुष्यों के भाग की नहीं। एक एक सूत्र में समुद्रवत् गम्भीरभाव ऐसे भर दिये गये हैं जिनका अब तक भाष्य होता चला जाता है और तोभी भाष्यकारों को इसके प्रसार का पार न मिला। जैसे भगवान्

का कोई द्वितीय नहीं है वैसा ही पाणिनि सा दूसरा सूत्रकार नहीं है। इन सूत्रों की कुछ ऐसी महिमा आचार्य्य लोगों ने समझी कि उन्हें भगवान की पदवी दी है। शब्द का आदि अर्थात् उसकी उत्पत्ति भूमि और उनके सब स्वरूप का पूर्ण ज्ञान यह केवल संस्कृत ही में पाया जाता है। उसी तरह से वैद्यक शास्त्र में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि अब तक डाकृरों के पूज्य हैं। न्याय की ऐसी धज्जियाँ उड़ाई गईं कि सब चीजों के तो आचार्य्य मिलेंगे पर न्याय के बहुत कम।

आश्रमों में स्वस्थ रूप से तपस्वी आचार्य्य लोग रहते थे और जैसे पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ इस शरीर के सब सुख सामग्रियों को एकत्रित करतीं हैं वैसेही विप्रजन इस प्रजा शरीर के चक्षु कर्ण और विवेक स्वरूप थे, छत्री बाहु थे, जो इनकी रक्षा करते थे, एव वैश्य सब विषय सग्रह कर इसको सब ठौर पहुँचाते थे और शूद्र इस प्रजा शरीर की सेवा किया करते थे। इसी से तीनों युगों में भारतवर्ष में नित्य सुख की बढती रहती थी, किन्तु कराल कलिकाल ने इस नियम को भङ्ग कर दिया और इसीसे यह दुर्दशा देखने में आती है। इसी विषय का समर्थन ईसाप (Æsop) ने किया है "एक समय ईर्ष्या वश सकल इन्द्रियों ने कहा कि यह पेट बैठा रहता है और हम लोग इसी के पोपणार्थ डोलते और धूलि फाँकते हैं, अत. आओ हम सब बैठ जाँय, देखें कि यह क्या करता है। फिर क्या था। हाँथ ने खाना उठाना छोड दिया, मुख खाना खाने ही से इन्कार किया और इसी तरह सबों ने प्रमाद वश अपना नियत कर्म्म छोड दिया, पर इन नादानों को २४ घन्टे के बाद निश्चय हुआ कि पेट स्वयम् ही नहीं सब चीजें खा लेता वरन् रस, रुधिर इत्यादि रूप में सबों को बांट देता है और उसी के खाने से सब इन्द्रियों का पोषण होता है। वैसेही जब तक प्रजा ब्राह्मणों को खिलाना, आदर करना,

अपना कर्तव्य समझती थी तब तक इसके स्वास्थ्य में बाधा नहीं पड़ती थी; किन्तु कुटिल कलिकाल भारत में दुर्बोध दुर्योधन को भेज इसके अस्त्र शस्त्र की महिमा अस्त कर, सुर्ती हुवा। वास्तव में महाभारत की लड़ाई कुछ ऐसी घमासान हुई कि अस्त्र शस्त्र का साथ सर्वथा शून्य हो गया। क्षत्रियों का बल घट गया, ब्राह्मण जन आलसी हो गए और तपोवन का प्रशान्त जीवन त्याग कर गृहस्थी के जंजाल तथा उदर पोषण के भार से भारित हो गए। सारांश यह है कि इनकी दशा के बिगड़ने से अन्य जातिया भी बिगड़ गईं। यह सब अनहोनी होनी थी क्योंकि ईश्वर को यह इच्छा हुई कि विज्ञान की महिमा मानव वृन्द देखें और ब्रह्म विद्या के नाश किए हुए बिना विषय रानी की पूर्ण महिमा देख पड़ना सर्वथा असम्भव था। क्योंकि ब्रह्म विद्या प्राप्त करने वाले विषय लोक से प्राय हेच करते थे। जैसे यूरप में वायु विद्युत तथा पृथ्वी को वैज्ञानिकों ने अपने वश में कर लिया है और इन्हीं के परस्पर योग से छोटे से छोटे कार्य्य कर लेते हैं, वैसेही ब्राह्मण उन सब शक्तियों को इसी शरीर में प्राप्त करते थे और ऐसा चमत्कार दिखलाते, जिसे पढ़ कर आज कल के यूरुप के विज्ञानी लोग अचम्भित हो जाते और कहते यह सब गप्प है। किसी विज्ञानी को यदि प्रह्लाद जी की अवस्था में छोड़ दीजिए तो उनको अस्थि भी न मिलेगी शरीर की कौन कहे। कहते हैं कि प्रह्लाद जी के क्रूर पिता ने उन्हें जलती हुई अग्नि शिखा में फेंका पहाड़ पर से भी गिरा दिया तब भी उस अज्ञानी विषय परायण हिरण्यकश्यप को यह सिद्ध न हुआ कि आत्मा से सुरक्षित शरीर को मानुषीय शरीर कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकती। ये ब्राह्मण गण अस्त्र शस्त्र में ऐसे प्रवीण थे कि जब चाहते वायु बहाते, पानी बरसाते, समुद्र में

एक तीर मार वडवानल उत्पादन कर देते जिससे कि समुद्र का पानी खौलने लगता और उसके जीव जन्तु सब जल जाते। कभी ऐसे अस्त्र का समाधान करते कि सारी सेना मूर्छित और अचेत हो जाती। शास्त्र कहता है कि एक समय दुष्ट काक ने भगवती सीता के उरोजों पर चोंच मार कर विदीर्ण कर दिया जिस पर महाराज रामचन्द्र ने एक सींक का ब्रह्मास्त्र उस दुष्ट को दण्ड देने अर्थ मारा जिसके त्रास से भू लोक में भ्रमण करता हुआ काक ने जब देखा कि कोई भी प्राण बचने का उपाय नहीं है तो महाराज के चरणों पर गिर पड़ा और प्राण दान माँगने लगा। उन्होंने उसकी एक आँख नाश कर उस ब्रह्मास्त्र को शान्त किया। यह सब अस्त्र मन्त्रों के द्वारा प्रयोग होते थे और इसे सीखने के अर्थ लोग गुरुओं के सन्निकट जाते थे।

मुझसे एक बूढ़े पादड़ी से साक्षात्कार हुआ जो कहने लगा कि मैं ब्राह्मणों को शिखा और सूत्र देखे बिना पहिचान सकता हूँ। वास्तव में ये ब्राह्मण गण स्वाध्याय तथा निरन्तर आत्माअध्ययन से ऐसे प्रभावान् रहते थे कि इनकी समता सूर्य तथा अग्निदेव से दी जाती थी तो इस युग में यदि अन्य जातियों के मध्य में ये पहिचान लिये जावें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है।

भागवतकार कहते हैं कि कलियुग के आते ही धर्म, पृथ्वी तथा वर्णों के चार पैरों में से एक पैर रह जायगा अर्थात् इस युग में ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीनों धर्महीन हो जावेंगे और शूद्र धर्मपरायण या ऐसा समझें कि जप तप स्वाध्याय इत्यादि के चरण लुप्त हो जावेंगे और केवल ज्ञान कथन मात्र का चरण

अवशिष्ट रहेगा। पर जैसे बीज का नाश नहीं होता वैसेही किसी वस्तु का पूरा नाश सर्वथा जगदीश्वर के उदार राज्य में असम्भव है। साराश यह है कि ईश्वरेच्छा यही है कि भारतवासी अपने प्यारी आत्मविद्या को न भूल जॉय इसलिये महात्माओं की सृष्टि किया करते हैं। प्रत्यक्ष नारद मुनि के अवतार, अपने सगीत से भगवान् कृष्ण को लुभाने वाले, जगत् को हरिकीर्तन करने की सौख्य सिखाने वाले, अहर्निशि आत्मा तन्त्री के सरस सुर के श्रवण में तन्मय रहने वाले, वैष्णवों में आदर्श स्वरूप, गौराङ्ग (चेतन्य देव महाप्रभु) जी का जन्म हुआ था। इनके आने से इस समय वृन्दावन में सहस्रों वैष्णवों का दल हरि-कीर्तन ह्रद में निमज्जन करता हुआ देखने में आयगा।

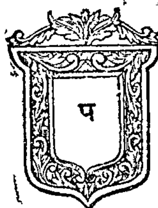
गौराङ्ग के पश्चात् महात्मा आवाल ब्रह्मचारी, कलियुग के ध्रुव, सकल मतों के कसोटी, आत्मा के दिव्यपुरी में अहर्निशि रहने वाले, १६ वीं शताब्दी के महात्माओं के मौलिमुकुट, नम्रता में ईसा से, भगवती कात्यायिनी से प्रत्येक शङ्काओं का समाधान करने वाले, अपढ होते हुए भी विद्वान्, परमहस होते हुए भी गृहस्थ, विवाह की विडम्बना करते हुए भी ब्रह्म-चारी, चैतन्य होते हुए भी जड, तीन ही दिन में हर मत के इष्टदेवों का दर्शन करने वाले, अहङ्कार राक्षस को अपने पैरों के तले कुचलने वाले, दीनों के दाता, भक्तों के परित्राता, भक्ति नदिका को कीर्तन मिस प्रस्नवित कर सहस्रों मनुष्यों को मुक्ति देने वाले दर्शनेश्वर ग्राम के देवता भगवान् राम कृष्ण जी परम-हस उत्पन्न हुए थे। इन सन्तों को ईश्वर इसीलिये भेजता है कि भारतवर्ष की ब्रह्म विद्या रूपी अग्नि कहीं लुप्त न हो जावे। थोडे दिन बीते कि मैंने ऐसे ब्रह्मर्षियों को देखा है कि जिनको देख सभी लोग यह कहते कि इनका शरीर तो अवश्य इस भूलोक

पर है पर इनका मन उसी उज्वल लोक का अतिथि होबैठा है। यह विद्या अर्थात् इस शरीर रूपी समुद्र में डुब्बी लगा कर अन्तःकरणसीप को खोल कर, मोती ब्रह्म को निकालना ब्राह्मणों का रोजगार था। अन्य देशों में भी इस आत्मा नदिका में निमज्जन करने वाले हो गये हैं जैसे ईसा (Jesus Christ) मुहम्मद (Mohammad) ज़ोरेस्टर (Zoraster) किन्तु अभाग्यवश ये ऐसे जनों के बीच पैदा हुए कि इनका कथन कुछ और, इनके शिष्यों का आचरण कुछ और। यदि ये प्रजा को पालने का आदेश करें तो शिष्यों को प्रजाओं को हलाल करना सूझता, यदि गुरु जी ने ईश्वर के प्रिय नाम को जगत में फैलाने को कहा तो प्रत्युत इसके कि इस कार्य्य के करने में शास्त्र तथा विज्ञान का सहारा लिया जाय वे कुरान शरीफ से तलवार निकालते। वैसे ही यदि ईसामसी ने आत्मविद्या को प्यारी रोशनी दिगदिगन्त में फैलाने का आदेश किया तो उसके स्थान में पादरी लोगों ने अन्धकार फैलाना शुरू किया है और यहाँ तक कि जो रोशनी में भी हैं उन्हें अन्धेरे में ले जाते हैं।

यदि पशु और पक्षी भी सेवा करते हैं, यदि साँप भी मिताई करता है और लुच्चे भी यदि कहीं भले आदमी बनते हैं तो इन्हीं ब्राह्मणों के कुटीरो में, शेर भी यदि किसी के कुटीर की रखवाली करता है तो इन्हीं ब्राह्मणों की। यह ठीक है कि जहाँ आत्मविद्या पढी जाती है वहाँ की भूमि पवित्र है, वायु पवित्र है और जितने प्राणी मात्र बसते हैं वे सब सत हैं। यदि जंजीरः जुनू के पाँव की बेडियाँ कहीं खोली जाती हैं तो इन्हीं के यहाँ; यदि नृपति और रङ्क सम दृष्टि से देखे जाते हैं तो इन्हीं के यहाँ, यदि पक्षीगण समय से सङ्गीत गाते तो इन्हीं पुनीत ब्रह्म विद्या के पढ़ने वाले ब्राह्मणों के आश्रमों में, यदि कलियुग अब

धारण करते हुए भी अहङ्कार दावानल से जिसका अन्त:करण भस्म हुआ करता है, अनेक नदी और झरनाओं का पितामह या प्राणदाता, मदान्ध हस्तियों के साथ रहते हुए भी मतवाला नहीं, सब देवता और महर्षियों को अपने अन्त:करण में स्थान दे महन्थ सा मठधारी, कृष्ण मृग मिस सेवी महापुरुष वृक्षों के यहां गन्धी सी खुशबू बेचने वाला, सहस्रों हस्ती सरीखी मेघ मालाओं को अपने वक्षस्थल पर खेलाने वाला, नगाधिराज हिमालय उत्तर दिशा में स्थित है। और दक्षिण दिशा में गत यौवना कामिनी सी अपने दीन हीन दशा को देख सिकुड़ी हुई सूर्यवंशियों की पाली और भगवान् रामचन्द्र की परम प्रिय नगरी श्री अयोध्या पुरी है जो किसी समय अपने सौभाग्य लक्ष्मी पर अलकापुरी से भी विवाद करती थी। नील जल की सारी पहिने हुए पति-व्रता नायिका सी मन्द २ गमन करनेवाली, अनेक सफरी नेत्रों को चला कर तटस्थ जम्बू प्रेमियों को अपने निकट बुला किन्तु क्रीडा हेतु ऊर्मियों मिस बरजने वाली, पुन सिवार के कुन्तल जाल में उन्हें उलझा, टिटिहरियों मिस हसनेवाली, प्रोषित पतिका नायिका सी अपने दूरस्थ पति महोदधि के विरह में मच्छकुल के मिस कराहने वाली, प्यारी नदी मनोरमा पश्चिम में बहती है। कर्मकाण्डियों का खिल्ली उडाने वाला, बूढ़े पुरातन पुराण की दाढ़ी खुजलाने वाला, ताना लगानेवाला योगी, श्वेत लम्बी दाढ़ी वाला मगहर का जुलाहा ज्ञानी कबीर पूर्व में निवास करता है। इससे यदि हम थोडे में यह कहें कि चारो [illegible] आवेष्टित होने का सौभाग्य मेरे इस स्थान को [illegible]। यह परम पुनीत स्थली जिसने पुरातन [illegible] पुनीत दृष्टि देखी थी, और तपोधनी तप-





रमेश्वर की कृपा से हमारी कुटी, गांव कुटी तपस्वियों में कुम्भोदर या अगस्त सी है, या कुटी ग्रामीणों में नागरिक सी अनेक उद्यान, जङ्गल और तडाग वाली है, वा सब भोले भाले ग्रामीण मनुष्यों की नेत्रोत्सव है, वा उनके लिए एक आश्चर्य का लोक है। सभी गावों में अपनी प्रशसा सुनानेवाली, और सब से प्रतिष्ठित समझी जाने वाली, अनेक उत्सव और मङ्गलों को दिखाकर नागरिकों के सुखों को तथा उनके दारिद्र्य का परिचय देकर, ग्रामीणों को चतुरता का पाठ पढ़ाने वाली, जङ्गल में मङ्गल करनेवाली, उस पवित्र सुस्थली में स्थित है जिसके उत्तर दिशा में सर्व औषधियों से सम्पन्न धनी पहाड़ी वा अवतार सा, भगवती गौरी के चरण स्पर्श से परम पुनीत, भगवान् त्रिशूलपाणि रूपी सम्पत्ति पाने से जिसका अन्तःकरण योगियों सरीखा उज्ज्वल और पवित्र हो गया है, हिमराशि होते हुए भी निठुर, योगिराज के सन्निकट होते हुए भी जड, सब पर्वतों का अभिमान तुच्छ करनेवाला, हिम राशि मुकुट

धारण करते हुए भी अहङ्कार दावानल से जिसका अन्त.करण भस्म हुआ करता है, अनेक नदों और झरनाओं का पितामह या प्राणदाता, मदान्ध हस्तियों के साथ रहते हुए भी मतवाला नहीं, सब देवता और महर्षियों को अपने अन्त.करण में ध्यान दे महन्थ सा मठधारी, कृष्ण मृग मिस सेवी महापुरुष वृद्धों के यहां गन्धी सी खुशबू बेचने वाला, सहस्त्रों हस्ती सरीखे मेघ मालाओं को अपने वक्षस्थल पर खेलाने वाला, नगाधिराज हिमालय उत्तर दिशा में स्थिति है। और दक्षिण दिशा में गत यौवना कामिनी सी अपने दीन हीन दशा को देख सिकुडी हुई सूर्यवंशियों की पाली और भगवान् रामचन्द्र की परम प्रिय नगरी श्री अयोध्या पुरी है जो किसी समय अपने सौभाग्य लक्ष्मी पर अलकापुरी से भी विवाद करती थी। नील जल की सारी पहिने हुए पति व्रता नायिका सी मन्द २ गमन करनेवाली, अनेक सफरी नेत्रों को चला कर तटस्थ जम्बू प्रेमियों को अपने निकट बुला किन्तु क्रीडा हेतु ऊर्मियों मिस घरजने वाली, पुन सिवार के कुन्तल जाल में उन्हें उलझा, टिटिहरियों मिस हसनेवाली, प्रोषित पतिका नायिका सी अपने दूरस्थ पति महोदधि के विरह में मञ्जुरकुल के मिस कराहने वाली, प्यारी नदी मनोरमा पश्चिम में बहती है। कर्मकाण्डियों का खिल्ली उडाने वाला, बूढ़े पुरातन पुराण की दाढी खुजलाने वाला, ताना लगानेवाला योगी, श्वेत लम्बी दाढ़ी वाला मग्गह का जुलाहा ज्ञानी कबीर पूर्व में निवास करता है। इससे यदि हम थोडे में यह कहें कि चारो ओर तीर्थों से आवेष्टित होने का सौभाग्य मेरे इस स्थान को प्राप्त है तो मिथ्या नहीं। यह परम पुनीत स्थली जिसने पुरातन काल में तपोवन की पुनीत दृष्टि देखी थी, और तपोधनी तप-

स्त्रियों को पोषण कर अपने जीवन को सफल मानती और तपस्वी बालकों के लिये अनेक सुस्वादु फलों को उत्पन्न कर माता सी पोषती थी, पर अब तो कलियुग ने इसके तपोवन को नष्ट कर केवल क्षेत्र और जङ्गल मात्र रख छोडा है तो भी हम यह कहेंगे कि महाराज कलि के देशों में यह अब भी बहुत कुछ सत्य और धर्म पर आरूढ़ है। इससे कि बचपन का संस्कार कभी निर्मूल नहीं होता। अत सतयुग द्वापर और त्रेता में यह स्थान तपस्वियों से सकृत होने के कारण अब भी पुरातन तप की सुगन्धि विचक्षणजन आमोद कर सकते हैं।

यहां हम लोगों ने लडकपनसे एक छोटासा कृत्रिम शैल बना रखा है। इसकी नीव डालने में उतना ही मीमांसा किया गया जितना कि सूफियों के सकल शास्त्र को रूमियों के समक्ष मिथ्या और व्यर्थ समझाने में सुकरात ने किया था, वा जितना कि कुस्तुनतुनिया की नीव डालने में सिकन्दर को हुआ होगा। वा मारटिन ल्यूथर को केथलिक मत को यूरप से निकालने में हुआ हो, अथवा जितना कि कलम्बस को अमरिका खोजने जाने की आज्ञा स्पेन के बादशाह से लेने में हुई हो। विशेष परामर्श का कारण यह था कि कलियुग के दानियों में बलि समान, अपने भागवत कर्म में अक्षयवट सा वा अचल हिमालय सा जिसके धर्म श्रृङ्खलावों की मिति नहीं, स्मृति और शास्त्र को लकीरों पर चलने वाले, और कदापि किसी अवस्था में विचल न होने वाले, पूज्य पिता से दुर्भाग्यवश हम सबों से भोजनार्थ अदालत छिड गई थी, इससे हम लोग यहाँ रह सकेंगे वा नहीं इसका कुछ ठीक निश्चय नहीं था।

यद्यपि इस समय विपत्ति देव ने हमारे आहाता को भी भोजनार्थ कृषि क्षेत्र बना डाला था। किन्तु ब्राह्मणों का वनस्प-

तियों से सहज स्नेह होने के कारण यही निश्चय हुआ कि इन तीन आम के वृक्षों के नीचे का भाग कृत्रिमशैल के लिए छोड़ना ही चाहिये। इसके बनाने की मय को ऐसी उत्कण्ठा बढ़ी कि हम सब उसका स्वप्न देखने लगे। दिन भर तो हम सब उसे बनाते और रात भर उसके सौन्दर्य की, और वह कैसा हो, इसकी बातें किया करते और प्रसन्न हो कभी कभी कहते कि देखो हम सब रात दिन अपने ग्रीनहाउस की ही चर्चा करते हैं, और फिर भी विषय नहीं चुकता।

हमारे कृत्रिम शैल के पूर्व भाग में ऊँचा और प्रशस्तलता मंडप है, जिस को प्रौढ अविवाहिता मिस मूनिया (राधालता) अपने तन्तुओं से ऐसा आवेष्ठित किये है कि जेसी लज्जावती नायिका सूर्य के किरणों को अपने अन्तर्यौवन की शोभा को नहीं देखने देती। यही तो ग्रीष्म के दिनो में भिश्ती सा आमोद रस से हम सभों के दिमाग को सींचती है। इसके बगल में वासुदेवपुर अरण्य से लाई हुई हम सभों की परम दुलारी मालतीलता है। यह यद्यपि चोदह वर्ष की है पर स्वयम्वर नायिका सी एक अनोखे सुन्दर चार वर्ष के रसाल से विवाह कर लिया है, और यह भी कलियुग के युवको सा, उसे सहृदय स्वीकार कर लिया। कुछ दिन इन दोनों में खूब पटी पर अब दुर्भाग्यवश एक पार्श्ववर्ती रसाल की शोभा पर ऐसी आशक्त हो गई कि अपने तन्तुओं के विलास मिस उससे भी विवाह की बातें करने लगी, और सामान्याओं सा अपने पूर्व पति को भी प्रसन्न रखना चाहती है इस कारण इसका पूर्व पति रसाल कुछ खिन्न रहता है।

सन्तोष वेदान्ती इस लता मण्डप को बादशाहों के महलों से भला बताता है, कौन जाने कि यह सत्य भी हो। पर यह

तो निश्चय है कि यदि आपको कविता देवी ने चक्षु दिये हैं तो निश्चय है कि जैसे पहाड़ के शिखर पर बैठा गोल्डस्मिथ ने वसुमती की शोभा को निरखता मुग्ध हो गया था, वैसा ही इस लता मण्डप से आप इस लीला शैल की विचित्र शोभा को निरख किञ्चित काल के लिये संसार को भूल जायँगे। यह देखिये लाल सुर्खी से सुर्ख सड़क, पर्वत को तीन भाग में विभक्त करती हुई अपनी वक्रता में गैरिक् नदी, वा अरुण सर्प सी, कमलिनी कुण्ड को स्पर्श करती, और पाम के पत्रों को चूमती सेण्टोनिसविकटेटा को लपटाती (क्योंकि यह पहाड़ों से न सन्तुष्ट हो सड़कों पर भी आ फैल गया है) सुम्बुल से सन्देश सुनती और पातालनिम्ब को वृद्धि को देख हँसते हँसते लाल हो जाती सी, सीता कुंड के कण्ठ को गले लगाती और अष्टावक्र नाम रसाल तपस्वी को प्रणाम कर, दोनों सड़कें अपने नाम और रूप को त्याग कर, हरित भूमि सागर में लीन हो जाती हैं। यहाँ से तो हम बैठे बैठे कहते कि देखो नेत्र पथिक घण्टों तक काउपर सा इस ठौर से इस खाड़ी के अनुपम हरियाली को देख निमग्न हो सकता है।

यद्यपि यह कृत्रिम शैल लोहे या शीशे के घर में नहीं है, और न लोहे के छड़ों से नियन्त्रित वा चिकों से ढका है, और न इसकी सड़कें संगमरमर के कंकड़ों से पिटी हैं, पर जैसा मैंने कहा है कि यह तीन वृक्षों के (जिन्हें भगवान चिरजीव रक्खे) अधोभाग में स्थित है, इससे कृत्रिम छाया की आवश्यकता नहीं रखता है और कराल लूह से इसके निवासियों को बचाने का बेला रानी, मिस मूनिया, ग्वालिन नेवाड़ी ने ठीका लेकर चारों ओर से इन लताओं ने आवेष्टित कर लिया है। आज आप कृपा कर इस लीला शैल पर घूम

कर इसे सनाथ कीजिये, और वनस्पति लोक से परिचित हो कुछ काल के लिये तपस्वियों का सुख उपभोग कीजिये। इनमें सब से रम्य और सत्यत गिरिराज के सम्मुख और पताल नीम से सुसज्ज खाडी को भी अपनी हरियाली और उन्नता से लजाने वाला पर्वत, सीता कुंड के नाम से इस छोटी दुनिया में विख्यात है। इसके तीनों तरफ पाँच या छ फीट पर्व्वत उठा है, और इसके बीच में एक पक्का कुण्ड है कि जिसमें ग्रीष्म में भी वर्षा का स्मरण दिलाने वाला कृत्रिम स्रोत बहता है और निनाद से अपने मूर्धन् स्थित वनस्पति वर्गों को प्रसन्न करता है। इसी कुण्ड में हम ग्रीष्म में महिषी पति सा लीला किया करते हैं। इसके पार्श्वस्थित पर्व्वत का नाम हम सभों ने भारतवर्ष रक्खा है क्योंकि इसमें सभी जाति के वृक्ष हैं, अर्थात् पोइटिस, पिट्टूनिया, पाताल निम्ब, फर्न (Fern) सेन-टोनिस बिकटेटा इत्यादि विराजमान हैं जिन से ऐसा आच्छादित है कि लीला शैल के प्रस्तर हृदय को आप कदाचित् नहीं देख सकते। इसमें तीन चार क्रोटन भी हैं, जो ऐसे ऊँचे हैं कि मानों कह से रहे हैं, कि तुम सब के व्यवहार से हम परम सन्तुष्ट हैं, और कोई तो उसमें से मधूक वृक्ष से भी हाथ मिलाना चाहते हैं। इसके बगल अर्थात् उत्तर दिशा में और दूसरा पर्वत है जिसे कि हम सब कुम्भोदर कहते हैं। इसके ऊपर जो घांसी लगी है वह हस्ती के कुम्भ स्थित रोम राशि सा सुहावना देख पड़ती है।

अब उन तीन प्रिय रसालों की कथा सुनिये जिनके नीचे ये सारे वनस्पति वर्ग, जो एक उपनिवेश से हो रहे हैं बसते हैं। प्रथम महाशय तो अमीर मुसलमान से हैं। आपने कई लताओं से शादी की है, जिसकी कथा बडी ही रोचक है। प्रथम तो

भाग्यतः इन्हें बात बात में झगड़ने और पद पद पर रोकने वाली, इनके पवन के सकाश से गाने पर सहस्रों कटु वचन सुनाने वाली कर्कशा प्रौढा सुन्दरी नायिका वेतसलता मिली। इसके दुख से दुखी, मन में यह समझा कि यदि हम दूसरी शादी कर लें तो इसका अपमान होने से गर्व हीन हो सीधे से मेरे अंक में पडी रहेगी, इससे, सब के मन को आल्हाद देने वाली वेला लता से शादी किया, जिस समय वह पतिव्रता सरीखी श्वेत पुष्प आभरणों से ऐसी सजी धजी थी कि सत्यत विवाह योग्य थी। किन्तु इसका भी विवाह आपको न रुचा इससे कि एक यदि अति पुष्टांगी है, तो वेला अतिकृशाङ्गी। यदि एक अपने हरित पल्लवों से लपटने वाली, तो दूसरी सदा रूप गर्विता हठीली नायिका सी दूर ही रहने वाली, इससे रसाल महाशय ने तीसरी शादी स्थिर की। इस बार प्रौढ़ा, अनेक साहित्यों से सचित, रूप यौवन मद से इतराती मालती से शादी की। भाग्यत यह विवाह इन्हें मङ्गलकारी हुआ क्योंकि मालती और वेला ने अपने पति महाशय को वेतस कर्कशा से मुक्त करने के अर्थ हम सभों से सहायता माँगी और हम सबों ने रसाल महाशय का हठात् उससे पीछा छुडाया पर जैसा कहा है कि लगी आखों से वास्ता नहीं छूटता, आप अब भी उससे कुछ कुछ वास्ता रखते ही है।

दूसरा रसाल जिन्हें आप पार्सी या युरोपियन कहिए तो कुछ अयुक्त नहीं, क्योंकि आपने केवल श्वेत हरित पल्लवों वाली पोइन्सि लता से पाणिग्रहण किया है और इसी कारण यह इन्हें दिल खोल कर प्यार भी करती है, उनके सारे शरीर में वह ऐसा लिपट रही है मानों द्वितीय शरीर सी है। पर वर्षा में जब कि वनस्पतियों का बाल (Ball) होता है, तब ये भी अन्य

लताओं से अकसर आखें लडा लिया करते हैं नहीं तो एक नारी ब्रह्मचारी ही बने रहते हैं। यद्यपि इन्हीं के समीप सहस्रों सुमन आभूषण से लदी कश्मीरिन सी नेवाडी इन पर नित्य ही कटाक्ष आक्षेप करती और मुगलानी सी सेवती अपने सुर्ख ओठों से ललचाया करती पर ये इन दोनों को देख केवल मुसकुराया ही करते हैं। यद्यपि कभी २ पाणिपीडन भी होता है पर और कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। इस वृक्ष के अधो-भाग में एक पर्वत है, जो वृत्ताकार है और पाच भाग में विभक्त है। इनमें करोटन, विलायती नीम, फोइक्लिस सुम्बुल पाताल नीम इत्यादि वृक्ष विराजमान हैं। इसका मूल अनेक अपूर्व वनस्पतियों से संयुक्त है। यह रसाल मूल में विशेष धनी बनिस्वत उर्ध्व के, जैसे कि प्राय: मनुष्य अधोलोक के धनी हैं और ऊर्ध लोक के दरिद्र, और निराश्रय होते हैं।

तीसरा रसाल जो हमारा ज्ञानदाता है, जिसके मूल के प्रशस्त चौतरे पर बैठ हम कविता देवी का आह्वान किया करते हैं, एक भाति अङ्गरेज सा है जो अभी तक कुमार है। यद्यपि आप चौबीस पच्चीस वर्ष के हैं पर तौभी शादी की चरचा करने पर क्रुद्धित हो, ऐसा कहते से ज्ञान पडते हैं कि इन बीबियों के भार वाहन में मैं समर्थ नहीं हूं। क्योंकि ये हमारे ऊपर ऐसी लद जायेंगी कि हम विलकुल बेकाम हो जायेंगे, और सच तो यह है कि हमको अपने ही सौख्य की सामग्री नहीं सम्पूर्ण होती तो भला इनके आ जाने पर तो आधा हिस्सा भी न जुर सकेगी। यदि हम प्यारी मिसों के वक्षस्थल पर निवास करने वाली लता बीबी मसलिन (पीला गुलाब) को उनसे मिलाते तो आप अपने पल्लव करों को खींच, रुष्ट मन हो, हर हर शब्द करने लगते हैं मानों विवाह विपत्ति-महाजाल से

घचने के लिए मन्त्र सा जप रहे हैं।

अब कुछ कमलिनी कुण्ड की कथा सुनिए। यह कुण्ड खूब प्रशस्त है। पूर्वकाल में यह कच्चा कुण्ड था जिसमें हरी हरी सांप की केंचुल सी चमकती, वृद्धि में रक्तवीज को भी ध्वस्त करने वाली, वेतस लता लगी थी। पर अब तो यह पक्का हो गया और यमुना सरीखा निर्मल जल भरा रहता है। इसमें कमलिनी और कुमुदनी दोनों कवियों की प्यारी नायिकायें आरोपण की गई थीं, और वडे परिश्रम और मान से स्थापित की गई थीं, पर कमलिनी तो यहां भगवान् भास्कर के दर्शन न पाने से सूख गई, परन्तु कुमुदिनी ने अच्छे २ पत्ते फेंके थे। मूर्खतावश वा विधिवश इस कुण्ड की सफाई में लोगों ने उसे कुछ ऐसा जल के सञ्चालन से दुखी किया कि उसने प्रस्थान ही कर जाना, इस कुण्ड से समीचीन समझा, इससे केवल एक पूर्व की कथा कहने वाला बुड्ढा नागर मोथा मात्र बच रहा है। पर हम लोग विचारते हैं कि वसन्त के प्रादुर्भूत होते ही फिर हम लोग सादर इन दोनों नायिकाओं को ला इस कुंड के नाम को यथार्थ करेंगे।

इसके पूर्व और पश्चिम कृत्रिम पर्वत हैं, पश्चिमवाला पुरातन होने के कारण ऐसे २ लम्बे करोटन अपने मस्तक पर धारण कर रक्खा है जो आम के पल्लवों को छू रहे हैं, और अपने वृद्धि को दिखा नागरिक करोटनों का सत्यत उपहास करते हैं। इसपर तो सहस्राक्ष के नेत्र अभिमान को भुलाने वाली, सहस्रों आंख वाली सैंटोनिस चिस्टेटा और श्वेत हरित पत्तों से लदी बीवी पोहटिस इस पर्व्वत को ऐसा घेरे हुए हैं कि इनकी शाखायें पर्व्वत से उतर २ कर कमलिनी कुंड में जल पीती हैं। लम्बी हरी २ काली कोहलिस बहुत ही सोहावनी

लगती है, जब वह जल कण या ओस कणों से संयुक्त होती है। फैन पताल नीम इत्यादि रेड इंडियन के भाँति इसमें अपना रहना दु सह सा देख चल बसे हैं। पूर्व वाला पर्व्वत चूंकि अभी परसाल बना है, इससे बहुत हरा नहीं है। परसाल तक यह भी वर्णनीय हो जायगा। कमलिनी कुंड के दक्षिण का पर्व्वत यद्यपि ऊंचा नहीं है पर बहुत ही सुहावना है। यहीं तो पाम, बाबा आदम सा, अपने अन्तर में सहस्रों स्वर्गीय युवतियों की सुकुमारता को लजाने वाली, बालकमानी सी डाल में हरे हरे पत्रों को लगाए, नायिका सी हर एक वायु के झोंके में लक लचाने वाली, अमीरों सी कभी सूर्य्य के ताप को नहीं सहने वाली, अपने हरियाली से हरे मानिक की प्रभा को कवियों के ख्याल में फीकी करने वाली, रानी सुम्बुल और शाहन्शाहजादियों के मुकुट को विस्मृत कराने वाली, पाताल नीम बसती है। इनके सिवाय और बहुत से करोटन हैं, जिसमें एक महाशय की कथा तो अवश्य सुनने योग्य है। क्योंकि इसी में तो बाबा वा पापा करोटन, लगा हुआ है, जिसके सहस्रों क्रिश्चियन करोटन सारे ग्रीन होम को बसा दिया है। इससे यह अक्सर कहा करते हैं कि हम सब से पूजनीय हैं और हमारी तो साल गिरह होनी चाहिये, किन्तु यह उत्सव अभी मीमांसा ही में है और कभी मनाया नहीं गया।

इसमें कई बड़े विचित्र करोटन हैं, जो अपने तड़प झड़प से लखनऊ के शौकीनों को भी तुच्छ करते हैं। बहुतों की पत्तियाँ तो ऐसी लहरीदार हैं मानों इन्हें विधि ने चुना है कोई ऐसे लाल पीले हैं, कि प्रत्यक्ष दुलहा से बने हुए हैं। कोई बीसों वर्ण के पत्तियों को खिला पुष्पों की शोभा को धारण किये हैं। कहीं सेजिनेला मयूर कण्ठ के द्युति को

धारण किये हुए कामिनी सी झावां चट्टान पर लेट रही है। कहीं गन्धकी रङ्ग की पत्ती जिसपर काली रेशमी मग़ज़ी लगी हो ऐसे पत्र धारण किए विगोनिया परी सी खड़ी है। यहीं तो एक नूतन बड़ी नाजनीन बीबी एस्पेरेगस आई है, गो यह अभी अनमनी सी हैं पर यदि यह चिरञ्जीवी रहेंगी तो एक दिन चार वर्ष के हरे पर्णों से लदा श्वेत डाल वाला सुन्दर युवक ज़म्बूक से इनका विवाह करेंगे। क्षत्रियों की भाँति बचपन ही में इन सब की शादी ठीक हो गई है। यद्यपि इसी के सन्निकट नरकट सफ़ेद साटन से पत्तियों पर जिनपर चमकती हुई रेखा पड़ी है, सत्य ही बड़ा ही सुन्दर है, और रात दिन इसके पैरों गिरता है पर इसने कहा कि तेरा ऐसा बुरा नाम है कि मैं शादी न करूंगी। निदान यद्यपि बालिका और नादान, पर तो भी न जाने क्यों सुकुमारी एस्पेरगेस रानी ने निकटस्थ ज़म्बू से बिला हम सबों से पूछे शादी करना स्वीकार कर लिया। हमारा अन्तिम पर्वत जो सतमी के चन्द्रमा सा वक्र है और जिस पर बहुत प्रकार के वनस्पति विराजमान हैं हम सबों के नेत्रों को सुख देता है।

सच तो यह है कि अब इन मौन शान्त भद्र वृक्षों से विशेष स्नेह है बनिस्बत इन दुनियावी आदमियों से, क्योंकि इनके सन्निकट यदि आप बैठिये तो शान्ति आयेगी, आंखों में तरी, और दिमाग ठण्डा होगा, और यह समझ कि परमात्मा ने मिट्टी से सहस्त्रों रङ्ग की पत्तियां और फूल निकाले हैं, ज्ञान की परिपुष्टि होगी। दुनियवी मनुष्यों के सहवास से यदि आप आसमान में भी हों तो ये अधःपतन करा देते हैं। इसके अतिरिक्त कलियुग में वनस्पति वर्ग, चन्द्रमा, सूर्य, इत्यादि हम सबों को उसके रूप और महिमा का विशेष ज्ञान दे सकते हैं बनिस्बत

मनुष्यों के, इससे हम इन्हीं के साथ रहा करते और मनमानी बातें किया करते हैं।

आज बर्षों की इन सब की की हुई प्रार्थना पूरी हो गई, क्योंकि जब हम इन सबों के निकट बैठ विविध विषयों पर लेख लिखा करते, तो ये प्रार्थना करते से सुन पड़ते कि आपने बहुतों की कथा गाया पर कभी हम सबों की तस्वीर कविता देवी से न खिचवाया। हम अरण्य वासियों को अनेक नगरों में और पण्डित भक्त जनों के सन्निकट आप ही तो ले जा सकते हैं।



हमारी कुटी



अपने वस्तुओं का कुछ ऐसा प्रशसक और उनसे कुछ ऐसा सन्तुष्ट हू कि कभी २ हँसी में यह कह पडता हूँ कि मैं भी एक द्वितीय कौपर (Cowper) हो गया हूं, जैसे वह सदा अपनी ही गीत गाया करता और मजाक में कहता कि "मैं उस चित्रकार सा हूं जो अपने रूप पर ऐसा आसक्त है कि दूसरे के चित्र बनाने के बदले दर्पण रख सदा अपना ही चित्र खींचा करता है," वैसाही मैं भी आप सबों को "दिन-चर्य्या" की चर्चा सुना, "मसहरी" की अनेक पुनीत भावनावों के मुहल्लों में घुमा कर, फिर "ग्रीन हाउस" के पवित्र रसीले हरे पर्व्वतों में आपकी भावनाओं को चक्कर खिला, क्षणेक ससार ज्येष्ठ से विश्राम दिला, दिमाग को शीतल किया था। आज की कविता देवी आपके भावना रूपी अतिथि को नेक उस कुटी में विश्राम करने की प्रार्थना करती है जो इस नवद्वारवाली पुरी को मिली है, और जो चारों ओर से ऐसी खुली है कि सहस्त्र रश्मिधारी भगवान् सूर्य्य के किरणों को द्वारपाल सदृश क्रूरता दोधार से रोकने का महापाप प्रात काल वा सन्ध्या नहीं करती वा सारे विश्व को अपने वश करने वाले और सब

को माता पिता सदृश पालनेवाले महात्मा मातरिश्वा को कभी इधर उधर स्वच्छन्दता से सञ्चलन करने में बाधा नहीं करती। क्योंकि वह (कुटी) कहती है कि न ईश्वर से कुछ परोक्ष रखती हूँ और न जगत् से रक्खूंगी, इसलिये कि तपस्वी का चरित्र आदर्श योग्य होता है, न कि छिपाने के योग्य, ससारिक मनुष्यों के बाहर तो कुछ रहता है और भीतर कुछ दूसरा ही, इससे उन्हें दुष्ट दम्भ स्वरूप दीवार उठाना पड़ता है, जिसे मैं जी से घृणा करती हू। ज्ञान और विज्ञान से संतुष्ट होने से वह सदा शहनशाह और बादशाहों के महलों पर मुसकुराती है। और कहती है कि चिंता क्लेश ईर्षा-महागृध्र लाख प्रयत्न करने पर भी महलों के उत्तुङ्ग मीनार के गुम्मजों को छोड़ अनत नहीं जाते, और मेरे यहां तो ज्ञानी भुजैटा ठीक २ समय पर हरि नाम की नौबत बजाता और क्षेमकरी उस मगलमयी धाम की सुधि दिलाया करती है। जैसे पडित जन स्वर्ण मोती और माणिक्य से लदे मूर्ख पर परिहास करते हैं वैसा ही अविद्या और मोह से अधो महलों पर यह कुटी हँसा करती है। जैसे ताजमहल दिन भर में ७-८ रग बदलता है वैसेही यह कुटी भी अनेक रूप बदलती है। प्रात काल भगवान् प्रभाकर के सुनहर्ले किरिणों सदृश उज्वल और प्यारी भगवती उपनिषद् देवी और गीता के साथ प्रत्यक्ष अप्सरा या दुलहिन सी बनी देख पड़ेगी। यदि दुपहर को देखिये तो तपस्वी सा व्याकुल वृक्ष के अधोमूल में सोती सी लख पडेगी, फिर सध्या को प्रत्यक्ष संध्या सी शान्त भगवान आदित्य को नमस्कार कर सारी रात मीरा सरिस नाम कीर्तन करती दिखाई देगी।

यह ठीक है कि जब जी सुखी और सतुष्ट है तो कुटी

प्रासाद का सुख देती और जब जी दुखी और चिंतित है तो प्रासाद कुटी के सुखों पर तरसती है। मैंने देखा है कि प्रकाण्ड शरीर वाला सजा धजा महल ईर्षा के चक्षुवों से कुटियों के सुखों को देखता है जब कि ऊँचे होने के कारण उसके ऊपर दैवी विद्युतास्त्र गिरता है, तब वह आह मार कर कहता है कि बहुत सिर उठाने का यही परिणाम है। कविजन कहते हैं कि कविता प्रेम, सहृदयता, ज्ञान, और भक्ति प्राय महलों को छोड सदा, लता वेलरियों से आवेष्टित और वृक्षों के छाये में स्थित झोपडियों में ही विचरा करती है, और सच तो यह है कि कविता तथा ज्ञान को तो नगर की हवा ही नहीं बरदाश्त है।

मेरी ज्ञानी और संतुष्ट कुटी कभी भी महल रानी या नगर महारानियों का स्वप्न नहीं देखती। भला तब वह उनके तडप भडप पर ईर्षा क्यों करने लगी। क्योंकि वह तो स्वयं रानी सी सदा सहस्रों फूलों से आवेष्टित रहनेवाली, मीरा सी सदा एकान्त प्रसन्न मन अपने परमप्रियतम परमेश्वर का ध्यान करने वाली, और विहङ्गमों मिस अनेक संगीत गा, उन्हें रिझाने वाली है, सेवरी सी सदा नाम के सुस्वाद फलों को इकट्ठा करने वाली, देवी उपनिषद और प्रियंवदा गीता के साथ सदा सहवास करने वाली, विरही पपीहा सा सदा 'कृष्ण' 'कृष्ण' की रट लगाने वाली, ज्ञान और भक्ति की खेती कर निज जीवन को सुफल करने वाली, स्वदेशी आत्मा से प्रीति कर माया विदेशी ठगिन से नमस्कार करने वाली, हरिजनोंसे नेह कर और खलों को अन्तःकरण के देहली पर भी प्रवेश नहीं करने देती, पृथ्वी में चरण रक्खे हुये भी सदा ऊर्ध्व लोक में विचरने वाली, सतुष्ट होते हुए भी ज्ञान के लिये सदा लोभी

सी तृषित रहने वाली यह कुटी हर नाम की खेती करने से मिट्टी की कुटी की भांति नापायदार नहीं है क्योंकि इसके खम्भे सत्य के हैं छाजन सुघर ज्ञान का है, बन्धन दृढ़ प्रेम के हैं, जो सदार्कालीन हैं।

पण्डित पुरोहित या ज्योतिषी इस कुटी के नींव डालने वाले नहीं है परन्तु कविता बिन्दुओं से सींच भगवती कविता के आँगन को चहल पहल करने वाले, सदा पत्नीव्रत कविता आकाश के अनेक निर्मल देश में विचरने वाले, और स्वदेश को गीत गाने वाले महात्मा प्रेमघन जी हैं। इन्हों ने जब इसे निर्माण किया तो कहा कि बीसों हजार का मकान इस कुटी की शोभा के ऊपर निछावर है, पर मैं तो अब यहाँ तक इसके रूप और सुखों पर आसक्त हू कि यह कहने को उत्सुक हू कि समग्र शहनशाहों के महलियातों में वह सुख नहीं है जो इस कुटी में अदृष्ट बसती है।

इस कुटी के उत्तर भाग में रसीले रसाल से सपन्न कश्मीर नामक उद्यान है जिसमें निद्रा को पराजित करने वाले, वाहय शौच को घृणा करने वाले, शेर के वश सरिस बिल दुर्ग रूपी अपनी कुटी में ही बसने वाले, कबीर के उल्टे वचनों को सीधा करने वाले, ब्रह्म में लीन बाबा रघुवश जी रहते हैं। इसके पश्चिम में, जल में मर्कतमणि की समता करने वाला प्यारा शीतल सरोवर है, जो हम सब का सत्य ही में जीवन, मर्य्यादा, अनेक जल क्रीडा महा सुखों का दाता और बचपन, से हम सभों के साथ खेलने वाला है। सज्जनों के सतसङ्ग के कारण इसने सुन्दरी कमलिनी, और ज्योत्सना सी कुमुदनी रानियों से न पाणिग्रहण करने से, सदा ब्रह्मचारी सा निर्मल चरित्र, सिद्धयोगियों सा शान्त अन्त करण दिखा तटस्थ वृक्षों को सदा

शान्तता का उपदेश देने वाला, सफरियों के अनेक अद्भुत क्रीडा, आनन्द और उल्लासों को दिखाने से मानो कहता सा है कि निर्मल हृदय हो जाने पर ऐसा ही मनुष्य नाचने कूदने लगता है, वा जनक सा कहता कि मनुष्य पृथ्वी पर रहै पर यदि उसके अन्तःकरण में सदा आकाश ब्रह्म दरसता रहे तो निश्चय वह भी आनन्द जल से सदा आवारिपूर्ण रहेगा।

पुरातन काल में यह भूमि कैसी थी इसके दिखाने के हेतु, प्रकृति के उपासक पूज्य पिता ने १०-२० बीघे का जङ्गल दक्षिण दिशा में रख छोड़ा है, जो अब हमारा प्रकृति के अध्ययन करने का विद्यालय है, वा हमारा दूसरा घर है, या प्राकृतिक पूजा गृह है, वा सन्निकटस्थ प्राचीन महात्मा सा है वा भगवती प्रकृति जङ्गल में क्या परिवर्तन कर रही है, और किस नये सज धज से बैठी है इसको यथार्थ दिखाने का ठीका इस जङ्गल चित्रकार ने लिया है वा हमारा ऋतु रिपोर्टर है, या दैवी थर्मामिटर है जिससे विना जङ्गल में गये भी प्रकृति का नाड़िज्ञान हुआ करता है, वा यह बचा बचाया छोटा सा जङ्गल रेडइन-डियनों सा है जो स्वार्थी अर्थ परायण अमेरिकनों के तीव्र शस्त्राघात तथा कुत्तों के कराल भयङ्कर दाँतों से बचे बचाये इस कोने में छिपे पडे हैं, वा कलियुग के सत्य धर्म और कर्म्म के क्षीण परिणाम का यह भूगोलिक वा प्राकृतिक प्रमाण है या यह हमारा विहङ्गमालय है जिसमें विधि ने सहस्रों बुलबुल सामा दहियल दामा पाल रक्खा है जिससे मे भगवती प्रकृति देवी के अपूर्व सौन्दर्य्य की रसीली गीत गाना सीखूँ जिसे मैं नहीं जानता। कुटज पुष्पों से समृद्धवान होते हुए भी कूट-नीति-वेत्ता नहीं, सहस्रों वल्मीकों को उत्पादन करते हुए भी वाल्मीक नहीं,

सहस्रों भयावह सर्पों को निज तन में लपेटे हुए भी भगवान् शङ्कर नहीं, प्रिय दर्शन होते हुए भी भयावह, शाल वृक्षों को पालते हुए भी सालों का पालने वाला नहीं, असना से सपत्र होते हुए भी सदा जल पीने वाला, पलाश दण्ड धारी पर ब्रह्मचारी नहीं, लवकुश उत्पादन करते हुए भी भगवती सीता नहीं, मशकों की प्राचुर्य्य रखते हुए भी मशक वाला नहीं, सिद्धों से सपन्न होते हुए भी तपोवन नहीं, नट पट कोटों का पालते हुये भी अपराधी नहीं, सदा हर २ जपते हुये भी अन्तःकरण भृगुलता रखने वाला, समृद्धवान कानन में, दरिद्रता बन पशुओं की, श्री फल से युक्त होते हुए भी श्री के फलों से रहित, कनक की प्राचुर्य्य होते हुये भी दरिद्र, सन्निकट में कोई जङ्गल न होने से प्राय सभी भांति की चिड़ियाँ आतीं और घण्टों इस जङ्गल में समय व्यतीत करतीं और करवन के सुस्वादु फल चख, जंगल महाराज के महिमा की, कृतज्ञ पुरुषों सा अपने कविता सुर संगीत द्वारा अनेक प्रशंसा करती हैं।

यथा शक्ति हम सब इस जगल के पशु पक्षियों को पुरातन तपोवन के सुखों का अनुभव करने देते, क्योंकि किसी शिकारी या बहेलिया के घातक चरणों का प्रवेश नहीं होने पाता, इसमें शशक चैन से रेहार के प्राकृतिक गलीचों पर अपनी मन मानी दौड़ लगा सकता और उसको घास तृण के चरने में कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता, चालाक आंखवाली लोमड़ी इस तरफ से उस तरफ दौड़ जाती और उसकी लम्बी दुम पर कोई हिंसक लोभी हाथ नहीं मारता। इसीसे जो कोई चिड़िया यहां आती वह यहां की शान्तता निर्भयता, और स्वच्छन्दता का अनुभव कर पहिले तो कहीं जाती ही नहीं और यदि जाती हों

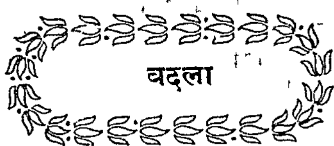
तो निश्चय इस वनस्थली के अपूर्व सुखों को स्मरण करती होंगी।

इस जगल में हम प्रायः नित्य ही दस बजे से साढ़े ग्यारह तक बादशाहों की तरह वा सगीत के आचार्य्यों की तरह चिड़ियों के संगीत के विवाद का महाशास्त्रार्थ सुनने जाया करते हैं, क्योंकि उनका यह धर्म है कि वे अपने संगीत से चाहती हैं कि दूसरे गाने वालों को चुप कर दें या लज्जित कर दें। इसी में अनेक सुरीले सरस सुरों का शास्त्रार्थ होता जब तक कि गवांर ग्रामीण पण्डित से महा यष्टीक लिये विवादी सुर वाले किलहने महोख चरखी इत्यादि अपने गाने को आरभ नहीं कर देते। तब मैं देखता कि वे सब हँस कर चुप चाप हो अपने प्राण यात्रा को इतस्तत प्रस्थान करतीं, और मैं यह समझता कि सभी विवाद में सुख है, यदि कोई किलहने या चरखी की भांति बात २ पर रोकना और टोकना न शुरू करे, क्योंकि तब तो आनन्द के स्थानापन्न दुःख हो जाता है। ऐसे विवाद से तो ज्ञानी पक्षियों की भाति चुप हो हट जाना ही समीचीन समझ पडता है। ऐसे यौगिक सपत्तियों से सम्पन्न अरण्य में और फिर भी ग्राम में यह कुटी स्थित है, थोडे में, जो कुछ ज्ञानी पण्डित ब्राह्मण को ब्रह्म विद्या पढ़ने की यावत् साहित्य की आवश्यकता है, वह सब, भगवती अन्न पूर्णा सी, यह कुटी दे सकती है।

एक कवि यह कहता है कि परमेश्वर के यहां के दुःख या दरिद्रता के उलाहने आधे हो जाते यदि मनुष्य अपनी शक्तियों का उपयोग मुझ सा जानता। ऐसी ही एक भाँति इस कुटी के सामान हैं। यदि आप सतुष्ट हैं ज्ञानी हैं तो सारे विश्व के सुखों को देने में यह कुटी समर्थ है। हमारी कुटी जैसे अपने रूप, और भाग्य से सतुष्ट है वैसा ही मैं भी इससे सब भाँति से

संतुष्ट हूं और ऐसा ही सब को रहना चाहिये जिसमें कि ईश्वर यह समझे कि हमने न्यामत दी हैं और यह इसका कृतज्ञ है। इसी कृतज्ञता का फल स्वरूप इस छोटी भ्रानी कुटी की यह गीत गाई गई।





बदला



समें सन्देह नहीं कि जब हम पर कोई आघात करता है वा कुटिल तीक्ष्ण वचनों से हृदय को विदीर्ण करता है, वा कोई कुटिल नीति की चाल चल हमारे मस्तिष्क को घूर्णित कर देता है, वा अखबारों में हमारी निन्दा छाप लोक में उपहास कराता है, वा हमारे दोस्तों हितैषियों को कुछ झूठी बात ऐसी वैसी कह कर वैरी बनाता है और इसी तरह अनेक अपकार किया है और करता है, ऐसों से भी बदला न लेना यह एक बड़ा सत्कर्म तथा पाण्डित्य है।

यदि एक ने मूर्खता की तो आपको मूर्खता करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तब तो आप भी वही हो जायँगे, या उसी कोटि के मनुष्य हो जायँगे। यदि आप गाली का उत्तर गाली से देते हैं तो वही वस्तु जो आप उसमें बुरी समझते थे अब आप में भी आ गई। इससे यदि आप अपने को अपने वैरी से श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते हैं तो वैसा न कीजियेगा। यद्यपि आप कह सकते हैं, कि देखो यदि हम चींटी को भी दबाते हैं और वह समर्थ है तो काटती है। चीते, शेर, हाथी और बनैलों को जब हम मारते हैं तो वे कैसा हम सबों पर गोली लगने पर

भी वार करने के लिये दौड़ते हैं, परन्तु बड़प्पन तो इसमें है कि हम कुछ इन पशुओं से श्रेष्ठ हों। क्योंकि बदला लेना यदि तामसी है तो क्षमा करना सात्विक, यदि पहिला विष है तो दूसरा अमृत, यदि प्रथम नरक में गिराने वाला तो दूसरा स्वर्ग को पहुँचाने वाला, यदि एक आपत्ति तो दूसरा सम्पत्ति, यदि एक आत्मा को झुलसाता और जलाता तो दूसरा उसे सुखी और स्वस्थ करता, यदि प्रथम दुर्नाम का कारण है तो दूसरा अचल कीर्ति को देने में समर्थ है, ऐसे ही यदि एक राक्षसी तो दूसरा दैवी, और यदि एक पशु का धर्म है तो दूसरा मनुष्यता का प्रमाण है।

देखिये भगवान् रामचन्द्र ने कैकेयी के कुटिल कर्मों पर कुछ नहीं दीठ दिया यद्यपि सारा लोक उसके कुटिल कर्म पर छी छी करता था, किन्तु वह उसके बदले के लिये कभी स्वप्न में भी नहीं समझा, जिसका यह परिणाम हुआ कि आज तक हम सब उनके अचल कीर्त्ति को गाते हैं। यद्यपि वन में जब दोनों सिंह सरीखे सुन्दरी सीता के साथ विचरते थे तो लक्ष्मण कभी २ उन सबों के अनेक दुःखों को देखकर झुँजलाते और कैकेयी की निन्दा करते और कहते कि ऐसी क्रूरा और कुटिला तो इस विश्व में कदाचित् ही और कोई औरत होगी, जिसको हम सबों के बनवास देने में तथा अनेक दुःख भोगाने में परम सुख जान पड़ा हो, पर भगवान रामचन्द्र लक्ष्मण के क्रोध भरी बातों को शान्त करते और कहते कि यह सब विधि का प्रपञ्च है इसमें कैकेई का क्या दोष है?

बदला लेना हमारी समझ में महाघोर नरक है क्योंकि यदि वह उसी विचार में अहर्निशि रहेगा तो बहुधा क्रुद्धित दुःखी खिन्न और झुँझुलाता रहेगा तथा अपने उस चोट का स्मरण

करता रहेगा। बहुत से मूर्ख बदला रूपी क्रोधाग्नि को सदा सन्दीप्त रखने के लिये बाल बढाते हैं, नख बढाते हैं, बाम हाथ से भोजन करते हैं, कोई कम्बल पहिनते हैं, कोई साहेब मारे शोक के मोंछे नहीं ऐठते और पूछने पर कहते कि जब तक हम बदला नहीं ले लेंगे तब तक कैसे बाल और नख कटावें, या मूँछे सीधी करें। या थोडे में यों कहिये कि वे क्रोध वा बदला रूपी राक्षस के सुपुत्र होने में अपना बडा नाम समझते हैं, और अज्ञान से यह भी समझते हैं कि जब हम बदला चुका लेंगे तो सुखी हो जाँयगे यद्यपि प्रायः इसका उलटा ही हुआ करता है। बहुत से साहबों को देखा है कि बदला लेने के प्रयत्न ही में सर्वस्व नाश कर डाले हैं। क्योंकि बदला, सदा के लिये दुष्टों की सूची में सम्मिलित करने वाला और वर्तमान तथा भविष्य में अटल दुर्नाम का स्तम्भ खडा कर देने वाला है। देखिये यद्यपि चाणक्य ने महानन्द के नौ सन्तानों को अपनी कुटिल नोति की तीक्ष्ण धारा से नाश कर, चन्द्रगुप्त को गद्दी पर बैठा देने पर, अपने दरबार के निकाल दिये जाने के अपमान का बदला चुका लिया किन्तु चाणक्य की कुटिलता अद्यावधि कहावत सी हो गई है और उसका नाम मात्र ही दुष्ट नीति का बोधक हो गया है। इसी प्रकार एलकीबाइडीज जो सुकरातस ऐसे महात्मा का शिष्य और मित्र था, एक समय में सिसली को विजय करने भेजा गया, वहाँ से लौटने पर एथिन्स की महासभा (पारलियामेण्ट) में मूर्त्तिभङ्ग करने का अपराध उस पर लगाया गया जिसकी क्षमा मांगने के प्रत्युत वह एथिन्स के शत्रु स्पारटा के देश को भाग गया और उन सबों को उत्तेजित कर एथिन्स पर बदला लेने को चढ़ाई करके अपने देश के नाश का कारण हुआ। किन्तु अन्त में जहाँ शरण लिया

था और जिन शत्रुओं (स्पारटनस) को अपना मित्र बनाया था उन्हीं के हाथों से मृत्यु को प्राप्त होना पडा और बदला लेने से अपने देश का द्रोही और सुकरातस के नीचातिनीच शिष्यों में कहलाया।

इससे मनुष्य को चाहिये कि जब कोई हमारा किसी भाँति अपकार, हानि, वा दुर्नाम करे तो उस दुःख को पागलपन बेवकूफ़ी, नादानी और बेसमझी समझ दिल से भुलवा देना चाहिये, न कि उसी चोट का दिन रात स्मरण कर सदा ताजा बनाए रहें। बल्कि जैसे हम सब चोट पर मरहम पट्टी देकर उसे आराम कर देते हैं वैसा ही ज्ञान और विस्मरण से ऐसी चोटों को आराम कर देना चाहिये।

परमात्मा के भजने से जैसे सब दुःख शान्त हो जाते हैं वैसही यह भी धीरे २ नाश हो जाता है। ज्ञानी तो इसे बडे प्रयत्न से भूलने का प्रयास करता है जब यह देखता है कि क्रोध रूपी झंझापवन उसके ध्यान को उडा उडा कर फिर उसी देश में ले जाता है और वह अपने चित्त को उस पुनीत देश में किसी भाँति नहीं स्थित कर सकता, तो वह इस दुःख को अपनी सुख में बाधा तथा उस बडे सरकार के सुधि में भंग डालने वाला है समझ त्याग देते हैं।

सच तो यह है कि हम क्रोध त्याग कर विचार करें तो कोई हमारा ऐसा अपकार नहीं कर सकता जिस का उत्तर सेवाय बदला के और कोई नहीं हो या जो क्षमा के योग्य न हो और भली भाँति समझाने पर वही अपकार जो पहाड सा समझ पडता हो, क्षुद्र मृत्तिका का पिण्ड न समझ पडे, वा ऐसा कहें कि क्रोध में यह मन क्षुद्र से क्षुद्र अपकार वा हानि को बडा भारी कर देता है, वा यह कहें कि एक विन्दु

एक महात्मा उस तेज स्वरूप सकल गुणनिधान का ध्यान लगाये चले आ रहे थे। एक दुष्ट बालक ने उनकी चमकती खोपडी पर एक चपत दिया, और हँस कर कहने लगा कि स्वामी जी आप की सचिक्कण खोपडी खूब चपत जमाने के लायक है। बाबा जी ने उत्तर दिया कि भला, तेरी इच्छा तो पूरी हुई। दूसरे दिन बाबा जी जब भिक्षा के निमित्त शहर में गए तो एक लडके की लाश ले जाते हुए देखा। स्वामी जी ने पूछा कि यह किसको ले जाते हो, सबों के मुख से यह निकला कि यह वही लडका है जिसने कल्ह आप को धौल लगाया था और आज चल बसा।

पर हम यह न कहेंगे कि आप बदला लेना इसलिये छोडिये कि वह ईश्वर उससे लेगा परन्तु, इसलिये क्षमा करना चाहिये और बदले की बुद्धि त्याग करना चाहिए क्योंकि मनुष्य को पशु नहीं होना चाहिए।

यह बात देखी गई है कि क्षमा का साथी परमेश्वर है। कहते हैं कि अली के दुश्मन उनका एकबार सैकडों अवाच्य और अश्लील बचनों से सत्कार करने लगे। किस्सा कहता है कि कुछ देर अली ने बर्दाश्त किया पर जब इनसे न सहा गया और वे भी उन सब को गाली देने लगे, तो अली ने देखा कि उनके चारो ओर से दैवी दूत भागे चले जाते हैं। उन्होंने उनसे पूछा कि आप सब कौन हैं जो भागे चले जा रहे हैं तो उन सबों ने कहा कि "हम सब दैवी दूत हैं जो आप की रक्षा करते थे जब तक आप इन सब के बात को सहन करते थे किन्तु जब आप ने स्वयं ही उन सबों का जवाब गाली से देना प्रारम्भ किया तब हम सबों की आवश्यकता यहाँ नहीं रह गई।

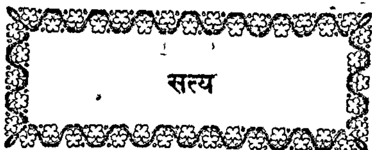
सुतराम् यह विचार कर कि अखिल जीवों की मात

भूमि एकही है, सबी एकही सरकार की प्रजा हैं, सबी आप के भाई के सदृश हैं अस्तु उनके कृत अपकार का क्षमा करना और प्रत्युपकार रूपी दुष्ट का दमन करना ही श्रेयस्कर है। और यदि उपनिषद् की निम्न श्रुति पर ध्यान दिया जाय तो वास्तव में कोई भी कारण बदला लेने का नहीं रह जाता यथा—

यस्मिन्सर्वाणिभूतानि अत्मैवाद्भूतविजानत ।
तत्र को मोह क शोक एकत्वंमनुपश्यतः ॥

सारांश यह कि जो सकल प्राणियों को अपने ही सा देखता है उसको कहाँ मोह और कहाँ शोक रह जाता है जब कि वह सब में एकता देखता है।





सत्य

"सत्यमेव जयते नानृतम्"



"सत्य ही की सदा विजय होती है न कि मिथ्या की।"

इस विश्व को कौन धारण करता है? सूर्य, चन्द्रमा, और सारे नक्षत्र किसके भय से अविचल पथ पर आरूढ हैं? क्षण के क्षण में अपनी चटुल ज्वाला में पञ्जरी छत कर, सकल लोक को भस्म करने में समर्थ अग्नि किस के भय से अपने उचित कर्म को करता है। इस सारे ब्रह्माण्ड में किस विजयी नृपति की पताका फहराती है? किसकी सनातन से विजय दुन्दुभी बजती चली आई है? किसका सिक्का इससारे लोक में चलता है? छिपे हुए झूठे और दाम्भिकों को अन्धकार से निकाल उनके सत्य स्वरूप को कौन प्रकट कर सकता है? कौन प्राणियों के कर्मों की तराजू को तौलता है? किसके भय से बड़े से बड़े नृपति, महिमावान् मनुष्य मारे त्रास के बेंत सा कॉपते हैं? कौन श्वान को सिंह और सिंह को श्वान करने में समर्थ है? वीर को कादर और कादर को वीर, धीर को अधीर और अधीर को धीर, कुरूप को रूपवान् और रूपवान् को नितान्त कुत्सित स्वरूप देने वाले और उपर्युक्त अनेक अद्भुत कार्य्य करने वाले भगवान सत्य हैं, जो परमात्मा के दूसरे स्वरूप हैं।

भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं कि जहां धर्म है वहाँ कृष्ण है और जहाँ कृष्ण हैं वहीं विजय है, और उसी प्रकार यदि यह कहा जाय कि जहाँ सत्य है वहाँ कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं वहाँ विजय है तो भी यथार्थ है।

पण्डित हकीम सुलेमान कहते हैं कि मनुष्य सत्य को इतना प्यार करता है कि यदि झूठ भी बोलने लगता है तो भी वह सत्य की चद्दर ओढ लेता है। क्योंकि वह मन में भली भाँति जानता है कि मिथ्या में किसी को विश्वास नहीं। तब भी मोह, लोभ, डर, मान, त्रास से प्राय मनुष्य रात्रि दिवस झूठ बोलता है, किन्तु बहुत से ऐसे हैं जिनको "झूठे ओढना, झूठ चबैना।"

स्वाच्छन्द-अमृत हठात्, बृटिश व्याघ्र के मुँह से निकाल पिलाने वाले वीरभद्र दयालु, सत्य प्रिय वाशिङ्गटन, जिसे अमेरिकन अब तक भी देवता सा पूजते हैं, अपने छोटे लड़के से पूछा कि किसने इस बहुमूल्य कमल को कुण्ड से तोड कर फेंक दिया ? तो बच्चे ने हाथ जोड प्रार्थना की कि यह अपराध मुझी से हुआ। इस सत्य उत्तर को सुन बुड्ढा वाशिङ्गटन बच्चे का गाल चूम कहने लगा कि बीसों बहुमूल्य कमलों का उजड जाना अच्छा है किन्तु लडके का मिथ्या बोलना हमें असह्य है। आज यदि तुम्हें मिथ्या का सस्कार पड़ जाता तो हम किसी लायक नहीं रह जाते, किन्तु इस तुम्हारे उत्तर को सुन अपने को पुनवान् मानता हूँ।

परन्तु अब लोक कुछ ऐसा अध पतित हो गया है या कौन जाने कलिकाल के कानून की यही शिक्षा है, कि यह नित्य प्रति असत्य प्रिय होता चला जा रहा है। बडे २ धार्मी और पण्डित लोग भी असत्य का कुछ ऐसा जाल रचने लगे

हैं कि सत्य विचारा लज्जित हो छिप जाता है। आज कल के न्यायालयों में प्राय: वही मनुष्य सब से श्रेष्ठ माना जाता है जो असत्य को सत्य साबित कर दे। पर कविजन कहते हैं कि सत्य का नाश त्रिकाल में भी नहीं होता, यदि आप उसे किसी तरह कुछ काल के लिए दबा भी लीजिये पर वह अपने समय में प्रगट हो मिथ्या का मुँह काला कर देता है। कविजन अपने बालक जन को सिखाते हैं कि यदि तू उस परम पुरुष से जिस से बिछुडा है मिलना चाहता है तो, सत्य की मुञ्जमेखला पहिन, विवेक अग्नि में अविद्या हवन कर, शास्त्र का प्रचण्ड दण्ड अपने कन्धे पर रख, श्रद्धा चन्दन सारे शरीर में लगा, उत्कंठा के सुन्दर सुवृहत रुद्राक्ष की माला को पहिन तब बेखटके तूँ परमात्मा के दर्बार में दाखिल हो सकता है।

यह ठीक कहा गया है कि परमात्मा का धाम सत्य रूपी अग्नि परिखा से आवेष्टित है, इसमें मिथ्या जाते ही भस्मीभूत हो जाती है, इसी से धर्मराज युधिष्ठिर ने जब स्वर्ग में प्रवेश किया तो इनकी कनिष्ठा अङ्गुली गिर गई।

सत्य व्रत के अवलम्बन से मनुष्य अनेक पापों से बचा रहता है, क्योंकि बिना मिथ्या के सहारे प्राय: कोई भी पाप नहीं हो सकता और यदि हो भी तो उसके छिपाने के अर्थ मिथ्या कथन करने की आवश्यकता होती है। झूठ बोलने वाला प्राय: चमगीदड की प्रकृति का होता है और सदा सत्य दिन से छिपना चाहता है। किसी कवि ने कहा है कि जब से हमने सत्य की शरण ले ली है कहीं अटकना नहीं पडा, और न किसी के समक्ष लज्जित होना पडा। धर्म परायण नृपति दशरथ ने सत्य ही के पाश में निबद्ध हो, प्राण से भी अधिक प्रियपुत्र को,

वनवास गमन का महाकष्ट देना स्वीकार किया, किन्तु सत्य के श्रेय मार्ग से वह विचलित नहीं हुए। वैसे ही हरिश्चन्द्र सत्य के पीछे निघृ ण चाण्डाल की निकृष्ट सेवा स्वीकार की, पर अपने प्रिय सत्य का साथ न छोड़ा जिस सात्विक अभीक्ष्ण सकल्प को देख विश्वामित्र का नितान्त निठुर पाषाण अन्तःकरण पिघल गया और उनकी हृदय पर्य्यन्त प्रलम्बायमान श्वेत दाढ़ी नीची हो गई। इसी से सत्य ज़िरावख़र के धारण करने वाले मनुष्य का, दुष्ट, पिशुन, मायावी और परोक्ष में मिथ्यावादी अपवाद की तीरें उसकी अन्तरात्मा वा कीर्त्ति स्तम्भ को नहीं वेध सकतीं, क्योंकि सत्य की छाती वज्र है और उसका स्तम्भ पाषाण से निर्मित है। सत्यवादी मौज में कहता है कि हमें भूखों मरने की आवश्यकता नहीं है, फल और फूल खा पेट के जलाने का कोई प्रयोजन नहीं है और न जिह्वा को पिपासा कुल करने की, यदि हम अपने सत्य पञ्चाग्नि का सेवन किया करें। किन्तु कलियुगी मन कहता है कि हम सत्य अग्नि की कसौटी पर न चढ़ेंगे, चाहे काँटे की कीलों पर सोवें। घास-पात खाकर इस जीवन को निर्वाह करेंगे पर अशरफी देने वाले सत्य की गठरी न उठावेंगे।

जब विपत्ति मनुष्य को घेर लेती है वा लोभ वेश्या दोनों हाथों से आह्वान करने लगती है, वा जीविका का प्रश्न पड़ जाता है अर्थात् जब हमारे सत्य कहने पर हमारे सत्व का नाश होता है वा जब युद्ध में विजय केवल असत्य आख्यान पर निर्भर करता है ऐसे समय पर सत्यत सत्यव्रत का निर्वाह करना अभीक्ष्ण सकल्प है।

मिल्टन जब इटली को जाने लगा तो उसके मित्रों ने जाते समय यह शिक्षा दी कि आप से यदि वहाँ कोई पूँछे कि आप

केथोलिक हैं या प्रोटेस्टेन्ट तो आप केथलिक ही बताइयेगा नहीं तो प्राणों को हाथ से धो बैठियेगा और कुछ करते न बन पडेगा परन्तु जब मिल्टन इटली में पहुँचा और लोगों ने उससे यह पूछा कि ह्वे प्रोटेसटेन्ट हैं या केथलिक तो भरी सभा में उसने झट कह दिया कि वह प्रोटेसटेन्ट था, जिस उत्तर को सुन सब अचम्भित हो आश्चर्यमय दीठ से देखने लगे और किसी की हिम्मत हाथ उठाने की नहीं पडी। इसी सत्य के तेज के भय से आप देखते हैं कि महर्षियों के आश्रम में हिंसक जीव अपना सहज धर्म छोड मृगशावक से विचरते थे तो फिर चैतन्य की कौन कथा है?

बुद्धिमान बेकन अपने सत्य के लेख में कहता है "सत्य क्या है? हँस कर पाइलट ने पूछा और उत्तर के लिए नहीं ठहरा" अर्थात् सत्य को हम सब कुछ ऐसा तुच्छ और क्लीव धर्म समझते हैं कि उसके अमृतमय परिणाम को कुछ नहीं समझते और तुरन्त ही काम, क्रोध, लोभ वा भय से असत्य बोल कर सत्य रूपी धर्म का गला घोट देते है और यदि वह क्षण भर भी समझें कि सत्य बोलने का क्या परिणाम होगा तो निश्चय वह असत्य न बोलें। परन्तु बकौल बेकन के कि इसी लिये वह उत्तर ही नहीं सुना चाहता। बात यह है कि जितने पाप कर्म हैं, उन्हें यह मन बहुत विचारना नहीं पसन्द करता, क्योंकि डरता है कि विवेक और बुद्धि उसे डण्डा लगाएँगे इससे जितनी जल्दी बनती है उतनी करता है। इसी से हम सब को किसी कर्म के आरम्भ के पूर्व उसके हिताहित का विचार कर लेना चाहिये और "सहसा विदधीत न क्रियां?" अर्थात् किसी कार्य्य को सहसा बिना विचारे नहीं करना चाहिये। शेक्सपियर इसी बात को ऐसे कहता है, जब किसी मित्र ने

अपने मित्र से पूँछा कि ऐसा नितान्त असत्य कैसे करोगे और अपने विवेक को कहाँ छिपाओगे ? तो उसने हँस कर कहा कि ऐसे यदि बीस विवेक हों तो स्लीपर की तरह पहिन डालूँ।

यह सत्य है कि मौन व्रत से सत्यव्रत क्लिष्टतर है। मौन व्रत चाहे निर्वाह हो भी जाय परन्तु सत्य व्रत का पूर्ण रूप से निर्वाह तो बहुत ही क्लिष्ट है। शास्त्रकार कहते हैं कि जो १२ वर्ष सत्य व्रत को निर्वाह कर डालेगा उसकी वाणी निश्चय वज्र हो जायगी अर्थात् जो कुछ कि उसके मुख से निकलता है तद्वत् वैसा ही होगा भी। इतना ही नहीं किन्तु जो मनुष्य सत्य व्रत को अवलम्बन करता है उसके सत्व की सशुद्धि से उसकी आत्मा को ज्ञान हो जाता है। यदि एक सन्यास सा योग है तो दूसरा जनक का सा ज्ञान है, जो जिह्वा से सब कुछ कहते हुए भी, कुछ नहीं कहता।

भगवान् कृष्ण गीता में वाक्य सयम के विषय में कहते हैं कि "अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रियहित च यत्।" अर्थात् बोलना ऐसा हो जो सत्य प्रिय, और हितकारक हो। तात्पर्य यह कि यदि सत्य विष सा हो और परम हितकारी क्यों न हो उसे नहीं बोलना चाहिये क्योंकि ऐसे जलते हुए हितकारी सत्य वाक्य को कोई न सुनेगा। इसी से मित्र और पुस्तकों के उपदेश को हम सुन सकते हैं क्योंकि वे सत्य कहते हुए भी अप्रिय नहीं बोलते और हितकारी वचन कहते हुए भी हृदय को नहीं जलाते। मनुभगवान् कहते हैं —

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्।
नब्रूयात सत्यमप्रियं ॥

सत्यवादी मनुष्य का हृदय तो तपोभूमि सा है, जहाँ माया



श्रीसुदामाजी



यद्यपि उग्र ज्येष्ठ जगत को अग्निकुण्ड में तप्त कर रहा था पर पश्चिमानिल तब भी न तृप्त हो धौंकनी सा जगत को धौंक कर लोह सा लाल कर रहा था और कारखाने के स्वामी सूर्य्य ने घटों दिन और बढ़ा दिया। ऐसे समय में जब कि छाँह भी छाँह ढूँढने लगती है, और जीव जन्तु उसको खोजने लगते हैं, नीच उदर के कारण तपस्वी सुदामाजी भिक्षा की खोज में दूर निकल गए थे। धूप के सताए पसीना से सारा मुख भिगाये, पिपासा से व्याकुल मध्याह्न में घर लौटे। उनकी ब्राह्मणी यह देख दुखी हो कहने लगी कि यद्यपि आप चारो शास्त्र के वेत्ता हैं, सदाचरण के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, पर तब भी न जानें क्या विधाता हम सब पर ऐसा रूठा रहता है कि दरिद्रता को छोड इस कुटी को सम्पत्ति ने कभी नहीं देखा। क्या शास्त्री और तपस्वी होने का यही परिणाम है? सुदामाजी विना उत्तर दिए जो कुछ लाए थे पत्नी के समक्ष रख स्वयं बैठ गए और उनकी सहचारिणी पंखा झलने लगी। ब्राह्मणी दरिद्रता के कष्ट को सहते सहते व्याकुल हो गई थी, इससे रूठी ,उदास मन पडी

थी, सुदामाजी यह देख कहने लगे कि सब वस्तुओं का काल नियत रहता है वैसा ही हम सब के दारिद्र का समय भी विधि ने निश्चय नियत किया होगा। नित्य ऐसा ही न रहेगा। समय बदलने पर हम सब भी सुखी होंगे और फिर तुम जितना गहना चाहना पहिरना, और रेशम को छोड सूती कपडा न पहिनना, जो चाहना सौख्य करना। यह सुन सुदामा की स्त्री नैराश्य की आह भर कहने लगी कि ऐसे दिन भाग्य में नहीं लिखे हैं। यह कह वह रसोंई बनाने लगी और उस समय उसे यह समझ पडा कि यदि हमारे पति कहीं अपने मित्र कृष्ण के यहाँ द्वारका जाते तो हम सब का कष्ट दूर हो जाता और कुछ दिन चैन से कटता। पर ये महात्मा तो ऐसे लज्जावान है कि काहे को कहना मानेंगे। उस दिन बड़े प्रेम से रसोंई बनाकर खिलाया और समय जोहने लगी कि जब पति प्रसन्न और सुमनस हो बैठें उस समय इस बात को छेड़।

निशानाथ पूर्व दिशा से धूलि धूसरित धूलिमय आकाश में लुटे लुटाए से मुँ छिपाए चले जा रहे थे, सारा विश्व दिन भर का सताया सुखी हो रहा था, ऐसे समय में सुदामा अपने छात्रों को पढ़ा लिखा शय्या पर लेटे, प्रसन्न मन आकाश को देख रहे थे, सुअवसर जान पत्नी निकट आ मुसकुरा कर कहने लगी कि तुम प्राय. कहा करते हो कि कृष्ण तुम्हारे परम मित्र हैं, तुम उनके बडे प्रिय सखाओं में हो, और सुनते हैं कि कृष्ण बादशाहों के बनाने और बिगाडने वाले हैं, द्वारका के अधिपति हैं, सुनते हैं कि इस समय द्वारका के भिखमङ्गे यहाँ के सम्पन्नों से भले हैं, वहाँ यदि जाते तो निश्चय यह दु.ख कटता नहीं तो हमारे तो नाकोदम आ गया है, यह हमें निश्चय है कि वे पूर्व प्रीति को न भूलेंगे? सम्पत्ति में मित्र को न पहिचाने

लगे, सुदामाजी भी एक गांव की ओर पहुँच रहे थे। राह में घास छीलता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण इन्हें देख कहने लगा कि अब तो रात्रि आ गई इससे यदि आप कृपा करें तो हमारी कुटी में वस कर उसे पुनीत और सानन्द करें। "इससे अच्छी और क्या बात है" सुदामाजी ने कहा और यह कह दोनो घर की ओर चले। घर पहुँच कर सुदामाजी की पूजा विधिवत् इस महात्मा कुटुम्बी ने की। रात्रि को व्यालू कर जब स्वस्थ चित्त सुदामा खट्वारूढ़ हुए तो गृहस्थ महाशय आप आ बैठे और लडके से कहा कि महात्मा जी थक गये हैं इनका पैर दवा। यह सुन लडका सुदामा के पैर दवाने लगा तो पिताजी ने महात्मा सुदामा से पूछा कि आप केवल अपने देश के प्राणियों को कृतार्थ करने चले हैं या किसी महापुरुष से मिलने जा रहे हैं, यदि कुछ हानि न समझिये तो बताइये। सुदामा मारे लज्जा के कुछ काल तक चुप रहे और तब बोले कि एक हमारे प्राण से भी अधिक प्रिय मित्र हैं उन्हीं के दर्शनार्थ जाते हैं। बुद्धिमान ब्राह्मण ने फिर कुछ न पूछा। सुदामा जी आकाश मण्डल को मण्डित करने वाले मयक की महिमा को मन में सराहते सराहते सो गये और देखा कि बहुत दिन के बिछुडे प्यारे कृष्ण समक्ष खड़े हैं और कहते हैं कि भला किया जो लज्जा छोड हमारे पास चले आये। मित्र से क्या लज्जा! आओ रथ पर चढो और क्षण के क्षण में हम दोनों द्वारिका पहुँचें। वे तो कृष्ण को देख निहाल हो गये और उस असीम प्रसन्नता में अश्रु धाराओं से अपने हृद्गत भावनाओं को प्रगट करने के सिवाय और कुछ कह नहीं सके। जब प्रेम से विवश हो चरणों पर गिरने ही को थे कि भगवान् ने उन्हें उठाकर वक्षस्थल में लगाया और हाथ पकड रथ पर बैठा लिया।

बैठते ही रथ वायुयान सा आकाश मार्ग से चला जिसे देख सुदामा घवडाते और वार वार नादान वच्चा से कृष्ण से पूछते कि कहीं गिर न पडें। भगवान अपने सखा के चित्त की चिंता को दूर करने के हेतु, उन स्थानों पर उनका ध्यान आकर्षित कर चले जिनको रथ क्षण के क्षण में छोडता चला जाता था। देखिये यह तीर्थराज प्रयाग अपनी महिमा को पताकाओं के मिष घोषणा करता छूटता जाता है। वह भगवान रामचन्द्र के रहने से पुनीत चित्रकूट के पर्वत की शृङ्खलाएँ अब भी कैसी मनोहर देख पड रही है, यह इतराती गोदावरी अपने रूप के गर्व में अनेक सगीत अपनी सफरी सहेलियो को सुनाती चली जा रही है। देखिये जगत पिता ब्रह्मा का पुष्कर तीर्थ यही है और यह अपने स्वजातीय महामुनि कपिल का आश्रम है जहाँ सगर के सहस्र सूनु देखते ही देखते भस्म हो गये। ये अर्बुद गिरि की अपूर्व शृङ्खलायें देदीप्यमान देख पड रही हैं इस प्रकार अनेक मन्दिर झील और निर्झर की अलौकिक शोभा दिखाते हुए, एकाएक स्थान पर विमान को रोक कर कहा कि आप इस वृक्ष के नीचे विश्राम कीजिये और स्वयम् रथ सहित अन्तरध्यान हो गये।

सुदामा जी को प्रात काल नेत्र खोलते ही दिशा भ्रम हो गया क्योकि भगवान भास्कर से भी अधिक भासमान द्वारिका पुरी द्वितीय प्राची दिशा सी आकाश मडल में देदीप्यमान दिखाई पडी, जिसके रूप और लावण्य की कथा महोदधि रात दिन गाया करता था। तटस्थ समुद्र में अपने रूप को अवलोकन कर रूपगर्विता नायिका सी द्वारिका पुरी ऐसी जान पडती थी कि मानो अमरावती मृत्युलोक में आकर समुद्र की असीम शोभा देख रह गई। वा कौन जाने यह नगरी सिद्धगणों की

सिद्धि का सुन्दर और स्थूल परिणाम है या वसुमती के प्रेम में कुवेर का दिया हुआ मुकुट है, या भगवती लक्ष्मी के निवास के लिये रत्नाकर का बनाया रत्नगर है। यह नगरी पृथ्वी पर स्थित हुए भी गगनस्पर्शी है, राजमन्दिर होते हुए भी आश्रम है, लौकिक होते हुए भी अलौकिक, जातरूप से रजित होते हुए भी निर्लोभ, राजसी होते हुए भी विरागी और क्षत्रीपुरी होते हुए भी ब्रह्मपुरी है। विचारे सुदामा इस अपूर्व दृश्य को देख विचारने लगे कि यह गन्धर्वपुरी को अथवा रात्रीय स्वप्न के अवशिष्ट अंश को हमारी आँखें देख रही हैं। सुना था कि द्वारिका बडी दूर है तो भला हम कैसे एक रात में इतनी दूर चले आये। निश्चय जो हमने स्वप्न में देखा था वह सत्य था। हम रात्रि भर कृष्ण के साथ रथ पर थे। हमें जब जाडा लगा तो उन्होंने उपर्णा ओढ़ा दिया था और बहुत से तीर्थों को दिखाया था, वह सब सत्य था। इससे यह भी निश्चय होता है कि कृष्ण ने हमें विस्मृत न किया होगा। अज्ञात व्यक्ति के समान हमारा निरादर न करेंगे। निश्चय देखते ही उठ के दौडेंगे और हमारी विपत्ति का हाल भी पूछेंगे, क्योंकि छोटे जन धन पाके बौरा जाते हैं परन्तु महात्माजन सपत्ति मद से ऐसे मूर्छित नहीं होते कि अपने पूर्व मित्रों को भूल जाँय। किन्तु सुनते हैं कि नृपतियों के मुकुट से कृष्ण के पाँव रंजित होते हैं ऐसी अवस्था में हम से दरिद्रों की कैसे पूछ होगी। उक्त रीति से मन की मौज में गोता खाते राजद्वार पर पहुँचे। रोके जाने पर सुदामा जी ने कहा कि यदि तुम कृष्ण से कह दो कि सुदामा आया है, तो हम तुम सबों के बडे उपकृत होंगे। उन सभों ने इन्हें ब्रजवासी जान तुरन्त भगवान से कहा कि सुदामा द्वार पर खडे हैं। सुनते ही सुदा

होने के लिए तीनों लोक के ठाकुर दौड़े। द्वार पर देखा कि सन्देह दोला में दोलायमान दरिद्र सुदामा गढ़ी के द्वार पर खड़े हैं जिनकी दरिद्रता से शरीर अत्यन्त कृश, मिरजई फटी और पाग को सुधार के बाँधने पर भी जिसमेंसे चिथड़ों के टुकड़े हठात् चारों ओर लटक रहे हैं। इन्हें देख, सुनते हैं, भगवान् दयार्द्र हो रोने लगे और कविकुलवार्ता है कि "आँसुन पाँव पखारे।" तत्पश्चात् हाथ पकड़ अपने शरीर में लगा कर मानो सच योगिराज सा बना दिया। क्योंकि उनकी आत्मा को शाश्वत आनन्द समुद्र में नहलाने, और रोम रोम में आनन्द विद्युत को चमकाने लगे। सुदामा को छाती से लगा लिया। सुदामा जी तो मारे आनन्द के जड़ हो गये, अश्रु भरी आँखों से एक बार कृष्ण को देखा और गद्गद् हो गये।

निदान द्वारिकाधीश अपने मित्र का हाथ पकड़ उन्हें रनिवास में ले गये। सुदामा को यह जान पड़ा कि मित्र ने सब अप्सराओं को इन्द्र से छीन इसी ठौर ला बसाया है, इस से पूछने लगे कि ये सब तुम्हारी रानियाँ हैं, वा कहा युद्ध में इन सब को हर लाये हो। तुम तो बड़े विचित्र व्यक्ति हो, जहाँ जाते हो वहीं तुम्हें सहस्रों रानियाँ घेर लेती हैं, यह सुन, भगवान कृष्ण हँसने लगे और उत्तर दिया कि कुछ तो पाणिगृहीता हैं, और कुछ युद्ध में प्राप्त हुई हैं, यों ही भाग्यवश एकत्र हुई हैं।

कहते हैं कि कृष्ण की आज्ञा लेकर रानियाँ एक एक कर अतिथि के पैर पखार कर गन्ध पुष्प अरगजा लेपन आदि षोडषाङ्ग सविधि सपर्य्या कर चलीं।

चार पाँच रानियों का उपचार तो ब्राह्मण ने बड़े आदर पूर्वक ग्रहण किया किन्तु उसके पश्चात् प्रिय सखा से मुसकुरा कर कहने लगे कि यदि आपकी सब रानियों ने ऐसा ही

सत्कार किया तो हमारा काम तमाम हो जायगा। हम तो दुर्बल तनु हैं, इतनी रानियों का मान सत्कार और आतिथेय भी तुम्हीं लेने में समर्थ हो, हमारे मान का यह सत्कार नहीं। देखो हमें तो अभी ही कॅपकॅपी छूट गई। श्री कृष्ण ने आज्ञा की कि एक ही पात्र में थोडा थोडा जल ले सब लोग डाल दो और एक ही रानी के आतिथेय से मित्र सतुष्ट हो जॉयगे, और अवशिष्ट जल सारे महल में छिडक दो।

दोपहर को भोजन और विश्राम कर दोनों मित्र समुद्र के सन्निकट पहुँचे। दिन भर की यात्रा से शिथिल तनु, पश्चिम समुद्र, तट पर, सुखासीन हो रहा था। प्रचण्ड वायु शान्त न हो बालकों सा समुद्र की लहरों से क्रीडा कर रहा था। कन्धे पर लाठी लिए प्रसन्न मन गडेरिया 'मैं मैं' गाती हुई भेडों को एकट्ठा कर रहा था। समुद्र की चचल मछलियॉ चलते हुए आकाश में उडती हुई, नक्षत्र सी जान पडती थीं। सभी जीव जन्तु प्रसन्न देख पडते थे। समुद्र पर्वतों की चट्टानों पर सिर को पटकता पर तो भी ज्ञान न प्राप्त कर फेनों के मिस घर लौटता था। ऐसे समय में एक चट्टान पर बैठे, ये दोनों मित्र अपूर्व समुद्र की शोभा देख रहे थे। सुदामा ने कहा—"मित्र द्वारिका को पाकर निश्चय तुम व्रज को भूल गये हो, क्योंकि ऐसी सम्पत्ति ऐसी समृद्धि युक्त राज्य पाकर उसे भूल जाना कोई आश्चर्य नहीं। यह सुन कृष्ण की आँखो में आँसू भर आए और वे कहने लगे कि "भला और कोई कहे तो कहे, मित्र तुम कैसे ऐसा कहते हो, तुम जानते हो कि व्रज भूमि हमें कितनी प्यारी है। वहाँ के वृक्ष, मनुष्य, स्नेह भक्ति सम्पन्न गोपियाँ, हमें कभी विस्मृत नहीं हो सकती हे। द्वारिका अच्छी है, भली है, सोने से जड़ी हे, पर तो भी स्निग्ध कालिन्दी के कूलों में बाल

गोपालों के साथ गोचारण और अनेक क्रीडाएँ, जसुदा जी के अनेक प्यार के व्यवहार, भला हम कभी भूल सकते हैं ?" "हे मित्र फिर आप व्रज को क्यों नहीं लौटते ?" श्रीकृष्ण ने कहा क्योंकि हम व्रज से फिर न लौट सकेंगे। सच तो यह है कि मित्र, व्रजगोपिकाओं सा प्रेम वा भक्ति और कहीं देखने में कभी न आवेगा। ज्ञानी पंडित ऊधो जब मधुपुरी से संदेश लेकर व्रज को पहुँचे तो गोपियों के प्रेम की तीव्र धारा में एक क्षण न ठहर सके, उनके ज्ञान की नौका डूब गई और वे स्वयं प्रेम की भौंर में डूबते उतराते मधुपुरी में पुन आ गये।"

तुम कभी मधुपुरी जाते हो ? कभी भगवती जसुमति के गृह जा आतिथ्य लेते हो ? भला वृषभान की दुलारी राधा की अब क्या दशा है ? . हम सा निठुर और कोई नहीं है कभी ललिता को देखा था ? गोवर्धन की तरहटी की सैर कभी करते हो ? प्रिय मित्र व्रज की लता पता भी हमें एक एक कर याद आती हैं।' सुदामाजी कहने लगे "मित्र तुम्हारे बिना सब व्रज सूना हो गया, वहाँ जाने पर सुख के स्थान में दुख होता है, सब यही कहते हैं कि "गोकुल तजी गोपाल ने अब बस रहे अहीर।" और हम सदा तुम्हारे साथ के विचरने वाले थे, इस से हमें तो उन स्थानों में तुम्हीं याद आते हो और सत्य ही कृष्ण, उस समय छाती फट कर दो टुकड़ा हो जाती है। कैसे कोई तुम्हारे बिना उन्हें देख भी सकता है, आनन्द उठाना तो दूर रहा।" योंही बचपन की अनेक बातें करते हुए रात्रि हो गई। और जगत के ठाकुर और सुदामा जी नहा धोकर चले।

समुद्र की हवा खाते हुए, सारे महोदधि को अपनी चक्षुओं से चूमते और उसके कृपण अन्त करण को महात्मा सा कुछ काल के लिये उज्वल करते हुए भगवान चन्द्रमा आकाश

मण्डल में विराजमान हुए। स्वच्छ वाष्प पूर्ण मन्द समुद्र समीर प्रत्येक झोके से सुदामा के अन्तःकरण को प्रफुल्लित कर रहा था। राज द्वार पर सायकाल की नौवत झर रही थी। श्याम कल्यान ठाकुर जी के आरती का समय सूचित कर रहा था। सायकालीन दीप भगवान के अनन्त कीर्ति स्तम्भ से विराजमान थे। सुदामा द्वारिका की रात्रि की शोभा निरख सत्यत, स्तम्भित हो गए। हाट की चहल पहल और साफ सुथरे नागरिकों से भरी वीथी को निहार और द्वारिका की सजावट देख कहने लगे कि "मित्र द्वारिका को आपने आनन्द पुरी कर डाला। यह तो जान पड़ती है कि इस लोक में केवल उत्सव के हेतु निर्माण की गई है, और सच तो यह है कि मित्र, जहाँ आपके चरण सरोज पधारेंगे वहीं द्वारिका, वहीं मधुपुरी और वहीं व्रज है।" मित्र की बातें समाप्त भी नहीं हुई थीं कि राज-सदन के समक्ष रथ खड़ा हुआ और दोनों व्यक्ति घर में पधारे।

राजभवन कर्पूर की रसीली रोशनी से चमक रहा था, सुदामा जी की पलङ्ग छत पर बड़ी तैयारी से बिछी थी और उसी के बगल में भगवान कृष्ण की भी लगी थी। व्यालु कर उस रात्रि भर दोनों मित्र अपने बचपन की अनेक क्रीडाओं की बातें करते रह गये। कभी यशोदा और नन्द बाबा के अनेक प्यार और ताडना, कभी महारास के महा-विनोद की बरजोरी कभी सेवाकुञ्ज के सहस्रों सुख के सकीर्तन के सुख में ऐसे मुग्ध और मग्न हो गए कि रुक्मिणी को राधा और रानिओं को गोपिकाओं के नाम से बुलाने लगे। लोग कहते हैं कि जितने दिन सुदामा द्वारिका में रहे, द्वारिका व्रज सरीखी हो गई, वही सेज वही आनन्द, वही सब रसीली बातें, और रानियाँ सुदामा के पैरों पड़ती थीं कि वे कुछ काल के लिये द्वारिका

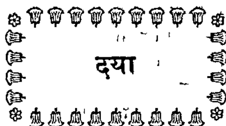
ही में रहें, पर ब्राह्मणी नित्य घर बैठी इनके देखने के लिए आह मारती थी, इससे सुदामाजी ठहर न सके।

सुदामा के दिन द्वारिका में जितने क्षण बीते स्वर्ग या ब्रह्मपुरी के आनन्द के समान थे। सुख की गठरियाँ घड़ी घड़ी से आतीं थीं और वे सम्भाल भी नहीं सकते थे। जब कभी अकेले बैठते तो कहते कि सुदामा तुझे अब अपनी झोपड़ी कैसी लगेगी, दरिद्र की गुदड़ी, शरीर को कितनी चुभेगी। ऐसे ठौर तुम क्यों आये? निश्चय भूल हुई। देखो यहाँ के रहने से हम अपनी दरिद्रता को भूल गये।

आज सुदामा घर लौटने वाले हैं इससे बड़े प्रातःकाल सन्ध्या कर, कृष्ण के समक्ष बिदा माँगने गए और वे हँस कर कहने लगे कि हाँ आप तुरन्त जाइये, मेरी भावज बड़ी घबड़ाती होगी। जब चलते समय सुदामा को एक बराटिका भी नहीं दी तो किसी भाँति प्रसन्न वदन राज सदन से निकले। जब द्वार पर आए तो उनसे कंचुकी ने उनका वेष जो कुछ था रखा लिया। सुदामा यह देख दुखी द्वारिका से चले। इन्हीं से मेरी स्त्री चाहती थी कि दारिद्र दूर हो। जो कुछ आभूपण भी दिया था उसे भी चलते समय उतरवा लिया, एक बराटिका भी हाथ पर न रक्खा। ऐसे कृष्ण से धन और सम्पत्ति की आकांक्षा करती थी। हम तो इन्हें लड़कपन से जानते हैं कि सिवाय नटखट के और कुछ नहीं, पर क्या करें, उसने किसी भाँति न माना और हमें भेज करके छोड़ा। पर हम भी कृष्ण को ऐसा नहीं समझते थे, हम अपनी जिह्वा को क्या करें जो कृष्ण की सदा प्रशंसा किया करती थी, उन्हें परम उदारचरित्र बताती थी; मित्र छोड़ कर दूसरा शब्द ही नहीं प्रयोग किया करती थी तभी तो स्त्री को उनपर ऐसा दृढ़

भगवती लक्ष्मी इस में पधारीं। उस दिन से तो तुम्हारे बिना मेरा जी घबड़ाता था, यही मन कहे कि हम भी उड़ चलें और द्वारिका से तुम्हें घसीट लावें क्योंकि तुम्हारे बिना तो जीवन अपार हो गया था। सुदामा जी लगे कृतज्ञता के अश्रु बहाने। उन्हें कुछ न बोलते देख सुदामा की स्त्री कहने लगी कि आप तो यही सब देख अचम्भित से हो गये हैं आपके मित्र के लिये यह सब करना कौन बड़ी बात है? उन्हें क्या दुस्तर है? क्षण के क्षण में सब कुछ कर सकते हैं। इसी से तो मैंने आपको उनके यहाँ भेजा था जिसमें यह दरिद्रता सदा के लिये नाश हो जाय। संसारी राजा शाश्वत् सुख या संपत्ति नहीं दे सकता किन्तु ये तो सभी कुछ दे सकते हैं। आपके जाते ही मैं मन में सुखी हो गई, ऐसा उनका विचित्र प्रभाव है। किन्तु जैसे मनुष्य विपत्ति के समय अपने सुहृदों को स्मरण करता है वैसे ही सम्पत्ति में भी, क्योंकि हमने देखा कि यह सब कुछ तुम्हारे बिना भला नहीं जान पड़ता था। सुदामा जी बिना उत्तर दिये हुए, कृष्ण कृष्ण कह पुकारने लगे। लोग कहते हैं कि कुछ काल के लिये उन्हें समाधि लग गई।





दया

भक्तान्हि भगवानेव गतो भेद परस्परम् ।
महत्त्यागदया युक्त सत्यभामा समाश्रित ॥



दया की सब से आधिक्य परमात्मा परब्रह्म में है, ऐसा कहा गया है। जब सब दरबारों से मनुष्य निकाल दिया जाता है और उसकी प्रार्थनायें सब तरफ से नामंजूर की जाती हैं तो दया सिरिश्तेदार कायदे से उसकी प्रार्थना पेश कर मंजूरी करता, प्राय कर्मप्रधान कानून राक्षस की खिल्लियाँ उड़ाता है। आकाश से उतरते हुए दुष्यन्त कतिपय काल के वियोग से वसुमती को देखा तो विचक्षण मातलि से कहते हैं कि यह संसार भगवान् के परम औदार्य से ऐसा रम्य है।

अग्नि कुण्ड से निकला हुआ, बड़े बड़े दाँत वाला चक्षुओं से आग उगलता हुआ शैतान पृथ्वी और मनुष्य को देख कहता है कि यह पृथ्वी और उसके निवासी, उसको सब से ज्यादा प्यारे हैं इससे इनको नष्ट, छिन्न और खूब तंग करना, यह सब हम सबों का काम रहेगा? जिसमें देख २ ईश्वर जो इनपर अत्यन्त दया विस्तार करता है दुखी हो। भगवती उपनिषद्

देवी कहती है कि जब आप (ईश्वर) आनन्द दया वारि बरसते हैं तब यह लोक सुखी और सुमनस होता है, हम सब ऐसे प्रसन्न और सुखी न होते और नित्य नए उत्सव का घर यह ससार न होता, यदि कृपानिधान ईश्वर में कृपा की अधिकाई न होती। दया मिश्रित न्याय यदि न होती तो मेरी समझ में कोई भी उस लोक तक न पहुँच सकता, क्योकि मनुष्य विचारा तो प्राय. कर्म के आधीन है। चञ्चल प्रमादी प्रबल मन अश्व पर आरूढ है, अहकार, मोह, अविद्या मेघ के निबड अन्धकार से उसका मार्ग अगोचर है और विषय जङ्गल ऐसा घना है कि यदि कोई हिम्मत करे कि बिना उसकी कृपा के किसी भाँति उसमें से सकुशल अक्षत पार हो जाय तो असम्भव है। कर्म पर निर्भर रहने वाला मनुष्य एक प्रकार का दरिद्र है क्योंकि वह अपना सहायक कर्म को मानता है न कि ईश्वर को। ज्ञानी बुद्ध कर्म की प्रशसा में कहते कहते यहाँ तक कह देते है कि कर्म ही, हम लोगों को राजा और रङ्क सुखी वा दुखी बना सकता है और तुलसीदास जी भी कर्म के त्रास से कहते है कि "कर्म प्रधान विश्व करि राखा' पर भक्त-जन तथा परमात्मा के अन्वेषण करने हारे, नित्य अन्त करण महोदधि में आत्मा-मोती के अर्थ डुब्बी लगाने वाले तथा च कर्मयोग से शान्त अकिञ्चन-मन वाले योगी जन तथा वे जिनके हृदय, भक्ति-सलिल से आवारि पूर्ण हो रहे हैं और पल २ में भगवत् भक्ति रूपी मौजें आँखों से प्रगट हो रही हैं, यदि इनसे ईश्वर से मिलने और निस्तार होने की कथा, पूछिये तो ये सब कहते हैं कि जब भगवान की दया पूर्वानिल, विवेक पाल को सनाथ करती है और श्रद्धा और नियम से शरीर नौका सम्पन्न होती है तब ही वह शाश्वत् आनन्द रूपी सागर को पहुँचती

है इसी से विचक्षणजन इस सकल लोक के मालिक को करुणालय कृपासिन्धु दीनबन्धु दीनानाथ विशेषणों के प्रयोग से अपनी कृतज्ञता प्रकाश करते हैं। वह परमात्मा कैसा दयालु है इसका पता, उन लोगों के देखने से चलता है जो जागृत अवस्था में केवल दुष्कर्म ही का सञ्चय कर रहे हैं, जो क्षण भर भी यह नहीं समझते कि इन सब कर्मों का हमें एक २ करके याथातथ्य बदला चुकाना पड़ेगा। ऐसे जन प्राय आपको वेश्या वीथियों में, पुलिस की नौकरी में और वैद्यों में मिलेंगे। यदि आपकी चलती तो शायद उन्हें भोजन के लाले पड़ जाते किन्तु वह दयानिधि ईश्वर उन्हें भी बिना रोटी नहीं रखता।

इस प्रजा का परम सुहृद, सतत् हित चिन्तक परमात्मा है। जो उसकी प्रजा पर दया करता है वह उसके दया का पात्र है, जो प्रजा का वैरी है वह ईश्वर का भी वैरी है। क्रूर मनुष्य सकल दिशाओं को देखता है कि वह तलवार लिए उनको मारने को खड़ी है। सैकड़ों मनुष्य खाने के लिये बैठे हैं पर तो भी मेकबेथ (Macbeth) देखता है कि बेंको (Banquo) उसे प्रत्यक्ष अपनी दाढ़ी हिला हिला कर उलहना दे रहा है। ऐसे ही बहुत से दृष्टान्त हैं जिनके देखने और सुनने से यह प्रत्यक्ष होता है कि क्रूर मनुष्यों से मनुष्य, पशु, पक्षी, सब उनसे बदला लेने को तत्पर रहते हैं। एक पुरातन बादशाह अपने भोजन के सौख्य में नित्य प्रति बीसों जानवरों को मरवाता था। कहते हैं कि जब वह मरा तो सब पशुओं की सभा बैठी ताकि उसको समुचित दण्ड दें। वादा विवाद हो चला कि राजा को पहले कौन दण्ड दे। महात्मा शूकर घुड़क कर क्रोध पूर्वक बोला तुम लोग नहीं जानते कि कितना दुःख हमारे शरीर ने और हमारे परिवार ने इसके कारण झेला है। हमें मारने से आगे १०००

कोडा पिटवाता था जिसमें हमारा माँस खस्ता हो जाय। इससे इसको भी धुर्रा पिटवाया जाय और इतनी देर तक पिटवाना चाहिये जब तक कि इसका सारी शरीर फूल न आवे। क्रोध से लाल २ दीर्घ नेत्र निकाले वृषभराज ने कहा कि यह दुष्ट मेरे बच्चों को रोज लम्बे सूजा से बगल में छिदवाता था जिसमें कि उनका गोश्त सुफेद हो जाय। बकरी ने कहा कि जैसे हमारे छोटे छोटे सन्तानों को हमारे देखते ही मरवा डालता था, वैसे ही इसके देखते २ इसके सब सन्तानों को मरवा डालना चाहिए। पुरातन कानून यह था कि आँख के लिये आँख, कान के लिये कान और दाँत के लिये दाँत, यानी जो अवयव किसी का भग कीजिएगा वही अवयव आपका भी भग किया जावेगा। या जैसा और जिस प्रकार दुःख आप किसी को कर्म वा वचन से देंगे, वह बीज सा समय क्षेत्र में बो उठता है और समय पाकर वैसा ही फल देता है इससे जो मनुष्य दया करता है वह अपनी भलाई के लिये न कि दूसरे के लिये। जिसमें जितना सात्विक गुण का अश है उतनी ही उसमें दया होती है। बाइबिल कहती है कि दया घर में पहले आरम्भ होती है याने मनुष्य अपनी आत्मा पर दया करता है और तब उसे दूसरे के आत्मा पर दया लगने लगती है।

यह सच है कि दयावान एक प्रकार से दिग्विजयी सा होता है। जैसे उसके सैन्य का अवरोध नहीं होता वैसे ही दयावान् नि शङ्क सब ओर विचर सकता है चाहे लम्बे ऊँचे पहाडों के जङ्गलों में हो, जहाँ सिंहों के शब्द के प्रतिध्वनि से पहाड खाडी एकाएक चैतन्य सी चिल्ला उठती हैं। दयावान चाहे समुद्र की ऊँची लहरो पर अपनी छोटी सी नौका में पाल लगाये लहरों को चीडता चला जाय, चाहे घने जगल की वीथियो में

विचरे, चाहे पाल सर्पों से गेल खेले। पुरातन तपोवन की महिमा में कविजन कहते हैं कि यहाँ मृग शावक निश्चिन्त आश्रमों में निर्भय विचरा करते थे और मुनि बालकों के साथ क्रीडा करते थे और मुनियों के हस्त पुट में मधुर जल का पान करते थे। नित्यश: स्वभाव से चञ्चल क्रीडा शील बन्दर भी चैतन्य मनुष्यों सा तपस्वियों को मदद देते थे, सरवन से अन्ध तपस्वियों को नदी ले जाते थे, कमण्डल में निर्मल नीर भर उनके पीछे चलते थे और कोई उनके क्लिन्न वस्त्रों को धूप में सुखाने हेतु डालते थे। क्रोध से भरे हुए मृगराजो के शावक कभी २ तपस्वी के बालकों के क्रीडा से अत्यन्त दुखी हो घुर-घुराते और इस भाँति अपने जान का छुटकारा पाते थे। किसी प्राणी का न विश्वास करने वाला चतुर काक तपस्वियों के हाथ से अपना बलिग्रास लेता था। जहाँ प्रवेश करते ही मनुष्य के हृदय में दया शान्ति सत्यता विवेक, ये गुण शरीर के सहज धर्म समझ पडते, जहाँ उन्मत्त भी शान्तसुख का अलभ्य लाभ या निद्रित हो जाते, जहाँ दिग्विजयी अधिपति लोग सातङ्क पैर रखते और अपने परम सहज वेष में प्रवेश करते, उग्र होते हुए भी नम्र हो जाते, राजसी जन सात्विक के वेष में प्रवेश करते, जहाँ दुखीजन अपने दुःख रूपी भार को किञ्चित काल के लिये विस्मृत कर जाते थे, दरिद्र अर्थार्थी का अर्थ सिद्ध होता और वे आश्रम से मारे खुशी के नाचते कूदते घर लौटते थे। अब भी जहाँ तीर्थों में जाइये तो देखियेगा कि पक्षीगण निर्भय मनुष्यों के घर में विचरा करते और मयूर निःशङ्क सोता हुआ प्रात काल घमौनी लेता। प्रकृति के कानून कभी परिवर्तन नहीं होते हैं क्योंकि धर्म अब भी वही है, सत्य अब भी वही है, और दया वही है। इससे यदि आप में दया की अधिकाई है तो लोक भी

आपसे वैसा ही वर्ताव करेगा जैसा कि महाकवियों ने सच कहा है कि लोक तो एक प्रकार की आरसी है जैसा आप मूँ बनावेंगे वैसा उसमें आपका प्रतिबिम्ब पडेगा। भगवतगीता भागवतकर्मनिष्ट मनुष्यों की प्रशंसा में कहती है कि उससे कोई प्राणी उद्वेग को नहीं प्राप्त करता और न वही किसी से। क्षत्री होने पर भी और महाभारत के युद्ध के नेता होते हुए भी महाराज युधिष्ठिर की सज्ञा अजातशत्रु थी।

दया बहुत से स्थानों में पाप के तुल्य होती है जैसे बहकते प्यारे बच्चों पर दया करना वा उन्हें न पढने पर न दण्ड देना। यों ही सीताजी को लङ्का रहने का महादुःख न झेलना पडता यदि कपटी भिक्षुक को बिना भिक्षा और अतिथिसत्कार किये हुए लौटातीं। तपस्वी भी यदि अयुक्त दया करेगा तो उसे पछताने का अवसर प्राप्त होगा जैसे जड भरत को दया। बढी नदी में बहते हरिन के बच्चे को देख यह समझना कि यदि हम इसे न बचावेंगे तो यह न बचेगी और उसकी रक्षा सर्व रक्षक दैव पर न छोड अपने को मारे दया के रक्षक मानने से दो जन्म तक उन्हें ईश्वर से मिलने के लिये रुकना पडा। वैसे ही दुष्ट जनों के लिये आज कल का कानून, उनके प्रति दयावान् होने से, चोरी चौर्य्य असत्य इत्यादि, जो भारतवर्ष में बहुत कम था, नित्य प्रति दावानल सा बढता चला जा रहा है।

चित्रग्रीव कपोतराज जब बन्धन में पडा था या कोई जब इस अवस्था में पडता है तो प्राय उसके मुख से यही वचन निकलता है कि न हमने किसी को सताया है, न अपकार या हत्या किया है, निश्चय हम इस दुःख से पार जायेंगे। यह ठीक

है कि मनुष्य के शरीर को जिरा बख्तर या फौज चाहे न रक्षा कर सके पर यदि वह वस्तुत दयावान है तो उसकी रक्षा प्रकृति देवी स्वय करती हैं। जैसे प्रह्लाद के बचाने के लिये अग्नि ने अपना जलाने का धर्म छोडा, पहाड़ने अपनी सहज कठिनाई छोड रुई के गद्दे हो गये, योंही प्रस्तर का खम्भा नृसिंहावतार होने का कारण हुआ।

दया यदि दैवी सम्पत्ति है तो क्रूरता आसुरी। यदि एक विवेकवान है तो दूसरी अन्ध जड और हिंसक पशुता है, एक पुण्यलोक को ले जाने वाली है तो दूसरी अधोलोक के कपाट को खोलने वाली है। यदि दयावान नित्यश अपने अनेक शुभ कर्मो से प्राणी मात्र को सुखी करता है जैसे कादम्बिनी के कण वनस्पतियों को तो निर्दयता अपने अपकार और दुष्कर्मो से नीहार सा आशा प्रसून को भस्म करता। यदि एक दूर्वा सा हारा और चलने में पैरों को और चक्षु को सुख देने वाला तो दूसरा गुडखुल सा, जो पद २ पर भयङ्कर होता। यदि एक के दुःख में सकल लोक सहायता के लिये दौड पडता है तो दूसरे के दुःख में जग हँसता है और विधाता के न्याय को सराहता है। दया की प्रशसा में कविकुल सम्राट् शेक्सपियर पोरशिया के मुख से कहलाता है "दया का गुण प्रेरणा से नहीं उत्पन्न होता (किन्तु प्राकृतिक है), वह आकाश से अमृत वारि बुन्द सा अधोलोक पर गिरती है। यह उभय मगलकारी है। उसका भी कल्याण करती है जो दया करता है और जिसपर की जाती है। बडो में बडी इसकी बडप्पन है। राजा को, उसके मुकुट से भी प्रशस्त, इसका (दया का) राजतिलक है। राजदण्ड तो केवल भौतिक शक्ति का सूचक है जो कि आदर और विभूति का प्रेरक है और जो (राजदण्ड)

राजाओं में भय और त्रास उत्पन्न करता है। किन्तु दया इस राजदण्ड से कहीं श्रेष्ठ है। वह (दया) तो राजाओं का हृदयेश है, और ईश्वर का भी विशिष्ट गुण होने योग्य है। मानव शक्ति ईश्वर समान हो जाती है जब न्याय दया से संस्कृत होती है"।



पत्नी

जीवति जीवति नाथे मृते मृता या मुदायुता मुदिते।
सहजस्नेह रसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात्॥



त्नी गार्हस्थ सुख की मूल है। मङ्गल और उत्सव की स्वरूपा है। जगत के स्थिति की हेतु है। मनुष्य के मन रूपी उच्छृङ्खल पतङ्ग को नेह रूपी डोर से बाँध अपने वश में रखने वाली है। पति के हार्दिक-गुह्य-कथा रूपी सरिता की पावन महोदधि और मनुष्य के सहज स्नेह रूपी रसाल की वाटिका है। मनुष्य का दूसरा हृदय, द्वितीय शरीर अथवा उसका द्वितीय मन और वास्तव में उसकी दूसरी छोटी दुनिया है। माया सी विश्व की स्वयणी, विष्णु सी रक्षा करने वाली, गङ्गा सी निज पति भगीरथ का अनुसरण करने वाली, कमलिनी सी निज प्राणपति रूपी प्रभाकर को देख प्रफुल्ल रहने वाली, कुमरियों सी केवल अपने प्राणनाथ ही की कथा कूकने वाली, अन्नपूर्णा सी परिवार को पोषण करने वाली, कामिनियों के कटाक्षों के आक्षेप से अपने धर्मिष्ठ पति को दुर्ग के समान सुरक्षित रखने वाली, विपत्ति में नौका सी, अथवा जब विपत्ति तूफान मनुष्य रूपी नोका पर हाहाकार कर चतुर्दिक् से दौड़ता है

तो उससे बचाने में जादू की छड़ी सी, पत्नी मनुष्य की सर्वस्व, और गृह की लक्ष्मी होती है।

यदि इस लोक में कोई यावज्जीवन का साथी है तो पत्नी, यदि कोई सच्चा मित्र है तो स्त्री, यदि कोई सत्प्रेम की पात्री है तो भार्य्या। इससे कोई यदि संसार के सुखों को अनुभव करते हुए भी, कल्मष रहित रहना चाहे तो अपने स्नेह सम्पत्ति का कोषाध्यक्ष अपनी पत्नी को बनावे। ललना से सम्बन्ध रखकर भी यदि ब्रह्मचारी होने की इच्छा हो तो पत्नी ही से नाता रक्खे। निष्ठुर प्रेम भी इन्हीं के स्नेह में विक्षुब्ध रहता और हृदय को स्नेह से पूर्ण रखते हुए भी जताता नहीं। सुख की अनन्त सम्पत्ति देता और विछोह की घबराहट से सदा मुक्त रखता है।

पंडितवर बेन जोनसन (Ben Johnson) स्त्रियों की प्रशंसा में कहता है कि इन्हीं सुन्दरियों के अर्थ हम सब कार्य इस जगत में करते हैं। बहुमूल्य परिच्छद इन्हीं की प्रसन्नतार्थ धारण करते हैं, द्रव्य इन्हीं के सन्तोष रूपी मुसकुराहट देखने के लिए उपार्जन करते हैं और इन्हीं कामिनियों के लिए ऊँचे ऊँचे मकान बहुमूल्य वस्तुओं से सजाए जाते हैं। चञ्चल तुरङ्ग इन्हीं के लिए खरीदे जाते और भीषण युद्ध भी इन्हीं के लिए कभी कभी होते हैं। इसी से ये स्त्रियाँ हम सबों के बुरा भला होने के मुख्य कारण मुझे समझ पड़ती हैं।"

देखा गया है कि यदि भार्य्या सुन्दरी पण्डिता और सच्चरित्र हुई तो उसके पति के गुण रूपी कुसुम दिन प्रतिदिन खिलते ही जाते हैं। नित्य प्रति वह चाहता है कि मैं ऐसा गुणवान हो जाऊँ कि मेरी प्यारी भार्य्या मुझे और भी प्यार

करे और उसकी आँखों में मैं योग्य पुरुष लग पड़ूँ। कविताओं और इतिहासों में देखने में आता है कि इनके प्रसन्नार्थ बड़े से बड़े दुःसाध्य कर्म्मों को मनुष्यों ने शीघ्र ही कर डाला है। किसी ने अगाध महोदधि शास्त्र वा अगस्त्य सा पान किया है तो किसी ने पत्नी के, अपमानित होने पर अपने वैरी को विध्वंस कर, पिपासित सा, उसके उदर के रुधिर को पान कर, मेघ सा घोर गर्जन किया है और किसी ने उसकी मुस्कुराहट देखने के लिये कुवेर समान लक्ष्मी उपार्जन किया है।

यदि गुणवती सानुकूल सुगृहिणी पत्नी के साथ सहवास स्वर्ग है तो कर्कशा के साथ रहना नरक सा दुःखद है यदि पहिली ऊर्ध्व लोक को ले जाने में समर्थ है तो दूसरी अधोलोक पहुँचाने में किंकरी सी है। यदि एक सुख सम्पत्ति और स्नेह की स्रोत है तो दूसरी असन्तोष, कलह, और अनेक दुःखों का भाण्डार है।

परकीया अनुरागी मधुकर मनुष्य कहते हैं कि भार्य्या में तो प्रेम होना असम्भव है। क्योंकि विवाह के ब्रह्मा पुरोहित होते हैं न कि वर वधू का प्रेम। इससे ये सब सदा ऊँचे स्वर से परकीया के प्रेम की प्रशंसा कर अपनी विषय परायणता प्रगट करते हैं। सत्य तो यह है कि मनुष्य प्रकृत्या प्राप्त वस्तु का तिरस्कार और अवहेलन करता है और अप्राप्त के लिये प्राण देने पर तत्पर रहता है।

विधि यदि अनुकूल रहे तो पत्नी में अनुराग होना कुछ असंभव नहीं। देखिये यक्ष जब अपनी भार्य्या से शापवश एक वर्ष के लिये रामगिरि आश्रम पर भेजा गया था तो वह विरही, बादलों को आकाश में देखते ही ऐसा उन्मत्त हो गया कि जड़ मेघ से अपनी प्रियतमा के घर सन्देशा ले जाने को

याचना की थी। वैसे ही रामचन्द्रजी ने भी एक एक वृक्षों से सीता जी के अपहरण की कथा पूछी थी और सकल जीव जन्तुओं को भी अपना दुखड़ा सुना दुःखित किया था। किन्तु यह तो निश्चय है कि जैसे परकीया स्त्रियों के प्रेम में घबराहट, चञ्चलता, व्याकुलता, चाह, क्षुद्रातिक्षुद्र बातों पर जान देने पर तत्पर रहना और कुल मर्य्यादा के विरुद्ध आचरण करने से न लजाना पाया जाता है, वैसे ही शान्ति, सुख और स्वस्थता स्वपत्नी के प्रेम में पद पद पर देखने में आती है।

यदि परकीया के प्रेम की समता सहस्रों चिनगारियों से चमकती हुई अग्नि से दी जाय तो पत्नी का प्रेम छिपी आग सदृश है जो ध्यान पूर्वक देखने से भी नहीं देख पड़ती। यदि एक प्रथम आषाढ़ सा इस हृदय देश पर विद्युत कृपाण हिलाता हुआ भयानक वेग से आक्रमण करता है तो दूसरा मार्ग शीर्ष सा शान्त और निर्मल होता है। यदि एक में नित्य नये झगड़े फलते तो दूसरे में नित्य नये उत्सव ठनते। यदि एक में चाह चाण्डालिन नित्य कोड़ा जमाती तो दूसरे में मन सदैव सन्तुष्ट रहता। यदि एक शराब है तो दूसरी चाय है। यदि प्रथम राजसी और तामसी तो दूसरी सात्विक और पुनीत है। यदि एक ज्येष्ठ के मध्यान्ह सा प्रचण्ड तो दूसरा शरद के प्रभात सा सुहावना, यदि प्रथम परम दुःसाध्य तो दूसरा परम सुगम, यदि एक अपकीर्ति फलों से कलङ्कित करने वाला तो दूसरा सुयश और सम्पत्ति की वृद्धि करने वाला है।

महाराज प्रेम से कुतूहल करने वाले युवक जन प्रायः बड़ी कविता में कहा करते हैं कि जिसने वेश्या विनोद वाटिका में नहीं सैर किया वह कैसे सुन्दरियों के विविध हाव भावों को देख सकता है। वेश्याओं में जिन्हें विधि ने सौन्दर्य्य और

दाक्षिण्य की सम्पत्ति दी है उनके केश पाश में लोग फँस देव-राट् बन जाते और इनके तोडा को देख लोग तोडा पर तोडा निछावर कर देते। बडे बड़े पण्डितों को बुद्धि क्षण के क्षण में भौर में पडी नावसी घूमती रह जाती। राजा बाबू तथा साहूकार लोग तो इनके वस में हो हाथ जोडे खड़े रहते, और भगवान कुसुमाकर इनके दामनों में लगे घूमा करते हैं। इन वाराङ्गनाओं की अपाङ्ग दृष्टि मनुष्य पर बिजली सी गिरती और इनके सगीत का प्रवाह वर्षा सा सुखी और सुमनस्क कर देता है। ऐसी ऐसी प्यारी कल्पनायें उनकी प्रशसा में कहते किन्तु गर्मी और सुजाक नाम के दो राक्षस उनके सिर पर सदा सवार ही रहते और दिन रात क्लेश रूपी चाबुक लगाते हैं जिनकी कथा कुछ भी नहीं कहते और मिथ्या सुख के हेतु वे अपने शरीर को रुग्ण और पराक्रम हीन कर डालते हैं।

भगवान मनु कहते हैं :—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु नपूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया॥

अर्थात् जहाँ नारियों की प्रतिष्ठा है वहा देवता गण रमते और जहा इनका मान और सत्कार नहीं होता वहां के मनुष्यों के सब कर्म निश्चय निष्फल होते हैं। इससे यह हम सबों का कर्तव्य है कि जिसे विधि ने हमारे साथ सौंपा है उसे बड़े प्रेम से अपना साथी और सहधर्मिणी मानें। यह ठीक है कि दिल लगाने से दिल लगता है। यदि आप अपनी पत्नी में प्रेम का हाट लगाना चाहते हैं तो बाजार लग सकती है क्योंकि देखा गया है कि नित्य के चाहने से लोग कुत्ता और बिल्ली को भी चाहने लगते हैं। विपत्ति काल में जब सब सुहृद् वर्ग तथा परिवार वाले साथ छोड देते हैं और सारा

जगत वैरी हो जाता है और अपमान की बौछार ऐसी चलती कि बाहर मुख निकालना कठिन हो जाता है, ऐसे समय में पत्नी घर सी मालूम होती जिसके सन्निकट बैठने से विपत्ति रूपी तूफान जो मनुष्य के सब कर्म रूपी वृक्षों को छिन्न भिन्न कर कीर्ति मालती को गिरा धूलि धूसरित कर रहा है, क्योंकि उसके सन्निकट शान्त हो जाता और उसकी प्रेम भरी चितवन से सब शोक और सन्ताप शीघ्र ही दूर हो जाते हैं। इसी से अरविंग (Irving) कहता है "जैसे मालती लता अपने कोमल तन्तुओं से आम्रवृक्ष को लपेटे रहती और उसकी कृपा से जङ्गल के सब वृक्षों से उन्नत रहती है किन्तु वज्रपात होने पर उसके छिन्न भिन्न शाखाओं को अपने सुकुमार तन्तुओं से ऐसा सम्हालती की वे भूमि तल पर नहीं गिरने पाते हैं। उसी प्रकार विधि की यह एक विचित्र रीति है कि पत्नियाँ जो समृद्धावस्था में मनुष्य के आश्रित रहती वही आकस्मिक विपत्ति के आने पर उनकी एकमेव आश्रय तथा सुख की हेतु होती है। यहाँ कवि अपने एक मित्र का वृत्तान्त सुनाते हैं कि जिनकी भार्य्या किसी समय में बडे सोख्य और अमीरी से रहती थी किन्तु दैवात् उस परिवार में कुछ ऐसी अशान्ति फैली की उन्हें लदन छोड एक ग्राम कुटीर का शरण लेना पडा। उनसे शाम को टहलता हुआ उक्त कवि मिला और उन्होंने अपने घर की सब व्यवस्था कहा वह ठढी सांसें ले कहने लगा कि आप तो इस दुःख को सह भी सकते है पर आपकी स्त्री जिसने कष्ट तथा दारिद्र के वृत्तान्त को केवल किताबों ही में देखा है इस दुःख को कैसे सह सकती होगी? ऐसी बातें करते वे सब कुटी के सन्निकट पहुँचे और सङ्गीत का स्वर सुनाई देने लगा। उस छोटे मकान पर पहुँचते ही वह सुगृहिणी

मुस्कुरा कर कहने लगी कि आप आ गये मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं क्योंकि आपके भोजन की टेबिल एक सुहावने वृक्ष के तले सजा कर, मे आपकी बाट जोहती थी। मैंने आपके लिये अत्यन्त मधुर मकोय (Straw-berries) तोड लाई हूँ क्योंकि वह आपको पसन्द है और ऐसी उत्तम मलाई प्रस्तुत है और वस्तुएँ यहाँ ऐसी अच्छी ह कि हम सब अवश्य यहां सुख से जीवन निर्वाह करेंगे।

कैकेयी के कुटिल वाक्यों को सुन कर जब भगवान राम चन्द्र सीताजी से विदा माँगने आए और चौदह वर्ष के वन वास की कथा उनसे कह सुनाया तो उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि यह कोई नई बात नहीं है, क्योंकि बचपन में पडितों ने हमारी कुण्डली देख कर कहा था कि तुम्हें चौदह वर्ष का वनवास दुःख भोगना पडेगा, इससे मैं इसके लिये पहिले ही से सन्नद्ध थी। मैं आपके साथ चलूंगी, नये नये जङ्गल और पहाडों का दृश्य देखूँगी। नित्य नये नये उत्सवों को रचूंगी जो कि आपके बिना इस अयोध्या नगरी में असम्भव है। इन प्रेम भरी वाक्यों को सुन कर भगवान रामचन्द्र के सब दुःख दूर हो गये और आनन्द पूर्वक पिता से विदा ले, जङ्गल को सिधारे किन्तु वहाँ भगवान रामचन्द्र जब माया मृग का आखेट कर लौटे और लक्ष्मण को आते देखा तो वनवास के दुःख का महोदधि पहिले पहिल उनकी आँखों के समक्ष लहराने लगा। जिस विरह व्यथा को वर्णन कर कवि दिखलाता है कि पुरुष को माया से पृथक होने पर अत्यन्त दुःख होता है वा ऐसा कहें कि सीताजी रामचन्द्र के सकल राज्य की स्थानापन्न थी और बन्धुवर्गों के विछोह की सम्भालने वाली थीं पर उनके अप-हरण होते ही वे अपने को निश्चयहीन और दुःखी मानने लगे।

अत हे प्रिय पाठक गण, पत्नी, आपकी सहधर्मिणी बनाई गई है अथवा यों कहें कि आपको ससार के प्रेम के फन्दों से बचने को चिन्तामणि सी दी गई है, जिसका रक्षा करना आपका कर्तव्य है और जिससे प्रेम करना आप का धर्म है क्योंकि उसका सुख दु ख आपके व्यवहार ही पर निर्भर है। अत यदि अपनी भार्या को आप अर्धाङ्गिनी सी मानिएगा तो अवश्य न केवल आपको धर्मिष्ठ बनाए रहेगी किन्तु वैषयिक आनन्द सुलभ रीति से देती हुई, इस जीवन नौका को शान्ति और सुख पूर्वक ससार के सब तूफानों से, और प्राणघातक पहाड़ों से बचाती हुई अमल धाम को पहुँचा देगी। इससे प्रिय मित्रो, आओ, मूर्खों के समान पत्नी का अवहेलन न करें, प्रत्युत उसमें प्रेम और स्नेह रक्खें उसे शिक्षा और सद्गुण सिखावें और आप देखिएगा कि वह आपकी जीवनी को आनन्दमय कर देगी।



मोह महिमा

मम माता मम पिता ममेयं गृहणी गृहम् ।
एतदन्यत् ममत्व यत् स मोह इति कीर्तित ॥

अपने आत्मा से वा उस परमात्मा की भावना से अलग रहना वा पराई वस्तु को अपनी मानना वा अनित्य को नित्य, पराये को अपना, अपने घर के देही की खबर छोड जगत भर की चिन्ता से चिन्तित रहने को महात्माजन मोह, निद्रा, अविद्या, अज्ञान कहते हैं। महाकवि यतीन्द्र श्री कृष्ण मिश्र ने प्रबोध चन्द्रोदय में मोह को महाराजाधिराज बनाया है जिनसे अपरपक्ष के महाराज विवेक से युद्ध होता है । इसमें सन्देह नहीं कि सनातन से विवेक और ज्ञान ने महाराज मोह पर ज्ञान की सहस्रों तीरें फेंकी, बडे बडे ज्ञानी, तपस्वी वाग्मियो को भेजा कि मोह की प्रबल सेना को छिन्न भिन्न करें पर ये सब नित्यप्रति मोह महाराज के परिवार के ही बनते चले जाते हैं और सहस्रों विद्यालयो के वर्तमान होते हुए भी ज्ञान का राज्य नित्य क्षीण, हीन और क्लीवों सा अशक्त होता जाता है ।

कविकुल वार्ता है कि कोई दैवी पथिक आकाश से उतरा और ससार कूप में मोह का महा विष छोड गया। कहते हैं कि

तब से जो कोई पथिक इस मृत्युलोक में आता है जल पीते ही मतवाला सा बरतने लगता है।

हमारी समझ में तो मोह और ज्ञान यह शरीर लोक में रात्रि और दिन से हैं, जिसका मालिक मन, विषय रानियों के साथ अहर्निश भोगते भोगते कुछ ऐसा मुग्ध और जड़ सा हो गया है कि आत्मा सूर्य्य के समक्ष जाने में थर थर काँपता है और समझता है कि हम जल जायँगे, इससे सदा अज्ञान की रात्रि रचे विषय रानियों के साथ अपने को कृतार्थ मानता है। जब तक यह मन विषय संसार में विचरता, उसके विविध प्रसूनों को घ्राण करता और उसी के रूप की गीत गाया करता है तब तक यह अविद्या अन्धकार में विचरता है किन्तु जब यह आत्मा या ईश्वर की ओर उत्सुक होता है तो उसे ज्ञानी जन, दिन या विद्या के लोक में विचरना कहते हैं। संसार रक्षक सूर्य की प्रार्थना में, भगवान वेद कहते हैं कि "यह सुनहला (मोह का) परदा जिससे सत्य सूर्य्य छिप रहा है, हटा दीजिये जिससे सत्य और धर्म का सम्यक् दर्शन हो।" जितने सच्छास्त्र हैं वे सब इसी मोह के परदे को हटाना चाहते हैं जिसमें अविद्या अन्धकार रूपी बन्दीगृह से मुक्त हो, विद्या और भक्ति के निर्मल अकाश में मन स्वच्छन्द विचरे और ज्ञान के पुनीत फलों का आस्वादन कर इस जीवन को सुफल करें। पर मोह की कुछ ऐसी प्रबल शक्ति है कि शास्त्र और पैगम्बर चिल्लाते ही रह जाते हैं परन्तु संसार मोह निद्रा को नहीं छोड़ता। भागवतकार कहते हैं कि इस देहनगरी के भीतर जब इसका अधिष्ठाता आता है तो सब इन्द्रिय रानियाँ और उनकी मन मोहनी चतुर विषय सखियाँ अपने अपने अनेक हाव भाव कटाक्षों से इसे ऐसा मोहित और अपने वश कर लेती हैं कि

यह महात्मा, "निर्गुण साक्षी चेता" आत्मा भी मुग्ध हो कहने लगता कि यदि ये हमारी रानियाँ सन्तुष्ट और प्रसन्न रहेंगी तो हम भी सन्तुष्ट और प्रसन्न रहेंगे। इन्हीं की खुशी में खुशी और भोग में आनन्द है। साराश यह कि दूध पानी सा मिल गया। यहाँ तक कि जिसमें जिह्वा देवी को आनन्द आवे उसी को ये भी सुस्वाद सराहते, जिसके देखने को चतुर चक्षु लालायित होती, और जिसके शब्द सुनने को कर्ण उत्सुक रहते, उसे यह भी अपना सर्वस्व मानते हैं। इन्हीं की प्रसन्नता पर प्रसन्न, और उनके दुख से दुखी रहते। निदान मोह महराज के कारण यह अखिल लोक साक्षी अपने सच्चे स्वरूप को भूल कर कर्म बन्धन में नित्यश सुदृढ़ रूप से फँसता चला गया। इस मोह के ज्वर को छुडाने के लिये सनातन से महात्मा लोग दवाई करने चले आये, "पर ज्यो ज्यो दवा होती गई त्यों त्यो मर्ज बढता गया।"

परम पितामह ब्रह्मा ने चारो मुख से मन के इसी मोह को छुडाने के लिये, वेद का गान किया। बडी दाढी वाले मियाँ मुहम्मद ने इसे तलवार की धार पर सिखाना चाहा और स्वार्थ-त्यागी इसी दुःख के हटाने के हेतु घर घर दौडे। बुद्ध और कपिल इत्यादि महात्माओं ने इसी मोह के निवारण और मनुष्यों के चैतन्य करने हेतु निर्वाण और मीमांसा के मार्ग बनाये।

मोह के मददगार यहाँ से स्वर्ग लोक तक भरे हैं, इनसे यात्री को पाते ही वे उसे मोह का पाठ पढाने लगते हैं और माया की हाट में तो सुनते हैं कि ऐसे चतुर दलाल लगे रहते हैं कि यात्री का देखते ही वे हाथ पकड ले जाते हैं और हठात् सौदा पक्का करा देते हैं। रोमपाद की प्रेषित वेश्याओं को जब-

शृङ्गी ऋषि ने देखा तो यह समझा कि दैवी यात्रीगण हम पर कृपा कर यहाँ चले आये है, इससे बडे सत्कार और प्रेम पूर्वक हाथ जोड कहने लगे, यह अर्घ, यह फल और यह जल आपके चरणों के प्रक्षालनार्थ है, स्वीकार कर हमारे जन्म को सुफल कीजिये। इनकी भोली बातें सुनने से सब प्रसन्न भी होतीं और साथ ही साथ इनके तेजस्वी पिता के आने के डर से चतुर्दिक् देखतीं भी रहती थीं। निदान जाते समय इन वेश्याओं ने अपने हाव भाव से उनके हृदय को वेध दिया और चली गईं। अज्ञात मनमथ के शरीर में प्रविष्ट होने से महात्मा वटु ऐसे मुग्ध हुए कि उन्हीं की ओर देखते रहे जब तक कि वे दृष्टि के बाहर नहीं चली गईं। उस दिन उन सब के विरह से वे तडपते रहे और रात्रि में महात्मा को नींद न आई। उन्हीं के विचित्र रूप लावण्य तथा अनेक प्रेम भरी कटाक्षों का स्मरण करते करते क्षण में क्षपा क्षपित हो गई। प्रातःकाल के नैमित्तिक कर्म किसी भाँति समाप्त कर पुनः रात्रि भर इन्हीं सुन्दरियों का आतिथेय करते रहे और दूसरे दिन ऐसे इन सब के वश हो गये कि सीधे से अयोध्या चले गये और महाराज दशरथ के हेतु पुत्र यज्ञ करवाया।

वसन्त ऋतु में जब अमराइयों में कोकिल बोल रहीं थीं और बन उपवन सुगन्धि से परिपूर्ण हो रहा था, ऐसे समय में उग्रतप से देदीप्त विश्वामित्र ने जो मेनका का अद्वितीय वासन्ती यौवन देखा और उसकी बडी बडी मतवाली आँखो से सामना पडा तो एकाएक यही निश्चय करना पडा कि पहिले इस अनुपम छवि को देख लें फिर ज्ञान की मञ्जिल पर चला जायगा। कैसे शोक का विषय है कि ऐसे ऐसे जितेन्द्रिय जन भी निर्जन वन में विषय मुक्त होते हुए भी क्षद्र के

क्षण में मोह महाराज के फेर में पड जाते हैं जो शीघ्र ही अपने परिवार और पदातियो सहित परास्त करने को पहुँच जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि मोह महाराज के अत्याचार का उलाहना देवताओं से लेकर मनुष्य तक सभी विधि से किया करते ह। किन्तु आश्चर्य का विषय है कि दुःख सहते हुए भी इनकी नौकरी को कोई छोडना नहीं चाहता। देखिये मनुष्यों के आदर्श, धर्म के प्रत्यक्ष स्वरूप, मर्यादा के अवतार भगवान् रामचन्द्र सीता के विरह में, उन्मत्त सा, वृक्ष, और पक्षियो से ऐसी बातें करते और पूछते थे मानों वे उनके सुहृद मित्र थे और जो कुछ वे पूछते थे वे सब समझते थे। जब रावण ने देखा कि उसका प्यारा पुत्र मेघनाद प्रदीप्त व्याल सदृश लक्ष्मण की तीरों से मारा गया और प्रकाण्ड शरीरवाला कुम्भकर्ण पृथ्वी पर सदा के लिये शय्या बिछा सोने लगा तो उद्विग्न और आमर्ष पूर्ण रावण ऐसे तीव्र वेग से लडने लगा कि उसने रात्रि को भी दिन बना दिया और किसी भाँति भगवान् रामचन्द्र को लव मात्र का भी अवकाश नहीं दिया जब तक कि स्वय नहीं मूर्छित हो गया। भगवान् रामचन्द्र इसके उत्कट युद्ध से ऐसे मोह ग्रस्त हो गये कि उन्हें दशकन्धर को मारनेवाले अस्त्र का भी स्मरण न रहा और युद्ध करते करते उन्हें शान्त और शिथिल देख, चतुर मातलि ने हाथ जोड निवेदन किया कि सरकार ने सब अस्त्रों का प्रयोग किया किन्तु भगवान् अगस्त के अमोघ अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। यह सुन भगवान रामचन्द्र ने सस्मित उस धनुष और अक्षय तूण को उठा कर दशकन्धर के हृदय को विदीर्ण किया।

ज्ञानी भगवान् कृष्ण यदि मोह में नहीं तो क्रोध में वे भी

निश्चय पड़े। वृद्ध ज्ञानियों के मौलि मुकुट, तितिक्षा के प्रत्यक्ष अवतार, धर्म के परम गुह्य का जानने वाले, धनुर्धारी भीष्म ने एक दिन प्रतिज्ञा की जिसको कि श्री सूरदासजी अपनी अक्षर और अपूर्व कविता में इस प्रकार कहते हैं।—

आज जो हरिहि न शस्त्र गहाऊँ ॥ टेक ॥
तौ लौं मैं गंगा जननी को, शान्तनु सुत न कहाऊँ ॥

स्यन्दन खण्ड महारथ खण्डौं, कपिध्वज सहित उड़ाऊं।
रति न करौं शपथ मोहिं हरि की, क्षत्रिय गतिहिं न पाऊँ ॥
पाण्डव दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।
सूरदास रणभूमि विजय बिन, जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

यह प्रतिज्ञा कर बूढ़े भीष्म ने ऐसे अस्त्र शस्त्रों का प्रवाह अर्जुन के ऊपर किया कि उस दिन अर्जुन को यह नहीं जान पड़ता था कि वे किस तरह उस बढ़ती नदी की बाढ़ से बचेंगे। अर्जुन को विमुग्ध और दीन देख, स्वयं भी कृष्ण भीष्म के तीव्र अस्त्रों से उद्भित दावानल को कुछ काल के लिये शान्त न कर सके और कोड़ा लेकर रथ से उतर ही, पड़े। इस वाञ्छित अपूर्व क्रोध को देखकर भीष्म हँस कर कहने लगे कि हे दीन-बन्धु! हे यदुकुल भूषण! आपने यदि अस्त्र गहा तो शान्तनु सचमुच पुत्रवान् हुए और यदि इस शरीर का अन्त इन हाथों से हो तो परम भाग्य का विषय है। वेद व्यासजी, कहते हैं कि अर्जुन के बहुत प्रार्थना करने पर लज्जास्मित करते हुए हमारे सरकार फिर रथ पर चढ़े।

मोह का सब से अच्छा उदाहरण अवतारों के चरित्रों में देखने में आता है। भगवान् रामचन्द्र वा भगवान कृष्ण की अनेक लीलाओं और अद्भुत अमानुषीय कर्मों को देखते हुये भी उस

समय के लोगों की बुद्धि निश्चय नहीं कर पाती थी कि यह प्रत्यक्ष विष्णु है या सकल लोक के स्वामी हैं क्योंकि मोह पंडित उन्हें समझा देता था कि ऐसा होना कोई असंभव नहीं वा किसी कारण से यह कार्य्य ऐसा हो गया है इसमें कोई दैवी बात नहीं है।

यशोदाजी जिनको उनके मुख में त्रैलोक्य देखने का सौभाग्य हुआ वे भी अचिरकाल में उनके दैवी कृत्यों को भूल जाती थीं और फिर भी पुत्र सा उन्हें प्यार करने लगती थीं। यह ठीक है कि जिस समय आग के टुकड़े से जलते हुए, आत्मा के अपूर्व तेज से दिशाओं को रञ्जित करते हुए मिर्ज़ा मोहम्मद जब सीनाई के पुनीत पर्वत से लौटते थे तो क्या कोई मक्का निवासी परमात्मा का दूत उन्हें मानता था। योंही जब ईसा पश्चिम में अपनी ज्ञान गुदड़ी को लिये घर घर उपदेश करते थे उस समय किसी ने उन्हें ईश्वर का इकलौता पूत नहीं माना था बल्कि लोगों ने इस उपदेश के उत्तर में केवल इनके शरीर में कील ठोकना ही समीचीन समझा क्योंकि वे समझते थे कि यह वचनरूपी विष जो फैलाता है उसकी शान्ति केवल इसके शरीर के नाश होने ही से साध्य है। मोह का प्रभाव ऐसा अद्भुत है कि जब ईश्वर स्वयं हम सबों में आता है तब भी हम उसे न पहिचान सकते और न सर्वस्व मान अर्चना कर सकते हैं।

मोह से प्रादुर्भूत प्राय ज्ञान भी अस्थिर हुआ करता है यानी यदि क्रोध से वा लोभ से या विपत्ति वा प्रेम के उत्तुङ्ग शृङ्ग से पतन के कारण जब मनुष्य ज्ञान के मार्ग का अवलम्बन करता है तो देखने में आता है कि कुछ ही मञ्जिल तय कर वह पुनः घर लौट आता है। पिता के गोद से उतार देने के महत्

कदाचित् वे भी, जिनपर आप कृपा रखते हैं।

मोह का ऐसा प्रताप है कि जो जिस ठौर पर, जिस अवस्था में है, यदि उसे कोई वहाँ से हटाना चाहे तो वह रोने गाने लगता है। कोई मनुष्य, और कोई जन्तु, ऐसा नहीं जो प्राण से भी अधिक अपने शरीर को न मानता हो। शापवश जब भगवान् इन्द्र शूकर हो गये थे तो देवताओं ने उनपर कृपा की और उनके सन्निकट जा कहने लगे कि आप देवराज हैं, विधिवश आप शूकर की योनि में पडे हैं, यदि आप कहें तो हम आपको मार डालें जिसमें पुनरपि दिव्य देह धारण कर स्वर्ग को अलङ्कृत करें। पर शूकर के रूप में इन्द्रदेव ने कहा कि जब तक यह शूकरी हमारे सन्निकट है और सफेद छौने अगल बगल खेल रहे हैं तब तक इन्द्र के पदवी की हमें चिन्ता नहीं है। महाराज मोह की महिमा को सराहते देवतागण अपने नियत स्थान को चले गये और यह निश्चय किया कि यदि इनके बच्चे को मार डालें तो निश्चय इनको इस शरीर से वैराग्य हो जायगा। निदान दोनों बच्चो के मरने पर इन्द्रदेव बडे दुःखी हो अश्रुपात कर रहे थे, उस समय सुअवसर जान देव वर्ग उनके सन्निकट पुन. गये पर इन्द्रदेव ने बहुत समुझाने पर भी यही उत्तर दिया कि जब तक यह शूकरी हमारे साथ है तब तक हमें किसी वस्तु की कामना नहीं है। जब देवताओं ने उनकी शूकरी को भी मार डाला, तब इन्द्र भगवान का मोह छूटा और वह अपने शरीर को त्याग, हाय हाय करने लगे कि यह कैसे अधम योनि और कैसे पाशविक सुख में लिप्त थे।

ज्ञानी स्वामी रामतीर्थ कहते हैं कि मोह एक मोटा मनुष्य सा है जो गाडी के दरवाज़ा को रोके पड़ा रहता है और सब

को भीतर आने को निमन्त्रण देता है पर इतना अवकाश नहीं देता कि कोई भीतर जा सके। ऐसा ही तो ससारी मनुष्य का अन्त करण है जिसमें मोह महाराज वद्य स्थल को घेरे बैठे हैं और विवेक भक्ति इत्यादि को निमन्त्रण किया करते हैं और स्वय किसी को प्रवेश का अवकाश नहीं देते।

एक साहेब कहते हैं कि ये विषय हमारे ही बनाये हुए हैं अर्थात् यह कर्म रूपी दल जो शत्रु सा दु ख और सुख भोगने के लिये मस्तक पर रात दिन सवार रहता है उन्हें हमी ने मोह से पाला और पोसा है। ज्ञानी पुरुष जब मोह को पार कर जाता है तब वह शरीर राज्य के अधिपति के सन्निकट जाने के योग्य होता है।

भगवान कपिल के पिता जब तप करने को जाने लगे तो अपने पुत्र से यह प्रार्थना की कि जब तुम (कपिल) स्वय जगल को तप करने जाना तो अपनी माता को ऐसे सम्यक् रूप से ब्रह्म विद्या का उपदेश दे देना कि पुन विछोह के दारुण दु ख को सह सके। भगवान कपिल अपनी माता को ब्रह्मविद्या की शिक्षा भली भाँति देकर जगल को तप करने गये। उनकी माता पुत्र वियोग से ऐसी कातर हो गई कि बुद्धा पुराण कहता है कि वे एक क्षण न बैठ सकीं और अधीर हो कपिल कपिल चिल्लाती एक वृक्ष के नीचे से दूसरे के नीचे जाने लगीं। मोह से विवश, पुत्र कपिल का नाम लेते लेते इनको समाधि लग गई, ज्ञान का हृदय में उदय हो गया और शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लिया।

कहते हैं कि जब सीता की दारुण अग्नि परीक्षा के पश्चात् सब देवता भगवान रामचन्द्र जी से मिलने आये तो बुड्ढे

जिसमें लिखा पाया कि "शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि निरजनोऽसि ससार माया परिवर्जितोऽसि।" यह देख राजा क्षण भर में ज्ञानी हो, राज्य सिंहासन पर लात मारने अर्थात् छोड़ने को तैयार हो गया। उसने प्रातःकाल भाइयों से मुसकुराते हुए प्रणाम करके कहा कि यह सब राज्य आप लोगों का है और आप सब इसे भोगिये। यह सुन वे सब अचंभित हो बोले कि यह ज्ञान तुम्हें कैसे मिला? छोटे भाई ने सब कथा कह सुनाई। यह सुन सब के सब अपनी माता को बहुत बहुत धन्यवाद देकर साश्रु नेत्र कहने लगे कि वह तुम्हें कैसे उस अपूर्व ज्ञान से वंचित कर देती? हम सब भी तुम्हें यही ज्ञान देने आये थे और अब तुम्हें चैतन्य कर जंगल को जाते हैं।

जो ज्ञानराज्य को प्राप्त करना चाहता है, उसे निश्चय अर्जुन सा अपने इन्द्रिय और अंतःकरण में प्रविष्ट तन्मात्राओं की यावत् भावनायें हैं उन सब को अंतःकरण से या इस मोह के बसाये हुये वृहत् परिवार को एक एक करके दमन करना पड़ेगा। और ये सब ऐसे बेशरमे हैं कि यदि रोज आप इनकी गर्दन पकड़ कर इन्हें बाहर निकाल दें पर ये फिर भी बिना बुलाये द्वार पर खड़े ही रहते हैं।

भागवतकार कहते हैं कि मोह के डर से वह बच्चा जो आगे मलमूत्र से दुःखी हो मनाया करता था कि वह किस दिन इस नरक से छूटेगा, छूटने के समय कहता है कि वह जगत में न जाय तो भला है क्योंकि जगत में जाते ही मोह में पड़, ईश्वर भी भूल जाता है।

मोह की उत्पत्ति, सहवास तथा देखने और स्पर्श करने से होती है। जड़ भरत एक हरिन के बच्चे को नित्य खिलाते पिलाते

थे और उसे ऐसा पाला पोसा था कि जब वह जगल में खो गई तो उनके विलाप की कथा, सुनने से छोटे से छोटे आदमी भी हँस पड़ें कि ऐसे महर्षि ज्ञान सम्पन्न होते हुए भी एक हरिन के बिछुडने पर अपने प्राण त्याग करने को तैयार हैं। इसी से कहा गया है कि सग से मोह होता है और इस शरीर से मोह के बिना निकले विद्या का प्रवेश नहीं हो सकता। इससे "असग शस्त्र से" भगवान ने "इसे काटने को कहा है।" भगवान कृष्ण कहते हैं कि इसे ऐसे दृढ तौर पर काटना चाहिये कि पुन प्ररोहित न हो।

ज्ञान बिजली सा है जो चाहे थोडे ही काल के लिये आवे किन्तु सारे अन्त करण में उजेला कर देता है। ऐसे उजेले और दैवी सपत्तियों को देख वह अहर्निश आह मारने लगता है कि पुनरपि फिर वैसा समय आता। ऐसा तीव्र ज्ञान परमात्मा की कृपा से वा महात्माओं के आश्रमो में आता है और सदा के लिये मनुष्य को परमात्मा का सेवक बना देता है। प्रबोध चन्द्रोदय में भगवती मति शान्ति से कहती है कि "तब उस कुल में विद्या नाम राक्षसी उत्पन्न हुई और उसने अपने सकल परिवार को भक्षण कर डाला" अर्थात् अविद्या कर्म से विद्या की उत्पत्ति है। अविद्या ही के पेट में विद्या उपजती है और उपजने पर हनुमान वा अगस्त्य सा अविद्या के भावना रूपी लका वा महोदधि को देखते ही भस्म वा शोषण कर लेती है।

इस जगत में यावत् बड़े बडे कर्म हुये हैं वे मोह के त्यागने से ही साध्य हुए हैं। बच्चा जब प्रथम विद्या पढ़ने को जाता है तो यद्यपि मारे मोह के उसकी छाती एक प्रकार से विदीर्ण

ही हो जाती है पर तो भी वह मोह को त्याग कर विद्याध्ययन करने लगता है। पिता लोग चूँकि जानते हैं कि विद्या की प्राप्ति करने से सुख होगा इससे वे रोना विछोह इत्यादि सब बर्दाश्त करते हैं। ऐसे ही महात्माजन जब उनके हृदय में विवेक और श्रद्धा उपजती है तो वे मन के रोने को नहीं सुनते किन्तु उससे सीधे कहते हैं कि तू उस आत्मा के ठौर जा बैठ अपना पाठ पढ़, निष्प्रयोजन वृषभ सा विषय क्षेत्र में चरना छोड़ दे। मन चिल्लाता, छटपटाता, और सिर धुनता है पर वे उसकी नहीं सुनते।

मोह का किसी के हृदय से हमारी समझ में पूरी तोर पर हटना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि मोह ही सारे जगत की रक्षा और पालन करता है। मनुष्य से लेकर पशु पक्षी तक सब को वश में रखता है। जितना मोह यानी प्यार मनुष्य अपनी वस्तु या प्राणियों का करता है उतना ही उसे उसके विछोह में, जो निश्चय है, दुःखी और सन्तप्त होता है।

वह शहर या वह कस्बा जिसमें मंदिर नहीं है वह धार्मिक शहर नहीं है। ऐसे ही जिस अन्तःकरण रूपी राज्य में केवल विषय की उत्तुङ्ग अट्टालिकायें और रसना की बड़ी २ झीलें और अहंकार के बेहूदे प्रकाण्ड शरीर वाले पर्वत मात्र हैं और सारे जगत को पुनीत करने वाली ज्ञान गंगा नहीं है वह मनुष्य का शरीर चैतन्य शरीर नहीं है। महात्माजन कहते हैं कि मनुष्य और पशु में मेरी जान केवल इतना ही भेद है कि एक ईश्वर की प्रार्थना कर सकता है और दूसरा नहीं। जिस शरीर मंदिर में उपासक ने कभी ज्ञान की बत्ती नहीं जलाई, उस घर को ज्ञानी जन मनहूस कहते हैं। सांसारिक मनुष्य उस साँप सा है जो

शरीर में बसता है। उसके मुख की वायु तक विषैली है तब दाँत की क्या कथा। ऐसे मनुष्य के हृदय की बात जानना वैसा ही कठिन है जैसे अँधेरी कोठरी में से वस्तु का निकालना।

क्रेसेन्ड्रिया एक ज्ञानी विदुषी थी जो एक सघन वन में नदी के सन्निकट परम विचित्र पर्णकुटी निर्माण कर अपने वृद्ध पिता के साथ रहती थी। दैवात् एक दिन बादशाह जो अपने मन की रानी न पा, परम अप्रसन्न वदन रहता था, हरिन के पीछे दौडते दोडते उस कुटी के पास जा निकला जहाँ कि तपस्विनी क्रेसेन्ड्रिया की कुटी थी। देखता है कि उसका बूढ़ा पिता एक पलग झूलता पर तकिया लगाये खर्राटा मार रहा था और यह पलग में एक डोरी लगाये झुला रही थी। इस अपूर्व पितृ वात्सल्य को देख बादशाह क्रेसेन्ड्रिया के फूलों के सहज शृगार तथा सुन्दर कपोल से, हरिन वेधने के स्थान में स्वयं विद्ध हो गया। आतिथेय के पश्चात् राजा ने उस जगल की अपूर्व कन्यका से उसकी और उसके पिता के जीवन की सारी कथा सुनी। बादशाह ने निश्चय किया कि यदि मेरे योग्य कोई है तो क्रेसेन्ड्रिया है। सम्पत्ति रूपी प्रसूनों में क्रेसेन्ड्रिया जगली गुलाब सी है और विधाता ने निश्चय किया था कि इसका घ्राण करने वाला सिवाय बादशाह के और कोई न हो। यह हमारे आसन के अर्धभाग में स्थित होने के योग्य है। हम इसे निश्चय प्यार करेंगे। इस प्रकार मन की अनेक कामज उल्लासों में भीगते हुए राजा घर पहुँचा। पहुँचते ही अपने विवाह करने की खुशखबरी अपने प्रियजनों से और उत्कण्ठित बूढ़े मत्री से कहा। राज्य में सब राजा के इस शुभ विचार को सुन बडे प्रसन्न हुये। ज्योतिषियों के बताये हुए शुभ दिवस पर राजा अपने चुने पार्श्व वर्गों के साथ विवाह करने के लिये

उस सघन जगल की ओर चले। रास्ते भर में सब लोग अपने मन में घवडाते थे कि जगल में कौन सी रानी है जिसे ये विवाहेंगे, क्या किसी वृक्ष वा लता का तो पाणिग्रहण न करेंगे जो ऐसे वन में बिना समझे बूझे चले जा रहे हैं।

भगवान् प्रभाकर जब मध्य आकाश में लटक रहे थे और जीवों को अपने तीव्र अंशुओं से ऐसा सतप्त तृपित तथा शिथिल कर रहे थे कि सब आपस में कहते थे कि ऐसी बरात तो कभी देखने में नहीं आई। चक्षुओं से खोजते खोजते एक कुटी देख पडी। जब सबों ने देखा कि राजा उसी ओर चले जा रहे हैं तो सब के सब एक बार मनी मन में हँस पडे। पर जब सबों ने क्रेसेन्ड्रिया के रूप को देखा तो सब के सब उसके रूप और गुण से त्रस्त हो गये। कहानी कहती है कि बडे कहने सुनने से, हाथ और पैर जोडने से बूढ़े ने यह स्वीकार किया कि क्रेसेन्ड्रिया महाराज के अयोग्य हाथ को अपने पुष्प मयी पुनीतकरों से ग्रहण करे और उस जगल में बडी तैयारी से शादी हुई।

राजा क्रेसेण्ड्रिया को यद्यपि मानता था पर उसकी प्रजा इस नीच सम्बन्ध को नीच ही समझती थी। जब क्रेसेन्ड्रिया के लडका हुआ तो प्रजा बिगडने को थी, यह देख राजा ने क्रेसेन्ड्रिया से कहा कि लडका हमें दे दो ताकि हम इसे मरवा डालें जिससे कि विद्रोहाग्नि न भडके। क्रेसेन्ड्रिया ने बे समझे बूझे विरक्त सी राजा को लडका सौंप दिया। यों ही ५ या ६ लडके रानी के मरवा डाले। क्रेसेन्ड्रिया एक दिन राजा से कहने लगी कि सुनते हैं कि हमारे रहने से तुम सदा विद्रोहाग्नि के भय से विह्वल रहते हो। भला होगा कि तुम हमें पुनरपि मेरे पिता के पास भेज दो ताकि मैं अपने पिता की

पश्चिम अवस्था में सहायक हो स्वजन्म सुफल करूँ। राजा भी मनुष्यों के उपद्रव से कुछ ऐसा दुःखी हो गया था कि उसने क्रैसेन्ड्रिया का पुन अपने पिता की सेवा के अर्थ जगल जाना स्वीकार किया। क्रैसेन्ड्रिया जब पिता से मिली तो दोनो ऐसे सुखी हुए कि जान पडा कि क्रैसेन्डिया किसी वन्दी गृह से छूट कर आई है। उन दोनो ने वहाँ से राजा के लडको को विदा किया जो उस स्थान पर नियुक्त थे। राजा ने जब पुन विवाह किया तो दुलहिन को दिखाने को सीधे जगल सब बरातियो को लेकर गये। ईर्षा द्वेष और मोह से शून्य पवित्र अन्त करण वाली तपस्विनी क्रैसेन्ड्रिया ने सब बरातियो का ऐसा आतिथ्य सत्कार किया मानो उन सबो ने क्रैसेन्ड्रिया के विमुख कभी कुछ नहीं कहा था। अनाथ होते हुए भी उन सबों का ऐसा सत्कार उसने किया कि वे सब क्रैसेन्ड्रिया के उदार व्यवहार को देख उसे धन्य कहने लगे फिर सब राजा से बोले कि रानी होने के योग्य क्रैसेन्डिया ही हैं। कहानी कहती है कि राजा और प्रजा को क्रैसेन्ड्रिया के सन्मुख देख एक ने आकर राजा से निवेदन किया कि यह रानी जो आप विवाह लाये हैं आपकी लडकी है और आपके लडके जीवित हैं और अमुक राजा के यहाँ हैं उन्हें आप द्रव्य दे पुन क्रय कर सकते हैं। जगल में कई दिन के मगल के पश्चात् सब राजमहल को लौटे।

सारांश यह कि मोह में न पडने से मनुष्य बडे से बड़े दु खों को सहज ही में पार कर सकता है। परमात्मा का सब कुछ है, हमारा कुछ नहीं है, यह मोह के मारने का मत्र शास्त्रों में कहा हुआ है। कबीर कहता है "तेरा तुमको सोपता, क्या लागे है मोहि।" इस ज्ञान को अपनी गाँठ में रखने से निश्चय मनुष्य प्राकृत जनों की भाँति, विषय वा प्राणियों के विरह में

विलाप न करेगा। ज्ञानी यदि जगत को देखने जाता है तो वह अपने दामन को सम्भाले रहता है कि कहीं विषय अग्नि उसे जला न दे। रूप को सराहता है पर रूप से उसके हृदय में प्राकृतिक जनों की भाँति, रस वा राग नहीं पैदा होता। यदि ईसा की भाँति कुछ दिन के लिये दुष्टों को उपदेश देने भी जाय और जगत को अनेक यातना सहने पर, उसका यह मोह कि मूर्खों के उपदेश का परिणाम क्रोध और वैर होता है, जब दूर हो जाता है तब वह ईसा सा जगत-बाजार को छोड बिना रोये हुए अपने घर लौटता है। परशिया के कोई बादशाह आखेट करते हुए एक पहाड की घाटी में पहुँचे। उस पहाड में प्रवेश करते ही उन्हें सुरीली बंसी की धुन सुन पडी। चक्षु से चतुर्दिक अन्वेषण के पश्चात् कर्णों ने बताया कि उस मधुर सुर का प्रवाह पूर्व से हो रहा है। वहाँ गये तो देखा कि एक २४ वर्ष का युवक सिर के नीचे, कम्बल रक्खे आकाशकी ओर देखता बंसी बजा रहा है। बादशाह प्रसन्न हो उसके निकट बैठे तो उन्हें जान पडा कि यह एक गडेरिया है। राजा ने उपहास से जब पूछा कि इतनी विद्या पढ़ कर, तुमने ऐसी जीविका क्यों स्वीकार की तो उसने कहा कि मूर्ख साथियो से, और ईर्षा द्वेष रखने वाले मनुष्यो से मैं प्रायः इन सब का साथ अच्छा समझता हूँ। इससे इस पर्वत के एक कोने में हम दो भाई रहते हैं और क्षेत्र तथा पशुओं से जीविका निर्वाह हो जाता है, किसी धनी के द्वार याचना के लिये हाथ नहीं पसारना पडता।

बादशाह को बुभुक्षित देख अब्दुल्ला उन्हें कुटी में ले गया। दोनों भ्राताओं ने इस अनजान बादशाह का ऐसा आतिथेय किया कि वह नृपति अति प्रसन्न हुआ और अब्दुल्ला के साथ

चलने को कहा। जब अबदुल्ला ने शाही महलों को देखा तो उसे निश्चय हुआ कि यह बादशाह है। यह समझ कर कि बादशाहों की मैत्री प्राय दुखदाई हुआ करती है इससे पुनरपि बादशाह से घर जाने की प्रार्थना की, पर उन्होंने एक न सुनी। धीरे धीरे अबदुल्ला वजीर की पदवी पर पहुँचा और बादशाह का कुछ ऐसा विश्वासपात्र और मित्र हुआ कि इतरजन देख बडे दुखी हुये। राजा तो इन्हें मन्त्री पाकर निश्चिन्त हो ईश्वर की उपासना में समय व्यतीत करता था। बादशाह के मर जाने पर जब उनका बेटा राज्य पर बैठा तो अबदुल्ला ने चाहा कि इन्हें छोड कर घर लौट जायें पर लडके के रोने पर वे पूर्ववत् कार्य्य करने लगे। अबदुल्ला का एक बडा अच्छा मकान एकान्त में था, उसमें एक प्रशस्त दीवान खाना था जिसके भीतर वह किसी को जाने नहीं देता था। नादान बच्चे बादशाह से लोग कानाफूसी धीरे धीरे करने लगे कि उस दीवानखाने में जहाँ यह दाम्भिक ईमानदार साधू अबदुल्ला किसी को नहीं जाने देता वहाँ अशरफियो मोतियो और जवाहिरातों के ढेर लगे हैं पर कौन कहे? हुजूर यह समझते हैं कि वह जेसे देख पडता है वैसा ही है। आप और कुछ न कीजिये केवल उसके भीतर जाने के लिये आज्ञा माँगिये तो सब भरम आप ही खुल जायगा। निदान नादान बादशाह अपने नादान दोस्तों के साथ वहाँ जा पहुँचा। अबदुल्ला उन सब को देखते ही सब कथा समझ गया। बादशाह से अदब सलाम के बाद उसने पूछा कि ऐसे बेवक्त हुजूर ने क्यों कृपा की। बादशाह ने कहा कि मैं तुम्हारे उस दीवानखाने को देखना चाहता हूँ जिसमें तुम किसी को नहीं जाने देते। कपट हास्य करता हुआ अबदुल्ला, आंखो से उन सब को तुच्छ सा देखता हुआ भीतर ले गया। फाटक के खुलते ही सब देखते हैं

कि न वहाँ सोना, न चाँदी और न कोई जगत के सामान किन्तु कोने में एक चटाई बिछी हुई थी जिसपर एक जीर्ण कम्बल और उसकी पुरानी बसी रक्खी थी। अबदुल्ला ने बसी और कम्बल को उठाया और कहा कि मैं अब अपने घर जाता हूँ आपको और कुछ शका हो तो इस शरीर की भी तलाशी ले सकते हैं। यह सुन बादशाह ने बड़े विनय से अपने इस दुष्ट आचरण की क्षमा माँगी पर इस विरक्त पुरुष ने एक न सुनी और सीधे अपनी झोपडी को चला गया।

भगवान रामकृष्ण परमहस जी किसी एक जिज्ञासु के इस प्रश्न करने पर कि महराज माया के बजार में वा दरबार में जाना पड़े और व्यवहार करना पड़े तो कैसे जाय और व्यवहार कर आवे कि कर्म बन्धन में न पड़े? परमहस जी ने मुसकुराकर कहा कि यदि चद्दर के किसी कोने में परमात्मा भी बँधा रहेगा तो मोह के सब फन्दों से बचा रहेगा। निदान महाराज मोह और सन्तों की लडाई सतयुग से चली आती है, भेद केवल यही है कि महाराज मोह के सब सैनिक वीर एव प्रगल्भ और विवेक के सैनिक दुर्बल और कमजोर हैं जो तनिक सा मोह की घुडक में भागने के लिये तैयार रहते हैं। यदि विवेक सदा खबरदार न रहे तो तनिक सी गफ़लत में विवेक का सैकड़ों वर्ष का बना बनाया राज्य, महाराज मोह बिगाड देते हैं। इसी से इनकी हमने गीत गाई और बडाई की है जिसमें इस अन्त करण को छोड दें और इस दुर्बल तपस्वी पर सदा दया दृष्टि रक्खा करें।



प्रताप परिचय

चिन्तामणि स्वजनन कहँ, दुजन काल।
युवतिन मदन मुरतिया, भवध भुआल॥



चाहे वीर सिकन्दर के मरने पर प्रौढ़ा वीर पहाड़िन मेसिडोनिया (Macedonia) के, जिसने अपने आभरण के लिए जगत को दरिद्र कर डाला था, उसके आनन पर वैधव्यता के लक्षण न देख पड़े हों, चाहे वीर पराक्रमी सीजर को जिसकी तृष्णा पक्षी गरुड़ सदृश ससार मात्र के नृपति पक्षियों को कवलित करने को सदा मुख खोले ही रहती थी, उस को धीर और पराक्रमी पण्डितों के छूरों से सहस्रों आघात लगते देख, युवती रोम के कपाल में चाहे कृष्ण कुन्तल कोई रह गए हों या स्वैरिणी पेरिस (Paris) अपने पराक्रमी पुत्र निपोलियन को दीन दरिद्र हेलना के क्षुद्र दुर्ग में कैद सुन चाहे अधीर हो न रोई हो। या शेक्सपियर के मरने पर पण्डितों की प्राणवल्लभा भगवती कविता देवी चाहे न उदास मन अलंकार अपहृत सी देख पड़ी हों। या वाण के पश्चात् गद्य गाण्डीव धन्वा को उठाने वाला अर्जुन कोई न रहा, यह समझ स्वयंवर नायिका कविता के चक्षुओं से चाहे अश्रुपात न

हुए हों। पर हमारी यह अयोध्या, जिसकी सूर्य्य वंशियों ने अपने प्रतापी हाथों से नींव दिया था और दिलीप ने जिसके प्रताप वल्लरी को सारे जगत में फैलाया था, जिसके अर्थ पुनीत तपोधनी वशिष्ट के आज्ञानुसार तपोवन में सब कामनाओं की देने वाली कामधेनु की सौभाग्यवती सुपत्री को चरा वीर रघु-रूपी महाफल को प्राप्त किया था, पच जो दशरथ के दाय से दुर्धर्ष बन गई थी; प्रतापी दधीच के प्रौढ हड्डियो से बने महा धनुष को, जिसने दशानन के बल और अहंकार को मिथ्या सिद्ध किया था, ऐसे प्रकाण्ड धनुष को तृण सा दो खण्ड करने वाले, यदि कौशिल्या के प्राण, तो दशरथ के जीव, और सीता के प्रत्यक्ष हृदय, और वीर हठी विश्वामित्र के धनुर्विद्या के कुशल शिष्य, वीर होते हुये भी अहंकार अन्त्यज जिसके छाया को कभी नहीं स्पर्श किया, या क्रोध राक्षस जिसके अन्तःकरण देहली में कभी नहीं प्रवेश पाया, पण्डित होते हुये भी वनचर, सत्चरित्र होते हुये भी वालि हनन मिष प्रत्यक्ष कृष्ण चरित्र, नागरिक होते हुए भी वनौकसों का साथ देने वाले, क्षत्री होते हुए भी तपस्वी, लोक में भ्रमण करते हुए भी अलोकिक, अपने चरण रज के अद्भुत और पुनीत शक्ति से वर्षो प्रस्तर में बद्ध प्यारी अहल्या को चेतन्य करने वाले, लक्ष्मण के शक्ति रूपी महा दुख में आधुनिक मनुष्य सा विलाप कर महात्मा गरुड़ को सशय महा मोह कारागार या भुलनी वारी में भरमाने वाले दरिद्रता असत्य में, मूर्खता सीता के त्याग में, राजनीतिज्ञता वालि के हनन में, ऐश्वर्य्यता बन्दरो से भी तुच्छ जीवों द्वारा लंका के विजय में, अभिमानी समुद्र में सेतु बाँध उसे ज्ञान सिखाने और आधुनिक सेतुवों का उपहास करने वाले, त्याग राज्य लोभ तथा मोह में, सेवरी के स्नेह से सचित फलो को

सुखाद खा योगी और ज्ञानियों को भक्ति और प्रेम की उत्कृष्टावस्था दिखानेवाले, वदर भालुओं से मन्त्री का अति कठिन कार्य्य लेने वाले, त्रिलोकीनाथ होते हुए भी अयोध्या नरेश, और दिनकर सा असह्य प्रभा रखते हुए भी नेत्रों को कलानिधि सा तोप देने वाले, यदि राक्षसों और दुष्टों के वैरी तो तपस्वी और देवताओं के सुहृद मित्र, कैकेयी वचन-वज्र को प्रस्तर हृदय सा सहते हुए भी लक्ष्मण के दुःख में नवनीत सा पिघल जानेवाले, ईसा सा विनम्र ग्रीव, सरल सुग्रीव की ग्रीवा में तारा हार को पिन्हा पुन इसे उन्नत कधर करने वाले, लक्ष्मण सरीखा जाज्वल्यमान वाण को विभीषण विष में बुझा अभिमानी मेघनाद की ग्रीवा को कृन्तन कर दशानन के वीसो चक्षुवों से अश्रुधारा बहा सहस्राक्ष के नेत्रों के अश्रु को पोछने वाले, वीर महावीर अग्न्यास्त्र का प्रयोग कर, मान और अहकार का उत्तुग शिखर, लका, जो गगन तल को स्पर्श कर रही थी, उसे क्षण के क्षण में भस्मी भूत कर महावीर मिस अट्ट हास करने वाले, भगवती सीता के विरह में बालक सा विलख और उन्मत्त सा हर एक वृक्षों से और हस कोकिल मराल इत्यादि पक्षियों से अनेक प्रश्नों के करने वाले तथा वायु से अनेक प्रश्न पूछने से कि तूँ सर्व देश गामी है मेरी प्यारी प्राण वल्लभा जीवन मूल सीता कहाँ है ? निश्चय जानता होगा पर दुष्टता से बताता नहीं, ऐसी अनोखी लीलाओं को कर भगवती गौरी के हृदय में सशय उपजा भगवान त्रिशूलपाणि को दुःखार्णव में डालने वाले, मर्य्यादा और सत्य के अवतार, विह्वला अपूता शूर्पणखा की नाक लक्ष्मण से कटवा लका में विरोध के बीज बोकर खरदूषण को ससैन्य हनन कर वैर बीज को प्ररोहित करने

हुए हों ! पर हमारी यह अयोध्या, जिसकी सूर्य्य वंशि
अपने प्रतापी हाथों से नीव दिया था और दिलीप ने जि
प्रताप वल्लरी को सारे जगत में फैलाया था, जिसके अर्थ पु
तपोधनी वशिष्ट के आज्ञानुसार तपोवन में सब कामनाओं
देने वाली कामधेनु की सौभाग्यवती सुपत्री को चरा वीर
रूपी महाफल को प्राप्त किया था, एव जो दशरथ के प्राप
दुर्घष बन गई थी, प्रतापी दधीच के प्रौढ हड्डियो से बने
धनुष को, जिसने दशानन के बल और अहङ्कार को मिथ्या
किया था, ऐसे प्रकाण्ड धनुष को तृण सा दो खण्ड करने
यदि कौशिल्या के प्राण, तो दशरथ के जीव, और सीता
प्रत्यक्ष हृदय, और वीर हठी विश्वामित्र के धनुर्विद्या के
शिष्य, वीर होते हुये भी अहङ्कार अन्त्यज जिसके छाया
कभी नहीं स्पर्श किया, या क्रोध राक्षस जिसके अन्त
देहली में कभी नहीं प्रवेश पाया, पण्डित होते हुये भी वन
सत्चरित्र होते हुये भी वालि हनन मिष प्रत्यक्ष कृष्ण च
नागरिक होते हुए भी वनौकसों का साथ देने वाले, गृ
हुए भी तपस्वी, लोक में भ्रमण करते हुए भी अलौकिक,
चरण रज के अद्भुत और पुनीत शक्ति से वर्षो प्रस्तर
प्यारी अहल्या को चैतन्य करने वाले, लक्ष्मण के शक्ति
महा दुख में आधुनिक मनुष्य सा विलाप कर महात्मा
को सशय महा मोह कारागार वा भुलनी बारी में
वाले, दरिद्रता असत्य में, मूर्खता सीता के त्याग में,
तिक्तता वालि के हनन में, ऐश्वर्य्यता बन्दरों से भी तुच्छ
द्वारा लका के विजय में, अभिमानी समुद्र में सेतु बाँध
सिखाने और आधुनिक सेतुवों का उपहास करने वाले
राज्य लोभ तथा मोह में, सेवरी के स्नेह से, सचित

वाले, काकपक्ष रखते हुए भी काकपक्षी नहीं, यदि दुर्गन्धित पल्वलों से दुष्ट क्षुद्र और नीचों के लिये ज्वलन्त प्रदीप्त भास्कर, तो दीन विद्वान, तथा गुणियो के लिए कलानिधि सा सदा पोषण करने वाले, प्रताप धर्म्म सेतु के बाँधने वाले, दरिद्रता कार्पण्य में, उदारता निज वैरियों के पालन और पोषण में; यदि शेर सा निज अपमान पर क्रोध करने वाले, तो हिरण्यक सा विपत्ति में धीर और नीति चतुर, भूमि तल रूपी नरक में सदा के लिए प्रक्षित यवन कुलों को पवित्र सरयूजी में निक्षेप कर सुरलोक भेजने वाले, विद्युत जिन्हें मशाल देखाती तो वायु व्यजन करती, टेलीफोन दूतों वन सब ठौर घूमती, अग्नि जिनके उद्यान को सीचती और सदा सैकडो फव्वारा को चलातो, सहचर साहित्य और सखी दाक्षिण्य इनके उद्यान और महल को सजाते, विपत्ति महायुनिवर्सिटी के एक ही विचक्षण ग्रेजुएट, मर्त्यलोक के विश्वकर्म्मा, सर्व प्रिय अयोध्या नरेश महाराज प्रताप नारायण सिंह बहादुर के आधिपत्य में जगमगाती सी दिखाई पडती थी। किन्तु जिस दिन इस नव द्वार की देहली को छोड अपने धर्म्म, निष्ठा और कर्म्म के विमान पर, प्रसन्नता पूर्वक आरूढ हो स्वर्ग को पधारे, उस दिन तो यह नगरी बाल विह्वला विधवा सी हर एक अपने गवाक्ष खिडकी कपाट नेत्रों से सुबह से शाम तक रोती रही और किसी भाति न विराम लिया। इस विपत्ति ग्रस्त दुखी नगरी को देख काक से स्वार्थी पक्षी भी काँयँ काँयँ कर पूछने लगे कि कौन सो ऐसा विपत्ति पडी जो तुम्हारो अश्रुधारा नहीं रुकती है पर उसने इन प्रश्नों के उत्तर में मौन अवलम्बन के सिवाय और कोई उत्तर नहीं दिया, अधिक हठ करने पर अपने कुन्तलो को धूलि धूसरित कर आकाश से ज्ञानी सहयोगी

वाले, दशानन के दश शीश को काट दिशाओं को समर्पण कर देवताओं को सदा के लिए बन्दी गृह से उन्मुक्त करने वाले, दयालु भगवान श्रीरामचन्द्र के राज्य में इस पुरी ने एकबार अलकापुरी को भी लज्जित कर दिया था, पर जैसे किसी की भी जवानी स्थिर नहीं रहती वैसे ही इस नगरी की भी दशा हुई। कलियुग में तो यह ऐसी वृद्धा तपस्विनी सी हो गई कि इसके देखने से इसके पूर्वरूप का समझना सर्व्वथा मनुष्य बुद्धि के परे हो गया, यहां तक कि इसके पूर्व रूप के चित्र खींचने वाले पुनीत कोकिल, अरण्य वासी वाल्मीक की गिरा को लोग जवानी का स्वप्न सा समझने लगे, परन्तु यह पुनः उन्निद्रित सी, इन दिनों हमारे अवध के तालुकेदारों के मौलि मुकुट और उनके बुद्धि दाता तथाच उन्हें सनातन मार्ग में स्थिर रखने वाले, आधुनिक रईसों में पुरातन मर्य्यादा के एक ही उदाहरण स्वरूप, शैवी और वैष्णवी नदी को एक ही अन्त करण पर्वत से बहा वैष्णवों और शैवों को शिक्षा देने वाले, प्रतापी होते हुए भी ओस दया से क्लिन्न, महामहोपाध्याय होते हुए भी उपाध्याय नहीं, अयोध्याधिपति होते हुए भी अयोध्या नरेश नहीं, आनन्दी एपीक्यूरस का भी आनन्द की शिक्षा देने वाले, किरीट मुकुट धारण करते हुए भी कलियुग जिसके सिर पर नहीं रहता था, ऐश्वर्य्यवान होते हुए भी भक्त, शक्तिमान होते हुए भी दुराचारी नहीं, प्रकृत के उपासक होते हुए भी प्राकृतिक नहीं, मथुरा और वृन्दावन, एवं पुनीत प्यारे बरसाने का हर एक वृक्षों और मन्दिरों से स्नेह रखने वाले, अद्यावधि व्रज ठौर उस महापुरुष की महिमा को भक्ति-नेत्रों से देखने वाले, कभी कभी अपनी प्रबल भक्ति भावनाओं से अद्यावधि करील कजोमें कृष्ण की क्रीडा के पुनीत चिह्नों को पाने

उन्हें अन्तिम तिलाञ्जलि दी। उनकी दुलारी मसलिन तो मारे शोक के अपने आनन प्रसून को, नहीं उठाया। पञ्चवटी सत्य ही निरी पर्णवटी हो गई। आज यद्यपि भगवान दर्शनेश्वर की आरती हुई और घटा ने अपने मधुर स्वर से नित्य का गीत गाया पर ऐसा जान पडा मानों न आरती हुई और न घटा बोला। कुछ ऐसा जड और अचैतन्य उस दिन सारे राजसदन के प्राणी मात्र थे।

जैसे मनुष्य के चित्र के देखने से वह कैसा कुछ खूबसूरत था पता चलता है, वैसे ही उसके हृदय का उसके काव्य के देखने से होता है। यह भी ठीक है कि आत्मज के देखने से चाहे पिता उसका कैसा लायक था न ज्ञान हो सके पर काव्य और चित्र के देखने से तो निश्चय उसके हृदय और रूप का पूरा ज्ञान हो जाता है। इसीसे तो कवि अजर अमर होता है। हमारे महाराज चूंकि कवि नहीं थे इससे उन्होंने अपना प्रतिरूप राजसदन के वृहत प्रासाद में छोड दिया है। आँख वाला सत्यतः उसके देखने से जान सकता है कि वे कैसे कुछ तबियतदार और शऊरदार थे, इससे हम राजसदन को उनके द्वितीय शरीर का चित्र वा ईंट पत्थरों में एक प्रकार की उनकी कविता समझते है।

यद्यपि इस समय यह उदास और छवि हीन सा लख पड रहा है पर तोभी अश्रु पुर्ण होने से जैसा कि स्वर्णकार (गोल्ड स्मिथ) ने कहा है कि अश्रुपूर्ण प्रिया अधिक प्यारी लगाती है वैसे ही असहाय होने से यह नगरी और भी चित्ताकर्षक हो रही है। यह देखो जो लम्बे लम्बे दो व्याघ्र राज सदन के फाटक के ऊपर खडे, दाँत निकाले समय घडी से कहते हैं कि यद्यपि तूने हमारे महाराज को खा लिया पर निश्चय जान

के अन्तःकरण को भी मोह से ध्वान्त कर दिया। आज अश्व सुग्रीव का ग्रीवा नीचा हो गया, और बेटा भीमा * तो भीम नाद कर अचेत हो पृथ्वी तल पर गिर पड़ा, आज राजसदन के ऊपर कई रंग वाली, आकाश से सदा हँसने वाली पताका मारे शोक के क्षुण्ण हो गई और ग्रीवा झुका ऐसा आकाश में स्थित है मानो अपने जीवन को सर्वथा व्यर्थ समझता है, हस्तिमालायें अपने शुण्ड से उनके उद्गत प्राण को आकाश से अजगर सा खींचती और न पाने पर शुण्ड पटकतीं। मयूर श्रेणी उन्हें जाते हुए पथिक सा बुलाने लगीं और अधीर स्वर से पुकारती और फिर फिर पुकारती किन्तु निठुर अतिथि योगी ने पीछे नहीं देखा। सारस मण्डली चिल्ला चिल्ला कर कहती कि यहाँ आपको क्या कमी है? स्वर्ग लोक क्यों जाते हैं? क्या यहां स्वर्ग नहीं बन सकता? और बनस्पति वर्ग तो सचमुच उस दिन ओस अश्रुओं से घटों रोते रह गये, यद्यपि भगवान भास्कर के किरण रूपी मित्रों ने बहुतेरा समझाया पर वे सब रोना न छोड़े। सुम्बुल ने तो सदा के लिए गरदन उठाकर न हँसने का शपथ कर लिया, विलायती नीम तो ऐसी खिसा सी गई कि उस से कुछ कहते नहीं बनता था और ताड़ चिल्लाते और फड़फड़ाते मानो कहते कि आप हमें भी लेते चलिये क्योंकि हम ऊर्द्धलोक के वासी हैं। देखिये जगत से केवल जीवन निर्वाह के लिये सम्बन्ध रखते हैं इससे आप के साथ चलने योग्य हैं। बसन्त के पुष्पों में आपस में मीमांसा होने लगी कि अब हम किसके नेत्रोत्सव के लिये खिलेंगे, और यदि धृष्टता से मूँ भी दिखावें तो सच तो यह है कि दिखाते न बन पड़ेगा। गुलाब ने अपने सब फूलों को पृथ्वी पर गिरा बनस्पति लोक की ओर से

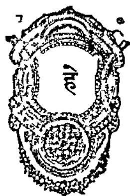
* सुग्रीव और भीमा, महाराज बहादुर के घोड़ों का नाम था।

भारतेन्दु और प्रेमघन का हृदय

अथवा

प्रेम पुष्पाञ्जलि

"कभी शायर नहीं मरता ।
बखोदा सच है य बात ॥"



हे साहित्य की सहचरियो ! हम सब मिलकर कविता कानन से कुछ पुष्प प्यारे प्रेमघनजी के कीर्त्ति स्तम्भ पर आओ चढावें, जिसमें वे भी प्रेमघनजी के अनुरागबिन्दु से सदा हरे भरे बने रहें । परमात्मा ने अपनी असीम कृपा दिखाने और प्रकृति के सौन्दर्य्य को सराहने के लिये कवियो को इस लोक में भेजा है कि वे सृष्टि कर्ता की महिमा गावें और भगवती प्रकृति देवी कैसी प्यारी हैं, इस विषय में कुशल कोकिल के सदृश प्रशसा कर, हम सबों को उपासक बनावें । धन्य ! कवि गण ! तुम्हारे सिवा और कौन बादल को दूत बना सकता है, वेदान्त सूत्र, चलते हुए झरनों से सीख सकता है या वृक्ष वासुदेव से इस लोक की कथा सुन सकता है या पुष्पों की शोभा देख उनके निकट जा उदास मन कह सकता है कि "फूली सही न फूल की ।"

दाद की याचना करते से समझ पड़ते हैं। इसे देख यह निश्चय होता है कि यदि इन्हें शाहजहाँ ऐसा ताजमहल बनाने को विधि ने मौका दिया होता तो वे निश्चय ऐसा महल बनाते जो एक प्रकार मूक काव्य सा होता।

यद्यपि अयोध्या नगरी इस समय शोकाकुल है और दुःखी दीन सी हो रही है पर हम जो यहाँ से दूर ज्ञान पर्वत पर बैठे हुए शोक-वायु से नहीं पीड़ित हैं ऐसा समझते कि त्रिशूल पाणि ने इन्हें युक्त समय में यहाँ से बाइज़्ज़त विदा किया है और ईर्षी द्वेषी नृपतियों को इनकी कीर्ति में कहीं से धब्बा या खम खाते देखने का दुष्ट अवसर नहीं दिया। सच तो यह है कि अब उनकी भी आँखें खुल गईं और वे समझने लगे कि यह एक महापुरुष था जो आनन्द पूर्वक अपने सब कर्म्मों को कर चिन्ता ऋण को कभी अपने सदन में न प्रवेश दे, सुख पूर्वक जीवनी को बिताया। सच तो यह है कि जिनने इस लोक में बिना चिन्ता और दुःख रोग के व्यतीत किया वे सत्य ही बड़भागी हैं। हमारे महाराज चूकी विपत्तिदाई का दूध पीए थे इससे राजलक्ष्मी-युवती इन्हें उन्मत्त कर, विवेक महाराज से वैर नहीं करा सकी। इसी से तो ये योगी सदृश शरीर गूदड़ी को निर्मोह सौंप, सब अन्तिम कर्मों को कर सरयूजी का दर्शन करते हुए अपने प्यारे अभीष्ट लोक को पधारे।

महाराज की जीवनी से हमको दो सिद्धान्त समझ पड़े, प्रथम तो यह कि भगवान की पूजा और भक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती, दूसरा यह कि ज्ञान का कुछ अंश भी यदि मनुष्य को प्राप्त हुआ हो तो वह सुख पूर्वक तिमिर आच्छादित संसार को पार कर ले जायगा।

के कलम से बहती है या तुकबन्दों की बुभुक्षा से अथवा भगवती स्मृति देवी और उनकी सहचरियों के आवाहन से नहीं बन सकती किन्तु उस अमर आत्मा की सतत आराधना करने से, जो कि वाणी और विज्ञान को विभूषित कर देता है और अपने दूतों द्वारा अपनी यज्ञशाला की अग्नि से उस कवि की आत्मा को पवित्र कर देता है जिसे वह कवि बनाना चाहता है।

सुलेखक हेमरटन ने कवियों को दो कक्षा में विभक्त किया है। एक तो वे जो किविता को ईश्वर प्रेरित वा आकस्मिक उच्छ्वास समझते हैं और कविता के स्वत प्रवाह की प्रत्याशा किया करते हैं और दूसरे वे जो प्रयत्न करते हैं कि जिसमें कि वह धारा प्रवाहित हो। हेमरटन का तात्पर्य्य यह है कि कविता क्षेत्र के दो प्रकार के कृषिकार होते हैं—एक तो वे जो कि भारतवासियों की तरह वर्षा पर निर्भर रहते हैं और दूसरे वे जो अमेरिकनों के सदृश अपने बल और पौरुष से पर्य्याप्त जल का प्रबन्ध कर लेते हैं। हेमरटन कहता है कि पहली कक्षा के कवियों से दूसरी कक्षा वाले कहीं अधिक लिख सकते हैं।

प्रेमघनजी और भारतेन्दुजी इन्हीं दो प्रकार के कवियो के उदाहरण हैं। जिस समय "वाराङ्गनारहस्य नाटक" रूपी महा फाटक खुला तो उसे देख कर सब लोग विस्मित हो गए परन्तु कुटिल विधि की कुचाल से कुछ ऐसी ससार की हवा चली की बजाय मस्ती के बदमस्ती पैदा हो गई। बाबू हरिश्चन्द्र को जब सचित लक्ष्मी के निकल जाने पर अपने सहोदर का भयकर स्वरूप देख पडा, यानी जब वह किनारे कस हो गये, तब भी वे योगी जी बैठे लिखा ही किए और इस उत्पात तूफान का उनके कवित्व रूपी वृक्ष पर कुछ भी असर न पड़ा। उनकी इस विलक्षण गति को देख कर विचक्षण डाकूर

बुध जन सच कहते हैं कि जीते जी कोई किसी को अच्छी तरह नहीं जान सकता क्योंकि दुर्गुणों का डिठौनो लगा रहता है और हम सब उनके गुणों पर नजर नहीं लगा सकते, किन्तु जब वह चला जाता है तो वह सकलङ्क चन्द्र, मृगलाञ्छन बन जाता है और कविजन उसकी प्रशसा करने लगते हैं।

प्रेमघनजी मस्ती के बडे कायल थे, वे कहा करते थे, कि चोट लगने पर आह निकलती है और उसी आह रूपी भाप से कविता "कादम्बिनी" बना करता है, परन्तु मनुष्य तो काल का या समय का अथवा भाग्य का दास है। विधि विडम्बना जैसी चाहती है, वैसी ही नाच नचाती है उसी की आज्ञा से वह गाता और रोता है। यदि प्रेमघन जी से कोई पूँछता कि आजकल कविता का झरना क्यों बन्द है तो वे कहते—

"कहो प्रेमघन प्रेम कहानी।
कैसे किसे बताऊँ॥"

जैसे बसन्त में जिस प्रकार सामा दामा दहियर गाते हैं वैसा इतर ऋतुओं में नहीं, वैसे ही जब प्रकृति अपने आनन्द के प्याले को लेकर सामने खडी होती है, तब कविजन कविता के गीत गाते हैं। प्रेमघन जी सदा कहा करते थे कि कविता मन की मौज है, भावना का प्रवाह है, जो कवि के आधीन नहीं। किन्तु जगदीश्वर जब सौख्यो और सुखो की "कादम्बिनी" दिखाता है तब मन मयूर पिहिकने लगता है और ग्रैमोफोन के रिकार्ड सा कवि उसे पदबद्ध कर देता है। वे कहा करते थे कि बलात् कोई कविता नहीं हो सकती और अगर होगी तो वह, कविता कहने योग्य भी न होगी। महाकवि मिल्टन को भी यही सम्मति थी कि अमर कविता, यौवन के उमङ्ग से अथवा सुरा के सङ्ग से जैसा कि किसी शृङ्गार प्रिय

पुरुष जिनकी जिह्वा से "गिने पद बिना विश्राम के ढलते चले जाते हैं"। मैं तो कवियों को चेतन्य सगीत तन्त्री मानता हूँ, जो मनुष्य को क्षण के क्षण में समाधिस्थ कर सकते हैं। क्या जब हम सब शेक्सपियर या कालिदास को पढते हैं तो सकल जगत के दुःख सुख को भूल उन्हीं में तनमय नहीं हो जाते? सुकरातस कहता है कि कवि तो आत्मा में बैठ कर लिखता है, और वह ईश्वर का एक प्रकार का लेखक सा है, जो लिखता है पर स्वयम् नहीं जानता है कि क्या लिखता है।

प्रेमघन जी का हृदय तो कमल सा, मासिक तथा साप्ताहिक पत्र में मुकुलिति है, जिसको प्रफुल्लित कर नागरी प्रेमियों के सामने लाने में कुछ समय लगेगा। किन्तु जैसे आषाढ, गगन मण्डल को चञ्चला से चित्रित कर, प्रतिक्षण अपनी प्रेम प्रतिध्वनि से कृषकों के हृदय को प्रफुल्लित कर देता है वैसे ही हमारी समझ में 'आनन्द कादम्बिनी' के दिन थे और जैसे शरदऋतु में नदियां शान्त और निर्मल हो जाती हैं ऐसा ही 'नागरी नीरद' का समय था।

यह ठीक है कि मस्ती, आनन्द का प्याला है जिसको जब प्यारी प्रकृति, सहचरी सी बनकर पिलाती है तभी कवि बुलबुल चहकता है। जिन्हें प्रकृति मौका नहीं देती, वे पंडित होते हुए और शक्ति रखते हुए भी कुछ लिख पढ नहीं सकते। जैसा कि महात्मा ग्रे (Gray) ठीक कहते हैं :—

Full many a gem of purest ray serene
  The dark unfathom'd caves of ocean bear,
Full many a flower is born to blush unseen
  And waste its sweetness in the desert air,

राजेन्द्रलाल मलिक ने कहा था कि "हरिश्चन्द तो राइटिङ्ग मेशीन हैं।" यही कारण है कि उन्होंने इतनी थोडी आयु में भारतेन्दु की पदवी लेली। इसमें सन्देह नहीं कि समय का उपयुक्त रीति से व्यवहार करना सचमुच बडे ज्ञानी का काम है। लोक की गति बडी विषम होती है, वह अपनी टेढ़ी मेढ़ी चाल चलेहो गी, आपकी इच्छानुसार चलने की नहीं। यह ठीक है कि लोक आपको इच्छानुसार नहीं बन सकता पर यदि चाहें तो आप उसके अनुसार बन सकते हैं, किन्तु यदि आप जगत के विरुद्ध आचरण पर, अवसर पाकर दाॅव लेना चाहते हैं तो किताबों के भस्म करने का भी समय आया ही करेगा।

कविजन कुछ ऐसे विलक्षण प्रकृति के हुआ करते हैं कि प्लेटो (Plato) के समान शान्त प्रकृति के मनुष्य ने भी इनकी मस्ती की चाल देखकर इन सबों को अपने प्रजातन्त्र (Republic) से निकाल देने का नियम बनाया क्योंकि उनकी कविताओं ने देवताओं को तुच्छ और मर्य्यादा शून्य कर दिया और जनता को भूत प्रेतादिक की भयानक कथा सुनाकर वीरता शून्य कर दिया था और तत्पश्चात् प्रेम की कहानियों से उन्हें राज्य सम्हालने के योग्य न रखा। किन्तु जब कोई अपने देश को छोड कर परदेश में जाता है तो उसकी विलक्षण चालों की प्राय हँसी और खिल्ली उडाई जाती है। कहते हैं कि सिंह भी जब अपना जङ्गल छोडकर नगर में आता है तो अपमान का पात्र होता है और ऐसी ही कुछ गति वेदान्ती प्लेटो की लोगों ने, इस नियम के कारण की। ये शान्त निरस वेदान्ती रसीले कवियों का हाल क्या जानें। मेरी समझ में तो दुनियां ही उजाड थी, यदि कवि न होते। धन्य हैं ये

पुरुष जिनकी जिह्वा से "गिने पद विना विश्राम के ढलते चले जाते हैं"। मैं तो कवियों को चेतन्य सगीत तन्त्री मानता हूँ, जो मनुष्य को क्षण के क्षण में समाधिस्थ कर सकते हैं। क्या जब हम सब शेक्सपियर या कालिदास को पढ़ते हे तो सकल जगत के दु,ख सुख को भूल उन्हीं में तनमय नहीं हो जाते? सुकरातस कहता है कि कवि तो आत्मा में बैठ कर लिखता है, और वह ईश्वर का एक प्रकार का लेखक सा है, जो लिखता हे पर स्वयम् नहीं जानता है कि क्या लिखता है।

प्रेमघन जी का हृदय तो कमल सा, मासिक तथा साप्ताहिक पत्र में मुकुलिति है, जिसको प्रफुल्लित कर नागरी प्रेमियो के सामने लाने में कुछ समय लगेगा। किन्तु जैसे आषाढ, गगन मण्डल को चञ्चला से चित्रित कर, प्रतिक्षण अपनी प्रेम प्रतिध्वनि से कृपकों के हृदय को प्रफुल्लित कर देता है वैसे ही हमारी समझ में 'आनन्द कादम्बिनी' के दिन थे और जैसे शरदऋतु में नदिया शान्त और निर्मल हो जाती हैं ऐसा ही 'नागरी नीरद' का समय था।

यह ठीक है कि मस्ती, आनन्द का प्याला है जिसको जब प्यारी प्रकृति, सहचरी सी बनकर पिलाती है तभी कविबुलबुल चहकता हे। जिन्हें प्रकृति मौका नहीं देती, वे पडित होते हुए और शक्ति रखते हुए भी कुछ लिख पढ नहीं सकते। जेसा कि महात्मा ग्रे (Gray) ठीक कहते हैं :—

Full many a gem of purest ray serene
  The dark unfathom'd caves of ocean bear,
Full many a flower is born to blush unseen
  And waste its sweetness in the desert air,

इस से एकान्त पूजा के योग्य था। विदर्भ नगर की कन्याओं को यह विश्वास था कि भगवती अम्बिका सदा योग्य पति दिया करती हैं इस से प्रायः कन्यायें उनसे योग्य वर के लिए याचना किया करतीं थीं।

आज रुक्मिणी भी भगवती अम्बिका से कहने आई है कि यदि वर मिले तो श्रीकृष्ण, नहीं तो तपस्विनी का जीवन व्यतीत करना उसे अभीष्ट है। क्योंकि शिशुपाल या रावण के अङ्क में जाना तो मृत्यु का सामना करना है। निरा अज्ञानी मूर्ख भाई, कृष्ण सूर्य के समक्ष इस खद्योत की स्तुति क्यों करता है? कहाँ वे उदारता और प्रेम के भाण्डार और कहाँ क्षुद्र शिशुपाल गुणों में दरिद्र रकसा। योंही मन में तर्क वितर्क करते उस मन्दिर में प्रवेश किया।

यह ठीक है कि आर्त और तिसपर प्रेमी जो प्रार्थना और पूजा कर सकता है, वैसा जिज्ञासु वा प्रेमी नहीं कर सकता, क्योंकि आर्त प्रेमी के घर में आग लगी है और वह पड़ोसियो को बुलाकर, निराश हो देखता है कि वे कोई बुझाने में समर्थ नहीं है, इससे वह सीधे ठाकुरजी के घर दौड़ता है और अपनी कामना रूपी प्रार्थना उनके समक्ष कह गुजरता है। विपत्ति-पण्डितों के तीव्र वेत की वेदना से उसका बालक-मन एकाग्र भाव से ठाकुरजी के समक्ष बैठ जाता है। ऐसी अवस्था में अधीर रुक्मिणी मन्दिर में घुसी। भगवती को देखते ही उसके दोनों नेत्रों ने अपने अश्रु प्रवाह से उनके चरण को आर्द्र कर दिया। बड़े प्रेम से पुष्पाञ्जलि और नैवेद्य चढ़ा आरती करने लगी, किन्तु बार बार उसे यही भ्रान्ति होती कि वह कृष्ण की ही आरती कर रही है, तब वह दुखी हो कहने लगती कि अरे दुष्ट मन! उपासना काण्ड तक तो भला तूं कृष्ण को विस्मृत रक

आ, यह कह भगवती के चरणों पर गिर पड़ी और प्रार्थना करने लगी कि हे अम्बे ! यदि कृष्ण इस भावी स्वयम्बर में हमें वरें तो दो सहस्र विप्र आपके निमित्त खिलाऊँगी और एक लक्ष का मुकुट चढ़ा आजन्म आपकी भक्त बनी रहूँगी । इसी भाँति उसका मन प्रार्थना करता निश्चेष्ट हो गया । सचेत होने पर, विलम्ब होने के भय से निज भवन को प्रस्थान किया ।

(२)

दस बज गये हैं महाराज भीष्मक अपने राज भवन में सिंहासन पर देदीप्यमान हैं ।

भीष्मक—(अपने पुत्र रुक्म से) यदि सब राजाओं के यहाँ स्वयम्बर का निमन्त्रण जा रहा है तो द्वारिका में कृष्ण के यहाँ क्यों न भेजा जाय ?

रुक्म—कृष्ण कोई राजा नहीं है । आभीर के घर पाला पोसा गया है । मारे भय के द्वारिका में समुद्र की खाई में रहता है। कोई उसे नन्द का बालक कहता और कोई वसुदेव का । ऐसे वर्णसङ्कर के यहाँ निमन्त्रण भेजना, मैं अपना अपमान समझता हूँ और बहिन को व्याहना या उसका चरण पूजना, यह तो मैं मरने के भय पर भी नहीं करूँगा ।

भीष्मक—हठ का परिणाम प्राय भला नहीं होता । हम नहीं समझते कि तुम कृष्ण को कैसे मनुष्य समझते हो । उनके चरित्र दैवी, कर्म दैवी और पराक्रम विष्णु सा प्रतीत होता है । न जाने तुम क्यों ऐसे पुरुष से ऐसा द्वेष रखते हो ।

रुक्म (क्रोध से)—चाहे जो कुछ हो । मैं उनको इस उत्सव में न आने दूँगा और न आपको उनके यहाँ अनुचर भेजने की अनुमति दूँगा ।

भीष्मक ने बहुत समझाया पर नादान रुक्म एक न माना। यद्यपि बुड्ढे ने यह भी कहा कि यदि तू न निमन्त्रण भेजेगा तो क्या समझता है कि किसी भाँति कृष्ण को न ज्ञात हो जायगा। रुक्म ने अपने सब अनुचरों को डाट दिया था कि यदि किसी भाँति कृष्ण को इस स्वयम्वर का पता चला तो हम प्राण दण्ड देंगे।

(३)

चाँदनी रात्रि है। रुक्मिणी बैठी है, और मन में विचार कर रही थी कि नारद जी ने कहा था कि मैं लक्ष्मी का अंश हूँ, इस से कृष्ण ही हमारे कर को ग्रहण करेंगे। पर सुनते हैं कि हमारा नालायक भाई कृष्ण को निमन्त्रण भी नहीं देना चाहता और विवाह की कौन कथा। हमारी प्यारी सखी चमेली कहती थी कि उसने सारी प्रजा को डटवा दिया है कि कोई इस प्रिय सन्देश को ले द्वारिका न जाए।

रुक्मिणी रात्रि भर पर्य्यंङ्क पर निराहार पड़ी यही सोच रही थी कि किस प्रकार कृष्ण के सन्निकट सन्देश भेजें। कहते हैं कि भगवान कृष्ण सर्वज्ञ है, प्रयतात्प हारी हैं तो भला इस दीन दुखिया के दुख को क्या न हरेंगे ? शार्दूल कृष्ण कैसे शिशुपाल शृङ्गाल को अपना भोज्य ले जाने देंगे। वैनतेय यदि आते तो निश्चय मेरे सन्देश को पहुँचा देते, वा कहीं घूमते घामते ब्रह्मचारी हनुमान जी मिलते तो निश्चय इस अभागिन की कथा सुन सीधे कृष्ण से मेरे दुःख को निवेदन करते। असहाय रुक्मिणी का मन विचारते विचारते अधीर वा उन्मत्त सा हो रहा था। ऐसी अवस्था में कभी पवन से हाथ जोड़ती और कहती कि तुम्हारी गति अव्याहत है, तुम हमारे सन्देश को भगवान के चरणों में पहुँचा दो, उपकार करना

महा पुरुषों का सहज धर्म है। तुम जगत के पालक पोषक हो, इससे इस दुखिया की भी कथा सुनो। पर वाह! तुम ठहरते भी नहीं, भागे चले जा रहे हो, जिसमें ये सब दीन वचन तुमारे कर्णपटु में न पड़ें, यह तुमसे महात्मा को नहीं सोहता। तुम्हारे पुत्र ने विरह से कातर और व्याकुल भगवान रामचन्द्र को सीता की रेख दी थी, पर आप एक भी नहीं सुनते और निर्दयी पुरुष से भगे चले जा रहे हो। महात्मा पुरुष के क्या यही आचरण है? योंही चिन्ता से व्याकुल भगवती रुक्मिणी नक्षत्र गणों से कहती "तुम देख रहे हो, जरा मौन व्रत छोड़, कृष्ण से मेरा सन्देश भी कह देते। ओ हो! यह भगवान सप्तर्षि हैं, येही लोग सब भगवती पार्वती के प्रेम की परीक्षा करने गए थे। आइए यदि हृदय में सिवाय कृष्ण के और भी कोई हो तो मेरे सन्देश को न ले जाइये, नहीं तो कृपा कर आकाश गंगा में स्नान कर भगवान के समीप इस दुखिनी का सन्देश पहुँचा दीजिये। योंही रात्रि भर मनमानी प्रार्थना करते, रात्रि व्यतीत हो गई।

प्राची दिशा में किंचित लालिमा आ गई। मसजिद में रहने वाले मुल्ला सा भुजंगी ठाकुरजी की बाज देने लगी ताकि अध्यात्म योगी उठें, और अपनी आत्मा नगरी को पुनरपि प्रस्थान करें। अरुणशिखाने अरुण प्राची के सौन्दर्य्य की प्रशंसा में गीत गई। प्राण वायु यद्यपि सबके कपड़ा को और शरीर को ठण्डा किया पर रुक्मिणी के चिन्ता से सन्तप्त शरीर वा उसके मन को ठण्डा न कर सका। भगवान अंशुमाली के अंशुओं से दिशाएँ स्वर्णमयी हो रही थीं, पर रुक्मिणी को प्रात कालीन शोभा दुखदाई हो रही थी। प्राची दिशा में वर्न पुरातन पुरुष सूर्य्य का दर्शन कर कहने लगी, १फ़ ३+६ सर्वसाक्षी सब

कहते हैं, तो भला कोई एक ऐसा पुरुष आपने नहीं देखा है कि जो मेरे इस पत्र को द्वारिका निवासी कृष्ण के यहाँ ले जाता।

सूर्य्य की अद्भुत महिमा है, और आर्त की प्रार्थना की कैसी कुछ अद्भुत सिद्धि होती है, कि आँख खोलते वह देखती है कि प्रत्यक्ष पवित्रता के स्वरूप त्रिपथ गामिनी गंगा सी त्रिपुण्ड लगाये, छिन्न शिखा, बगल में आसनी और हाथ में ब्रह्म दण्ड लिए, विप्रदेव की मूर्ति दीख पड़ी। रुक्मिणी की आंख जैसे ही इस विप्र पर पड़ी, वैसे ही बुद्धि देवी ने कहा कि यह ब्राह्मण हमारे पत्रिका को निश्चय द्वारिका पहुँचावेगा! भगवती ने ब्रह्मचारी जी को बड़े प्रेम से दण्डवत किया और कहा कि इस मर्त्यलोक के देवता, आपी सब हैं। यदि राजा अन्याय करता है तो प्रजा सदा विप्रदेव ही के घर प्रार्थना लगा अपना काम साध लेती है। मेरा दुष्ट भाई मेरा स्वयम्वर करना चाहता है, और कृष्ण को नहीं निमन्त्रण देना चाहता है, प्रत्युत प्रजा को मना किया है कि वह हमारी ओर से भी किसी प्रकार से स्वयम्वर में उपस्थित होने की प्रार्थना न पहुँचाएँ यहाँ तक कि यदि कोई जाय तो उसका प्राण लेने को तत्पर है। पर आप तो देवता हैं स्वेच्छाचारी हैं, सदा परोपकार के लिए आप सब कटिबद्ध रहते हैं, यदि इस छोटी सी पत्री को आप द्वारिका में जगत पूज्य कृष्ण के सन्निकट पहुँचा देते तो निश्चय मैं आपके उपकार से वैसे ही बाधित रहती जैसे भगवान राम चन्द्रजी हनुमानजी के प्रत्युपकार से थे।

ब्रह्म सूर्य्य को अपने त्रिकुटी में दर्शन करने वाले विप्रदेव की आत्मा सुनते ही अट्टहास करने लगी और स्मित कर कहने लगे मैं तो स्वयम् व्रज, गोपिकाओं के मन को चुराने वाले और मथुरा में कंस को मार, दूसरे को राज्य दे, स्वयं समुद्र के तट

जा निज रूप में स्थित कृष्ण का दर्शन करना चाहता था पर विधाता ने कोई ऐसा अवसर न दिया कि उस अकर्मपुरुष के दर्शन होते। आप घबड़ाइये मत, मैं निश्चय आपकी पत्री और सन्देश को नन्द के दुलारे कृष्ण के समक्ष ले जाऊँगा। कहते हैं कि भगवती रुक्मिणी ने विप्रदेव के चरण पर पाँच अशर्फी रख, अश्रु पूर्ण नेत्रों से हाथ जोड़ कहने लगी कि द्वारिका निवासी कृष्ण से कह दीजियेगा कि यदि मेरे स्वयम्वर के पूर्व, जो पूर्णमासी को पड़ता है, न आ जावेंगे, तो मैं निश्चय उनके चरणों को स्मरण करती हुई और हंस सी उनकी कीर्त्ति को गाती, अपने प्राण का त्याग करूँगी।

(४)

सूर्य्य के तीव्र अंशों से व्याकुल विप्रदेव जी का मुख प्रातः-काल के सूर्य्य सा लाल हो रहा था। स्वेद से क्लिन्न गात्र एक कुसुमित अमराई में पहुँचे, जहाँ कि कोकिल मिस रसाल मानो विप्रदेव जी से प्रार्थना कर रहे थे कि कुछ काल के लिये वे इस जड़ जीवनी को भी सफल करें। आमोद के प्रेमी भ्रमर कुल के झनकार से अनहद नाद की समा आ रही थी, वायु का अन्तःकरण ऐसा सुवासित रसाल की मञ्जरियों से हो रहा था कि हर एक श्वास में विप्रदेव जी ऋतुराज वसन्त को धन्यवाद देते हुए, एक वृक्ष के मूल के नीचे बैठ गये। परोपकार करना भी एक प्रकार से हमारी समझ में तप ही है। नहीं तो कहाँ तपस्वी और कहाँ दूत कार्य्य? मेरे पाँव तो ऐसे थक गये हैं कि इतनी ही दूर के चलने से वे प्रार्थना करते हैं कि यदि इस अमराई के पश्चात् ही द्वारिका होती तो भला होता।

सुनते हैं कि कन्हैया जी के सन्निकट बहुत सी रानियाँ हैं तब भला तृप्त आत्मा श्रीकृष्ण रुक्मिणी के पुकार को क्यों सुनेंगे। अब तो केवल रुक्मिणी के अचल प्रेम का मुझे भरोसा है। यदि उसका प्रेम कृष्ण को खींच ले जाय तो खींच ले जाय; मैं सिवाय पत्री देने और हाथ जोडने के और क्या कर सकता हूँ। लेकिन महात्मा लोग कहते हैं कि श्री कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। ब्राह्मण, और तपस्वी का कभी अपमान नहीं करते और जैसी प्रेममुग्ध रुक्मिणी हो रही है, ऐसों की प्रार्थना न स्वीकार करना शास्त्र विरुद्ध भी है। इस प्रकार मनन करते हुए विप्रदेवजी हाथ की तकिया लगा, लेट गये और भगवती निद्रा के वश में हो गये।

आकाश में भगवान कृष्ण के दर्शन कर, द्वारिका से लौटे भगवान सहस्राक्ष मातलि से कहने लगे कि वह अग्नि के पुञ्ज सा सोता हुआ ब्राह्मण क्या तुम देखते हो। तुम इसे नहीं जानते कि भगवती रुक्मिणी का प्रेम पत्र वा हृद्गत भावना का प्रत्यक्ष आदर्श लिए हुये यह ब्राह्मण, मार्ग के परिश्रम से शिथिल सो रहा है। स्वर्ग पहुँचा कर तुम प्रच्छन्न रूप से आ, इन्हें किसी भाँति द्वारिका पहुँचाओ, जिसमें पूज्य ब्रह्मचारी जी को कष्ट न हो।

ब्रह्मचारी जी ऐसे स्वस्थ मन सोये कि जब आँख खोला तब देखा कि दिन भर की यात्रा से थके अतएव परिश्रम से लाल, नारङ्गी सा, सहस्र रश्मि शिथिल हो रहे थे। पश्चिम दिशा प्रत्यक्ष गुलाल उडा रही थी या स्वर्णकार की रानी सी स्वयं स्वर्णमय हो रही थी या इन्द्रजालिक सा कुञ्ज, पृथ्वी और सारे आकाश को स्वर्ण सी कर दिये थी। विप्रदेवजी ने भगवान सूर्य्य को अस्त होते देख कमण्डल को कूप से

भर सन्ध्या में प्रवृत्त हुए। गगन के चक्षु सूर्य को जब जलाञ्जलि दे और प्रणाम कर, स्वस्थ मन भगवती गायत्री को जपने लगे, तब इन्द्र देव को अमरावती पहुँचा छोटे से रथ पर आकाश से मातलि आकर, ब्रह्मचारी जी के सन्निकट खड़े हुए। रथ के घर घराहट तथा अश्वों के खुरों के पीटने से ब्रह्मचारी जी की समाधि टूट गई। चतुर मातलि रथ से उतर, अपने पात्र को रथ से निकाल, कूप से सन्ध्या के अर्थ जल निकाला और जब सन्ध्या समाप्त की तो विप्रदेव से पूछा कि वे कहाँ जायँगे? यदि द्वारिका चलते हैं तो हमारे साथ चलिये मैं द्वारिका धीश कृष्ण के दर्शन को जा रहा हूँ। यह सुनते ही विप्रदेवजी रुक्मिणी के तप की और कृष्ण के ऐश्वर्य की सराहना मन ही मन में करने लगे और कहा कि आप निश्चय मेरे ऊपर कृपा कीजियेगा यदि मुझे किसी भाँति थोड़े काल में द्वारिका पहुँचा दें, क्योंकि भगवती रुक्मिणी का सन्देश पत्र जो मेरे पास है वह कृष्ण से क्षण के क्षण में मिलने के लिए उत्सुक है। "आप निश्चय प्रात काल के सूर्य को द्वारिका पुरी को रक्षित करते हुए और रत्नाकर के लहरों में स्नान कर निकलते हुए देखियेगा।" निदान दोनों महात्मा रथ पर चढ़े।

विप्रदेव जी ने जब देखा कि रथ पृथ्वी छोड़ आकाश मार्ग से जाने लगा तो ये कहने लगे कि ऐसा रथ तो केवल देव लोक वालों के पास होते हैं या यह कोई यम का दूत है जो हमें इस बहाने से सजीव यम के सन्निकट ले जाना चाहता है, पर आकृति से तथा इसके बातों से ऐसा प्रतीत नहीं होता। यम के दूत प्राय भयङ्कर हुआ करते हैं और उनके नेत्र से क्रौर्य्य की चिनगारियाँ फूटा करती हैं, स्नेह से स्निग्ध उनके नेत्र नहीं हुआ करते। देवता होने से मातलि विप्रदेव के हृद्गत भाव-

नाओं को जान किंचित कपट हास्य कर उनके मन की वृत्तियों को हटाने के लिये कहने लगे कि देखिए पूर्व में भगवान शशाक कैसे सहज वेप में अविर्भूत हुये हैं। आकाश की ऐसी शोभा है जैसे ज्ञानी का हृदय। विप्रदेव जी ने कहा कि भेद केवल यही है कि ज्ञानी के अन्तःकरण में शुक्ल और कृष्ण पक्ष नहीं होता। चाहे अविद्यातिमिर कुछ काल के लिये अन्धकार कर दे, नहीं तो आत्मा सूर्य्य सदा उस देश को उजेला रखते हैं। दूसरा भेद यह है कि आत्मा सूर्य के उदय होते ही यती जन नाचने और कूदने लगते हैं। और सत्य ही अमृतपान उनके अश्रुओं द्वारा बैठे बैठे इस मर्त्य लोक में किया करते हैं। मातलि ने कहा यह तो ठीक ही है क्योंकि वहीं से चन्द्र सूर्य, नद एव समुद्र सभी अपने जीवन और रूप धारण करते हैं तो भला उनके हृदय से कैसे किसी की समता दी जा सकती है।

रथ कभी तो बादलों के बीच जाता और कभी नीचे से सप्तर्षि को प्रणाम करता और कभी वृश्चिक पर बरबराता चला जाता था। कुछ काल के पश्चात् फिर पृथ्वी में उतरा और एक ताडके वन के सन्निकट विप्रदेवजी को उतार, मातलि ने कहा कि मैं आपको द्वारिका पहुँचा चुका, अब आप शयन कर स्वस्थ मन हो प्रात काल द्वारिका पुरी, जो यहाँ से केवल एक मील पर है, जाकर द्वारिकाधीश के दर्शन कीजिएगा। निरन्तर उत्कट वायु के झोंके से विप्रदेव जी के शरीर की ग्रन्थि ढीली हो गई थीं। इससे एक निर्वात स्थान में स्वस्थ मन बैठे यह कहने लगे कि हमारे लिए यही स्वर्ग है। वायु से व्यस्त विप्रदेव कुछ ही काल पश्चात् भगवती निद्रा की गोद में सो गये।

प्रात काल द्विज नाम को यथार्थ करने वाली भुजङ्गी

प्रकृति के पढाये पाठ को पढ़ने लगी। ठाकुर जी का शब्द विप्रदेव जी के कर्ण में पडा तो उनकी आँखें ऐसी खुलीं कि जैसी देवताओं की अमरावती में। आत्मा के सहज उल्लास को देख भगवान कृष्ण के योग के महिमा की प्रशंसा करने लगे। प्रात काल के कार्य से निवृत हो सन्ध्या वन्दन कर, अनुपस्थित सूर्य को अञ्जलि दे मारे उल्लास के द्वारिका के दर्शन को प्रस्थित हुए।

कुछ दूर चलने के पश्चात् सहस्रों उर्मियो की माला पहिनने वाला, पृथ्वी राज्य से निष्काशन किये जाने के कारण अद्यापि क्रुदित हाहाकार करता हुआ, कुम्भकर्ण सा कब्जा करने के लिये पुन पुन दौडने वाला, एक लहर से दूसरे लहर को लडा श्वेत फेन की मेखला पहिनने वाला, अगाध गम्भीर होते हुये भी क्षुद्र मनुष्य सा निज बल और शक्ति को उच्चस्वर से प्रगट करने वाला। स्निग्ध होते हुए भी निठुर, चञ्चल प्रकृति होते हुए भी धर्म मर्य्यादा का कदापि न उल्लंघन करने वाला, रत्नाकर होते हुए भी सूम सा अपने रत्नों को गह्वर में छिपाने वाला, चल होते हुए भी अचल, शङ्खपाणि और चक्रधर होते हुए भी विष्णु नहीं, अनेक रानी नदियों का पाणि-ग्रहण करते हुए भी नृपति नहीं, हर एक क्षण भोज लेते हुए भी मदोन्मत्त नहीं, निरन्तर भगवती वसुमति के चरण चूमते और अपमान के धक्के खाते हुए भी धृष्ट नायक नहीं, ऐसे अधृष्य अगम्य समुद्र से सुसज्ज, प्रात काल के सूर्य से रक्षित, स्वर्णमयी, अनेक पताका और अट्टालिका वाली द्वारिका को देख विप्रदेव की आँखें चकाचौंध हो गईं। फाटक में घुसते ही आत्मा ने कहा कि यह तो ब्रह्मपुरी है न कि मानुषीय नगरी। मन आमोद और उल्लास से पूर्णिमा के महोदधि सा ऐसी ऐसी ऊँची लहरें

लेता था कि मानो भगवान ब्रह्मदेव के चरण को स्पर्श कर लौटा था। आज सकल लोक के सौन्दर्य्य के आगार भगवान कृष्ण के दर्शन होंगे तो निश्चय पुण्य और ब्रह्मचर्य के महत फल के हम भागी होंगे। यदि कहीं कृष्ण मान न करते और इस दुखिया की प्रार्थना को सुन लेते और मेरे तप की पगडी को पॉव से न ठुकराते तो भला होता। किन्तु महापुरुष किसी के प्रार्थना को, यदि उनके शक्ति के परे नहीं है, तो उसे अस्वीकार नहीं करते और यदि उन्होंने मुझे रूखा जवाब दिया तो मैं उन्हें विना शाप दिये न छोड़ूगा।

राज भवन के द्वार पर शहनाई बज रही थी जिससे कि द्वारिकापुरी भगवती भैरवी के सुर से रञ्जित हो रही थी। राज भवन में पहुँचते ही विप्रदेव जी ने अपने आने का समाचार अन्त पुर में कहलाया। सुनते हैं कि भगवान कृष्ण रात्रि भर नहीं सो सके थे। कभी कभी रुक्मिणी का नाम भी मुखारविन्द से निकल जाता था, जिसे सुन स्वयं लज्जित होते और मौन हो सीरी उसासें लेते। दिल की कशिश कुछ ऐसी होती है कि परब्रह्म भी जब कोई आर्त स्वर से चिल्लाने लगता है तो बैठे नहीं रह सकते प्रतिहारी से यह सुनते ही कि एक विप्र द्वार पर खड़े हैं ठाकुरजी का कलेजा धडकने लगा, मुस्कुराकर कहने लगे कि उन्हें सादर समक्ष लाओ। प्रतिहारी ने वाअदव हाथ जोड विप्रदेव जी से कहा कि आप सभा में पधार सकते है। यह सुनते ही विप्रदेवजी कुछ ऐसे घवडा गये जैसे कि विद्यार्थी जब परीक्षा भवन में प्रवेश करते हैं। इतने बडे महात्मा पुरुष से कभी सामना नहीं किया, मुझे तो इनके तप तेज की अग्नि ग्रस्त सा कर दिये है। रुक्मिणी का प्रेम सदेश कहने के लिये साहित्य सापेक्ष्य है। मैं तपस्वी और निरा

व्याकरणी, भला कैसे कहते सुनते वन पड़ेगा। वत, सब कुछ ईश्वराधीन है जो कुछ बन पडेगा, करेंगे।

भगवान कृष्ण का दर्शन करते ही और उनके मधुर स्वरुप को देखते ही इनका सारा भय चला गया। स्वस्थमन, दत्त आसन पर वैठ कहने लगे कि मैं विदर्भ नगर से आ रहा हूँ और जब भगवती रुक्मिणी ने देखा कि उनसे सारे मर्त्य विमुख हो गये और प्राण के त्रास के भय से इस पत्री को न ला सके तब उन्होंने मुझसे कहा और इससे मुझे दौडना पडा। इस पत्री का मान तथा इस भिखारी ब्राह्मण के परिश्रम की सफलता आप पर निर्भर है। ठाकुरजी ने पत्र को देखते ही विप्रदेव से कहा कि आप आनन्द पूर्वक इस भवन में निवास कीजिए, जब तक कि रुक्मिणी को दुष्टों के हाथ से छीन कर यहाँ में नहीं लौट आता। श्री कृष्ण वहाँ से पत्र पढ़ते उठ खडे हुए।

परम प्रिय, ब्रज युवतियों के चित्त को चुराने वाले, कंस को निकस करने वाले, श्रीकृष्ण को कोटिश: प्रणाम। प्राणनाथ! आपकी दिगन्त व्यापी उज्वल कीर्ति एव अनुपम रूप और सौन्दर्य्य को श्रवण कर, मने अपने प्राण को आपके चरण कमलों में निछावर कर दिया है। मेरी प्रेम कणिका को शब्दकोष नहीं धारण कर सकते। लाचारी है। हमारे मन में इतनी बातें हैं कि शब्द मूक हो जाते हैं अतः कैसे कह सकू, सिवाय इसके कि पूर्णिमासी को हमारा स्वयम्वर नियत हुआ है और हमारा दुष्ट नीच भाई चाहता है कि वह हठात्, मुझे शिशुपाल से पाणिग्रहण करवादे चाहे मैं उसे वरूँ या नहीं। थोडे में आप यह निश्चय समझिये कि यदि आप इस शिशुपाल रूपी ग्राह से मुझे न बचाइयेगा तो मै पञ्चत्व को प्राप्त हो,

जाऊँगी। आपकी कीर्ति को गाती और स्मरण करती विष-सी पान से स्वर्ग लोक चढ़ जाऊँगी।

आपकी दासी
रुक्मिणी

पत्र पढते ही द्वारपाल से दारुकी को आवाहन करने की आज्ञा दी और दारुकी के आते ही अस्त्र शस्त्र रथ पर सुसज्ज करने के लिये कहा और मुसकुराते हुए चलते दारुकी से यह भी कहा कि विदर्भ नगरी परसों पहुँचना है। कुछ काल के अनन्तर भगवान कृष्ण और दारुकी रथ पर आरूढ़ हो इस मङ्गलमयी यात्रा को प्रस्थान किये।

(६)

विदर्भ नगर में आगामि उत्सव के कारण बड़ी चहल पहल मच रही थी। देश देशान्तर के राजाओं के तम्बुओं के लगने से वस्त्रों का नगर सा हो रहा था। राजभवन में बडी तैयारी थी और सब भृत्यवर्ग बडे प्रसन्न मन आगामि उत्सव से उल्लासित थे। पर वैदर्भी तथा उनकी सखिया इस नगरी की तैयारी कुछ मन्थरा की दृष्टि से देखतीं थीं। यह ठीक है कि जब हम प्रसन्न हैं तो जगत प्रसन्न देख पडता और जब हम दुखी हैं तो सब दुखमयी लख पडता है। यद्यपि सारा नगर और राज भवन के कमरे शृङ्गारमयी हो रहे थे पर रुक्मिणी को यह सब प्रत्युत सुख के दुःख दायक हो रहा था। क्योंकि रुक्मिणी का मन तो सर्प सा ठाकुरजी के मन को हर दाए द्वारिका से विदर्भ नगरी खींच रहा था। क्योंकि सब राजाओं के आने का समाचार मिलता था पर कोई यह नहीं कहता था कि द्वारिका से कृष्ण भी आये। यह तो स्वयम्वर है, इसमें निमन्त्रित और अनिमन्त्रित सभी आते हैं, उन्हें ऐसा कष्ट नहीं

होना चाहिये कि हमारी प्रार्थना को न सुनें। कभी कभी बाईं आँख के फरकने से और मन के सहज उल्लास से कुछ ऐसा समझ पडता है कि कृष्ण अवश्य आवेंगे यदि न आने वाले होते तो मैं ऐसी प्रसन्न न होती। मनमाना कृष्ण के स्वरूप को ध्यान करते करते भगवती रुक्मिणी को वसन्त के समीर ने स्वप्नायित कर दिया। देखती हैं कि भगवान कृष्ण सामने खडे हैं और कहते हैं कि मैं तुझे कल इन दुष्टों के हाथ से अपहरण कर द्वारिका ले चलूगा। हमें तुम्हारे भाई और शिशुपाल का कुछ भय नहीं है और न मैं कुछ सेना की आवश्यकता समझता हूँ। तू घवडाना मत। मन्दिर में गौरी पूजन जाते समय में तुम्हें अपहरण करूँगा।

प्रातःकाल के सूर्य ने विदर्भ नगरी को पताका मयी उत्सव-मयी पुष्प और पल्लवमयी एव ऐसी सजी धजी देखा जैसी नव युवती प्रथम सल्लाप के लिए। जिसे देख, सब के देखने वाले भगवान सूर्य्य प्रसन्न हो अशुओं से उसे चूमने लगे और सारी नगरी को उजेला कर दिया पर रुक्मिणी के हृदय को उजेला न कर सके। राज भवन के नीचे रोशनचौकी भगवान कन्दर्प के आगमन की मानों सूचना सी देती हुई, सब दिशाओं को आह्लादित कर रही थी। भगवती रुक्मिणी ने जब आँख खोला तो देखा कि मन नृपति अपने उच्चातिउच्च आसन पर ऐसा स्वस्थ बैठा है कि मानो कृष्ण सन्निकट ही हैं। रात के स्वप्न को रुक्मिणी स्मरण कर उसके प्रत्येक अक्षरों को स्मरण करने लगी। कृष्ण मेरे सन्निकट आये थे और यह भी कहते थे कि मैं जब भगवती पूजनीया गौरी के मन्दिर में पूजने को जाऊँगी-जैसा कि मेरे घर की चाल है—उसी समय वे मुझे अपहरण करेंगे, यह सब स्वप्न में देखा था। कहते हैं

कि कभी कभी स्वप्न भी सत्य होता है कौन जाने यह मन की करतूत के प्रत्युत ब्रह्मदेव की महिमा है।

इसी समय सब मुसकुराती हुई सहेलियां रुक्मिणी की आई और अनेक बातें शृङ्गार तथा कपड़ों की होने लगी। क्योंकि जिसके पास भगवान की कृपा से बहुत सा वस्त्र रहता है, वह जब कभी चाहता है कि अत्यन्त खूबसूरत देख पडे, तब उसे मालाकार सा अपने वस्त्र बाग और गहनों के गुलाब प्रसूनों के चुनने में बडी कठिनाई पड़ती है। चूंकि सब प्रसन्न मन थीं इससे रुक्मिणी के आगामि स्वयम्बर पर भी दिल्लगी करतीं और कहतीं कि आज ऐसा रुक्मिणी के आनन पर कभी छवि नहीं आई थी। ललिता ने कहा कि अभी तो कुछ चिन्ता की लकीर इसके आनन पर देख पड रही है जिससे प्रेम के गुलाब गालों पर नहीं खिले हैं किन्तु जब कृष्णजी आवेंगे तो हमारी सखी सब भाँति से सुखी और प्रसन्न देख पड़ेंगी।

जब मनुष्य चिन्ता सागर में निमग्न हो जाता है तो उस समय किसी की बात सुन नहीं पडती। कुछ ऐसी ही रुक्मिणी कृष्ण सागर में निमग्न थी। रुक्म प्रातःकाल उठते ही ज्योंही प्रातःकाल के कर्म से निवृत्त हुआ और अपने दर्बार में आया तो सुना कि जनरव यह है कि भगवती रुक्मिणी ने किसी ब्रह्मचारी बटु को एक पत्री लेकर कृष्ण के समीप द्वारिका को भेजा है। यह सुनते ही रुक्म मारे क्रोध के लाल हो कहने लगा कि जैसे वसुदेव इनके बाप कंस के कारागार में बेडियों से लदे पडे थे वैसे ही मैं इनको बन्दी गृह में रक्खूंगा। इससे अपने सहायक राजाओं के यहाँ यह कहला भेजा कि जनरव है कि कृष्ण भी इस स्वयम्बर में आने वाले हैं और कुछ लोग यह भी कहते हैं कि यदुवंशियों की सेना लिये बलभद्र मथुरा

से आ रहे हैं इससे सब को अस्त्र शस्त्र से तैयार रहना चाहिये जिससे जब मैं आह्वान करूँ तुरन्त ही प्रस्तुत हो सकें। रुक्म क्रोध के कारण क्षण भर नहीं बैठ सकता था। भीष्मक से जब रुक्म मिलने गया तो यह सब कथा कह सुनाया। सुनते ही भीष्मक हँसने लगे, जिस पर पुत्र रूष्ठ हो कहने लगा कि इसमें हँसने की कौन सी बात है, यदि कृष्ण आवेंगे तो उन्हें स्वयम्वर के आने का आनन्द दिखा दूँगा। कारागार में पड़े सड़ेंगे। मैंने इसका भली भाँति प्रबन्ध कर लिया है, पर बुद्धिमान पिता कुछ रूष्ट न हो पुत्र की मूर्खता पर हँसते ही रहे। रुक्म तो इतना खिन्न हो गया कि कृष्ण को कहनी अनकहनी कहते पिता के समीप से चला गया।

रुक्म के चले जाने पर भीष्मक अपने एक मित्र मंत्री से कहने लगे, लड़के को कौन समझावे कि नारद ने जो कहा है वह सब सत्य है। यह रुक्मिणी लक्ष्मी का अंश है निश्चय कृष्ण को वरेगी, रुक्म रोवें और चाहे गावें।

मंत्री—भगवती के देखने से भी यही प्रतीत होता है पर न जाने क्यों रुक्म को कृष्ण से इतनी चिढ़ है।

भीष्मक—सुनते हैं कि बलदाऊ भैय्या ससैन्य मथुरा से आ रहे हैं, भला ये विचारे उनका कैसे सामना कर सकते हैं।

मंत्री—नारद जी के सब वचन सत्य होंगे, कृष्ण आवेंगे और सब के देखते देखते भगवती रुक्मिणी को हर ले जायेंगे। अब रङ्ग भूमि में चलने की हुजूर तैयारी करें।

भीष्मक—आओ चलो। न जाने क्यों मेरा मन दुःख और सुख में डोलायमान हो रहा है।

(८)

रुक्म—भाई वीरसेन न जानें आज मेरी तबीअत ऐसे मंगल के समय में भी ऐसी उदास है जैसे वणिक जन का दिवाला निकल जाने पर होता है।

वीरसेन—आइए रङ्गभूमि में चलें इस समय वहीं हम लोगों का काम है।

रुक्म और वीरसेन दोनों रङ्ग भूमि को पधारे। सुनो ! तूर्य्य का उच्चनाद सूचना कर रहा है कि भगवती रुक्मिणी भगवती गौरी की अर्चना करने आ रही है। यह अपूर्व सुन्दरियों का समुदाय जो भगवती रुक्मिणी के साथ निकला, निश्चय कवियों की कविता देवी को अनेक कल्पनाओं की सम्पत्ति देता, यदि हनुमान सा हमारे साथ वे इस वृक्ष पर बैठे राज द्वार से इस अपूर्व गोल को निकलते देखते! मालाकार तो कहता कि वसन्त के प्रसूनों की जीवित क्यारी, नदी सी राज-द्वार से निकली है। या राजभवन विमोट से इन्द्र धनुष निकलता है। पाजेब और छड़ों की झनकार से सारस लोग उच्चस्वर से उनके गमन की प्रसंसा करने लगे। इस सुघर गोल के बीच में प्रत्यक्ष वसन्त ऋतु सी बनी भगवती रुक्मिणी कृष्ण में ऐसी समाधिस्थ चली जा रही हैं जैसे परीक्षार्थी बालक परीक्षा पत्र में तन्मय जाता है।

भगवती गौरी के मन्दिर में पहुँच कर दुलहिन रुक्मिणी साश्रु और सप्रेम अपनी सब पुरानी कथा धीरे धीरे पत्र प्रार्थना में लिख उनके चरणों में मस्तक डाल निवेदन करने लगी। प्रार्थना मनमानी जब खतम हो गई तो देवी रुक्मिणी ने आरती उतार, घर की ओर चलने को परिक्रमा कर मन्दिर से

बाहिर निकली। भगवान कृष्ण एक अमराई में एक वृक्ष के मूल में दारुकी से कुछ बातें कर रहे थे। इतने में दौडते हुए एक दूत ने निवेदन किया कि महारानी रुक्मिणी गौरी पूजने को मन्दिर में जा रही हैं। सुनते ही रथ पर चढ़ दारुकी से कहा कि सीधे मन्दिर को चलो। और क्षण के क्षण में सेना को चीडते फाडते मकर सा मन्दिर के फाटक के सामने खडे हुए।

पहिली स्त्री—देखो हरा रथ पर हनुमानजी की पताका है और यह सावली मूर्ति जो प्रत्यक्ष विद्युत सी बैठी हुई है, कस के मारने वाले भगवान् कृष्ण हैं!

दूसरी—आश्चर्य्य तो यह है कि यह सब सेना इन्हीं के वारण करने के अर्थ खडी है पर सिवाय इनकी शोभा देखने के चित्र सा अपने अवयव को हिला डुला नहीं सकती!

तीसरी—इन्हें तो सब विष्णु का अवतार बताते हैं और हमारी भगवती रुक्मिणी को लक्ष्मी का अंश। ज्ञानी नारद एक समय जब भूलोक की यात्रा करते थे इस नगरी को भी पुनीत किया था और दुलहिन जी से यह सन्देश कह चले गये! तो फिर सिवा उनके हमारी सखी का कौन पाणिग्रहण कर सकता है।

चौथी—देखो वह आभूषणों से अग्नि शिखा सी प्रदीप्त हमारी सखी रुक्मिणी, सखियों के साथ गौरी की प्रदक्षिणा कर मन्दिर से बाहर निकली!

पहली—और यही समय रुक्मिणी के अपहरण करने का है यदि कृष्ण नीतिज्ञ हैं।

दूसरी—और क्या तुम्हारा मुख देखने आये हैं, यदि अपहरण करने नहीं आये हैं!

भगवती रुक्मिणी कृष्ण को देखत ही प्रसन्नता से ऐसी प्रफुल्ल हो गई जैसे भगवान प्रभाकर के उदय होते ही कमलिनी प्रफुल्ल हो जाती है। वा जैसे योगी जब अपने योग के महत् फल रूपी सिद्धी भगवान विष्णु का दर्शन पा प्रसन्न होते हैं। या ऐसी प्रसन्न हुई जैसा भगवान नृसिंह जी को देख प्रह्लाद प्रसन्न हुए थे।

भगवान कृष्ण रुक्मिणी की ओर बढे और भगवती रुक्मिणी ने अपनी प्रेम-ग्रन्थि-माला के स्वरूप जयमाल को भगवान कृष्ण के गले में पिन्हा दिया। भगवान कृष्ण ने सब सेना के देखते ही देखते उनका हाथ पकड, रथ पर चढा, द्वारिका की ओर चले।

दारुकी पूर्व आकाश को देख कर कहने लगा कि निश्चय महाराज की सेना आ रही है और यदि हमारी आँख सच्ची हैं तो निश्चय यदुवंशियों की सेना है, जो बलदाऊ जी के साथ हौले हौले आपकी सहायता के लिए चली आ रही है। निश्चय बलदाऊ जी ने आपके वैदर्भ नगर में आने का समाचार पाया। यह सुन भगवान कृष्ण ने कहा कि यह बडी अच्छी बात हुई बिना बलदाऊ जी के संग्राम में कुछ आनन्द नहीं आता! क्योंकि गदा से, बेल सा, मनुष्यों के शिर को कौन तोडता! उसी ओर रथ को ले चलो। दारुकी ने, जैसी आज्ञा, कह रथ को बढ़ाया।

बलदाऊजी ने दूर ही से भगवान कपिकेतु को पहिचान प्रसन्न वदन अपने सारथी से कहने लगे कि सेना को छोड, आओ, नई दुलहिन को लाते हुए कृष्ण का स्वागत देने चलें। बलदाऊ जी ने जैसे ही भगवान कृष्ण के रथ को और लक्ष्मी सी दिशा को प्रदीप्त करती हुई देवी रुक्मिणी को

देखा तो निहाल हो गये। भगवान कृष्ण का रथ जब पहुँचा तो दोनों भाई रथ से उतर सप्रेम आलिंगन किया। भगवती रुक्मिणी ने बलदाऊ जी को सादर प्रणाम किया। बड़े प्रेम से आशीर्वाद दे, बलदाऊ जी कहने लगे कि तुम्हारा सोहाग अटल हो और तुम कृष्ण की राज महिषी हो! निदान दुलहा दुलहिन और बलदाऊ जी एक वृक्ष के नीचे जलपान के लिए बैठे।

(६)

जिस समय रुक्मिणी हरी गई उस समय तो सारी सेना ऐसी भौचक और चित्रित सी हो गई कि किसी से यह भी न बन पड़ा कि रङ्गभूमि में जा भीष्मक, शिशुपाल इत्यादि से कहे। रथ के कुछ दूर निकल जाने पर रुक्म को और सारी सभा को मालूम हुआ! यह सुन जरासन्ध ने कहा देखो, यह दुष्ट सब को धोखा दे रुक्मिणी को हर ले गया और हम लोग यहाँ बैठे रङ्गभूमि में प्रतीक्षा ही करते रह गए।

शिशुपाल—अब की बार इस कर्म का इन्हें भला फल चखाऊँगा आइये अपने अपने रथ पर सवार हो उसका पीछा करें।

जरा—इसमें कुछ भी देर नहीं करना चाहिए।

शल्य, जरासंध, दन्तवक्र, विदरथ सब अपनी अपनी सेना ले बढ़े।

कृष्ण बलदेव और रुक्मिणी जलपान कर जैसे ही ताम्बूल खाया था वैसे ही दारुकी ने कहा कि महाराज देखिये कैसी धूलि पश्चिम आकाश में छा रही है और अनेक निशान सूर्य्य में चमक रहे हैं, अब तो संग्राम के प्रोत्साहन करने वाले अनेक संगीत भी सुनाई देते हैं।

कृष्ण—जरासन्ध सदा मेरे पीछे लगा रहता है और ऐसा धृष्ट है कि इतनी बार हारने पर भी लड़ने का साहस करता है।

बल—इसबार तो शिशुपाल का पक्ष लेकर चढ़ा चला आ रहा है।

रुक्मिणी—अब महा उत्पात होगा, प्राणपति मुझे तो भय लगती है।

कृष्ण—डर क्या है, (दारुकी से) रथ सुसज्य करो। (बलदाऊ जी से) आप रथ आरूढ़ हों और पदातियो और अश्वों के दो पक्ष बनाइये और हम सब बीच में रहेंगे।

भगवान की सेना ज्योंही पक्षी व्यूह बाँध आगे बढी वैसे ही दूसरी सेना भी नदी के प्रवाह के उमङ्ग सी आगे बढी। आकाश में पङ्क छा गया। बाज और शिकरा इस वीर मानुषीय सन्दोह को चकित नेत्रों से नीचे देखने लगे और बोलने मिस मानो इस सघट्ट का कारण पूछते थे। सयाने वायस गण कार्य कार्य करते मारे चतुरता के और त्रास के भाग निकले। कुछ देर के बाद दोनों सेनाएँ भीषण युद्ध में प्रवृत्त हुई। रथी रथियों से, पदाती पदातियों से, आश्वारोही अश्वारोहियों से भिडे। आकाश में, चमकते परदार साँप से तीर आकाश में फुफकारने लगे, तलवारें ढाल पर लगने से झनकारने लगीं, गदा से गदा टकरा पटाका सा फूटने लगे, और कुछ काल के अनन्तर वसुधा पर वीर पुरुषों के शिर, हाथ पैर कट कट कर गिरने लगे। शिशुपाल और जरासन्ध ऐसी वीरता से लडे की सारे यदुवंशियो की सेना को तीर के वर्षा से

ऐसा ढाँप दिया जैसे हिमालय में बादल वृक्षों को अपने अन्त करण में लोप कर लेते है। या जैसे अंशुमाली कोहिरे से ढँप जाते हैं।

रुक्मिणी—आर्य्य पुत्र, मुझे तो वैरियों के पराक्रम को देख घवडाहट होती है, निश्चय मैं वडी अभागिन हूँ जिसके कारण आप इतना परिश्रम कर रहे हैं।

कृष्ण—ये सब पृथ्वी में लेट ने के हेतु लपके चले आ रहे हैं। (दारुकी से) तुम जरासध के सनमुख मेरे रथ को ले चलो। इसी के भागने से सब भाग जाएँगे।

कृष्ण और वलदाऊ जी ने कुछ काल के अनन्तर शिशुपाल और जरासन्ध की सारी सेना काट डाली और पृथ्वी को मनुष्य के रुधिर से तृप्त कर दिया। वडे वडे चट्टानों के सदृश मृतक हस्तियाँ रुधिर से छिन्न प्रत्यक्ष यमराज की भेंट सी देख पडती थीं, निदान पृथ्वी वास्तव में रङ्गभूमि सदृश हो रही थी।

भागवतकार कहते है कि फिर यदुवंशियों ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि जैसे कुहिरे से ढपे भगवान सूर्य्य अपने अंशु तीरों से जैसे कुहिरे को छिन्न भिन्न कर देते है और उस का नाम भी नहीं देख पडता वैसे ही यदुवंशियों ने शिशुपाल इत्यादि की सेना को काट छाँट भगा दिया। इस सेना की यह दुर्गति देख शिशुपाल ने जरासध से कहा कि अब तो सारी सेना कट गई अब अवशिष्ट सेना को सम्हालते जीवन ले भागना चाहिए।

जरासध—देखो यह कृष्ण ऐसा किस्मतवर है कि हमने इसके ऊपर सत्रहवार चढ़ाई की पर हर वार हारा और सारी सेना यदुवंशियों ने साफ कर दिया, भाग्य की वात है नहीं तो भला ये यदुवंशी कब के वीर थे।

शिशु०—देखिये, आइये चलें। दारुकी हमी सब की ओर चला आ रहा है, आइये शीघ्र चलें।

सुनते हैं कि जरासध और शिशुपाल के हटते ही सब सेना भाग गई।

रुक्मिणी—मैं नहीं समझती थी कि आप इतनी जल्दी इन सब को पराजय कर सकियेगा।

कृष्ण—देखो कैसा गर्दन नीची किए हुए उदास मन शिशुपाल अपने रथ पर भागा जा रहा है।

दारुकी—महाराज देखिये जरासध भी युद्ध से पराङ्मुख हो गीदड से भागे चले जा रहे हैं।

रुक्मिणी—मै आप को इस विजय लक्ष्मी पाने की सहर्ष बधाई देती हूँ और प्रणाम करती हूँ।

बल—तुम्हें मुझे पहिले धन्यवाद देना चाहिये क्योंकि कन्हैया जी तो विना सेना ही आए थे, भला विना सेना आप कैसे इस रानी को हर सकते।

ये सब लोग स्वस्थ मन प्रसन्न चित्त बातें कर रहे थे कि चर द्वारा मालूम हुआ की रुक्म २ अक्षौहणी दल लिए बढ़े आ रहे हैं।

रुक्मिणी—न जाने भैया क्यों आप से ऐसा बैर रखते हैं।

कृष्ण—लडका है, कुछ जानता नहीं।

बल—आज उसे हम सिखावेंगे की रण में जाने का क्या परिणाम होना है।

दारुकी—महाराज सैन्य का कलकल अब सुन पडने लगा।

रुक्मिणी—हा तात इसे इस नीच व्यापार से रोका नहीं।

किन्तु यदि रोकते भी तोभी राजकुमार ऐसे हठी हैं
कि न मानते ।

कृष्ण—क्षत्री के बालक को अपने अस्त्र शस्त्र का बडा घमड है।

इन वीरों को छोड आइये भागते शिशुपाल और जरासध की ओर चलें । जब रुक्म ने सुना की जरासध इत्यादि रण से भागे चले जा रहे हैं तो रथ पर चढ और अपने सजी सेना को बढने की आज्ञा दे, शिशुपाल इत्यादि से मिल कहने लगा कि भाइयो युद्ध से परङमुख क्षत्री को नरक होता है, और सन्मुख मरने वाले स्वर्ग जाते हैं । इससे भाइयो एक बार मेरे साथ और भी यदुवशियो से युद्ध करो । यदि मैं कृष्ण को पकड और तुम्हें अपनी वहिन को न विवाहूँ तो मैं आज से अस्त्र शस्त्र ग्रहण करना छोड दूगा । रुक्म ने बहुत ललकारा पर ये यदु-वशियो के युद्ध से ऐसे ध्वस्त हो गए थे कि किसी ने कुछ न सुना और सीधे सब अपनी राजधानी को प्रस्थान किया ।

यह देख यद्यपि रुक्म दुखी हुआ पर तौभी हिम्मत बाँध कृष्ण की ओर सेना सहित अपने पार्श्ववर्गों से सीटता हुआ चला । कहते हैं कि अब रुक्म की सेना यदुवशियो से भिडी तो ऐसी दशा हुई जैसे जल यौवन से उन्मत्त नदी समुद्र में जा अन्तर लीन हो जाती है । भगवान कृष्ण के प्रताप से दो तीन प्रहर में रुक्म की सारी सेना छिन्न भिन्न हो भागने लगी यह देख भगवान कृष्ण ने अपने रथ को रुक्म के पकडने के हेतु दारुकी से कहा देखो दुष्ट रुक्म भाग के न बचने पावे । देखो वह भागा जा रहा है तुम शीघ्र उसके पास ले चलो मै उसे बाँध रथ में द्वारिका ले चलूगा । जैसी आज्ञा हो, यह कह दारुकी ने उन चञ्चल अश्वों को तीव्रता से उसी ओर हाँका । रुक्म को देख कृष्ण कहने लगे की तू कहाँ भागा जा रहा है,

तू कहीं नहीं जा सकता। यह कह अपने चोखीले तीरों से अश्व और सारथी को आहत किया। यह देख रुक्म अपने रथ से गदा ले द्वन्द युद्ध के लिए तैयार हुआ पर विचारे की कुछ न चली और बाँध लिया गया। कृष्ण भगवान ऐसे रुष्ट हो गए थे कि रुक्म का सिर काट लेने पर तत्पर थे पर भगवती रुक्मिणी अत्यन्त दीन वचन से रोकर कहने लगी :—

रुक्मिणी—प्राणनाथ इसने अपने कर्म का पूर्ण परिणाम भोग लिया, यदि आप इसके प्राण को न छोडियेगा तो सारे लोक में मेरा अपयश फैल जायगा कि बहिन के देखते भाई का सिर कट गया और रुक्मिणी ने वरजा नहीं (हाथ जोड कर) आप दयालु हैं भागे क्षत्री को कादर मारते हैं।

कृष्ण—यदि तुम न इतना हठ करती तो मैं इसके प्राण को अपहरण कर यम के शरण में अब तक पहुँचा दिया होता।

बल—यदि केश श्मश्रु और शिखा का मुण्डन कर छोड दिया जाय तो वह सिर ही काटने के तुल्य है।

कृष्ण—और मुँह में तेल और कालिख भी लगा दिया जाय।

रुक्मिणी—आप से महानुभाव को यह नहीं सोहता।

कृष्ण—तुम कुछ नहीं जानती, इसे हारने के स्वारस्य को चखने दे जिसमें फिर न समर में जाय।

निदान रुक्म का केश मुण्डन कर बडे अपमान के साथ छोडा और बलभद्र सहित भगवान कृष्ण द्वारिका को पधारे।

(१०)

जब सेना चली गई तो रुक्म एक पेड के नीचे कतिपय योद्धाओं के साथ बैठा पछता रहा था। हतबुद्धि, एक मंत्री

इन्हें अत्यन्त उदास देख कहने लगा कि युद्ध में हार जीत होती ही है। यदि अबकी बार हार गए तो दूसरी बार खूब सेना ले इन्हें इस हर्ष का मजा चखा सकते हैं। किन्तु यहाँ बैठ विलाप करने में कोई फल प्राप्ति नहीं।

रुक्म—हम कौनसा मुँह ले विदर्भ नगर में जायँगे। पिताजी जो सदा बरजते थे उनसे क्या उत्तर देंगे। निश्चय में विदर्भ नगरी का मुँह नहीं देख सकता। किस्मत का खेल है और ईश्वर की अद्भुत लीला है कि आभीर के घर पला पोसा बालक निजकआरो भूपतियों को गद्दी से उतारता और चढाता है।

दूत—तो ऐसे प्रबल वैरी से हारना भी महाराज एक प्रकार का विजय सा ही है। आइये इस अनराई में हम सब चलें और आप हाथ मुँह धो कुछ जलपान कीजिये और तब मिमांसा किया जायगा।

भागवतकार कहते हैं कि इस पराजय से रुक्म कुछ ऐसा दुखी हो गया कि विदर्भ नगरी न गया और स्वय भोजकरपुर नगरी बसाया और कालक्षेप किया।

विजयी कृष्ण की सेना बडे उत्साह और उमङ्ग से द्वारिका पहुँची। चूकि चर लोग आगे ही आकर सब कथा सुना चुके थे इससे सारा नगर पताका और तोरण से सुसज्य द्वारिका, दुलहा और दुलहिन की बाट जोहती थी। तूर्य्यनाद के सुनते ही सुहृद मित्र सा नागरिक अप्सराओं के सगीत मिस मानो द्वारिका नगरी और बरात गले से मिलीं। बारात या सेना जब द्वारिका के द्वार में घुसी तो ऐसी झलकार, अनेक सगीत और मनुष्य कलरव मचा मानो नगरी शरारी सी उन्मत्त हो गई थी।

सुखी, कभी निष्कारण दुखी हो जाता है और पुनरपि स्वय सुखी हो जाता है। आइये इस जगत की महिलाओं की वार्ता आप को सुनावें, आप निश्चय सुन सुखी हुजियेगा। निदान किस्सा कहानी सुनते महारानी सो गईं और उनकी सहचारी सखियाँ भी निद्रित हो गईं।

बिजली के अनवरत चमकने से सारा आकाश लाल हो जाता था और फिर अन्धकार का राज्य हो जाता था, निदान योंहीं बिजली और अन्धकार की लडाई मची रही। स्वर्ग से हरित अश्व के रथ में बैठे भगवान इन्द्र हिरण्य कश्यप के महल की ओर झपटे चले जा रहे हैं। हिरण्य कश्यप यद्यपि घर पर नहीं हैं पर तौ भी देवराट चोर सा चतुर्दिक देखते देखते हिरण्यकश्यप के गृह में पहुँचे।

महल में तुरन्त घुस, रानी को सोते हुए अपने रथ पर चढा, प्रस्थान किया। रानी की जब आँख खुली तो मारे त्रास के रोने लगी। अनन्त भगवान की अनन्त गीत गाते वीणा बजाते आकाश से उतरते नारद को भगवान देवराट ने देख प्रणाम किया। भगवान नारद ने पूछा कि यह रोती औरत तो हिरण्यकश्यप की दुलहिन है। आप इसे कहाँ लिए चले जा रहे हैं। यह गर्भिणी है, कौन जाने, ऐसा सुत उत्पादन करे, जो हम सब को स्वर्ग से निकाल बाहर कर दे, इससे इसे मार डालने के लिये, लिये जा रहे हैं। इन्द्र की यह बात सुन, नारदजी कहने लगे कि अरे राम राम! इसके पेट में महाभक्त है, जिसके भक्ति का जगत कायल होगा।

नारदजी का यह वचन सुन, इन्द्र उसकी प्रतीत कर प्रह्लाद की प्रदक्षिणा कर देवलोक को चले गये। रानी को भगवान नारद पुनरपि घर पहुँचाने के हेतु चले। मार्ग में रानी

से कहने लगे कि भय करने की कोई बात नहीं है, क्योंकि तुम ऐसे गर्भ को धारण किये हो जो भगवान विष्णु का एकान्त भक्त है, इससे तुम्हें कोई न छूएगा, तुम नि शङ्क इस महल में निवास करो। तुम्हारा पति इसके जन्म तक आवेगा तब तक तुम अपनी रक्षा के लिए अपने महल ही में रहा करो।

कुछ काल के पश्चात् जब प्रह्लादजी ने जन्म लिया तो कहते हैं कि राक्षस कुल उजेला सा हो गया। तामसी हिरण्यकश्यप ने जब प्रह्लाद के जन्म को सुना तो मारे आह्लाद के देखने को घर चला। सुनते हैं कि प्रतापी हिरण्यकश्यप ने बहुत सा धन लुटाया। नारद भी उस समय आये थे। लडके को देख कहने लगे कि यह परम विष्णु का भक्त होगा यदि तुम इसे ऐसी जगह रखो जहाँ इसको भगवान विष्णु की चर्चा वा नाम न सुन पडे तो तुम्हारा सर्वथा कल्याण होगा। यह कह आगे बढ़े, क्योंकि ज्यादा कहने से बच्चे को कष्ट पहुँचेगा।

बचपन में हिरण्यकश्यप प्रह्लादजी को बडा प्यार करता था। बच्चे के अपूर्व तेज और सौन्दर्य्य को देख निहाल हो कहता कि राक्षस कुल भूषण होगा, इसके कुल वैभव के आगे देवता लोग भी तुच्छ हो जायँगे, और कौन जाने हमारे प्रण के भार को भी यह उतारे। एक दिन हिरण्यकश्यप गुरू शुक्राचार्य्य के यहाँ गए और कहने लगे कि लडका तो आप की दया से सब भाँति अच्छा है, केवल कष्ट यही है कि नारदजी कह गए हैं कि इसे भगवान का नाम न सुन पडे क्योंकि उसे सुनते ही यह भगवत भक्त हो जायगा। इससे आप ऐसे उपाय से शास्त्र पढ़ाइये कि इसे विष्णु में प्रेम न हो, यदि सहज वैर न हो। शुक्राचार्य्य मुसकुरा कर कहने लगे कि शण्डमार्क नास्तिक है और परम पण्डित है। आप के पुत्र को वह वैसा ही पढ़ावेंगे

जैसा आप चाहते हैं।

गुरू से प्रणाम कर हिरण्यकश्यप घर को लौटे और राक्षस ज्योतिषी से शुभ दिन निश्चय कर, तुन्दुल, गुलाब से गाल वाले प्रह्लाद को पढ़ने के लिए, प्यार से पुत्र को रथ पर चढ़ा शण्ड-मार्क के आश्रम में गए और पुत्र को पढ़ाने की रीति समझा घर को लौटे। प्रह्लादजी को गुरु क्या पढ़ाते क्योंकि उन्हें तो परमात्मा ने स्वयम ही आत्म-विद्या पढ़ाया था, याने प्रकृति ही से ये ब्रह्मज्ञानी थे। इससे गुरू से पढ़ने पर उससे कई गुनी ज़्यादा विद्या एकान्त में पढ़ा करते थे। जब भक्ति की तरङ्गे उनकी बहुत ऊँची उठतीं तो ऐसे समय में राक्षस के लड़कों को एकत्र कर ब्रह्मविद्या का उपदेश देते और कहते कि यह संसार एक स्वप्न सा है जिसको जीव देखता रहता है। यदि वह आत्मा के दर्शन को जाता तो जाग जाता, और अपने को पहिचानता कि वह क्या है? पहिला बाल—क्या हम लोग अपने को नहीं जानते। वाह! प्रह्लादजी हम दीर्घ कर्ण के लड़के हैं, चञ्चल हमारा नाम है, उद्वेग ग्राम में बसते हैं और क्या चाहिये। सब के सब—ठीक तो है। प्रह्लाद—यह जो तुम्हारा ज्ञान है कि हम यह हैं, अमुक के लड़के हैं, राक्षस कुल में उत्पन्न हैं, यह सब स्वप्न है। तुम राक्षस नहीं हो, तुम तो चैतन्य हो, अव्यक्त हो, गुणातीत, अजर अविनाशी के एक चैतन्य अंश हो, पर मोह के कारण अपने को राक्षस, चञ्चल इत्यादि मान बैठे हो। जब किसी प्रकार प्रबोधित हो जाओगे तो जानोगे। गुरूजी आते हैं। आओ, कुछ उनका पढ़ाया पाठ पढ़ें। यह कह, सब बड़े उच्च स्वर से पढ़ने लगे। गुरूजी क्रुद्धित और कुछ दुखी और कुछ सुखी कहने लगे कि प्रह्लाद न तू स्वयं पढ़ता और जो पढ़ते रहते उन्हें बुला बुला व्यर्थ बातें करता है, ऐसा मारूँगा कि

सब ज्ञान मिट्टी में मिल जायगा"। योहीं गुरूजी की और प्रह्लाद जी की कुछ न कुछ नित्य मच जाया करती थी।

(२)

पूर्णिमा की रात्रि है, सारा जगत हीरा सा चम चम कर रहा था। आश्रम के वृक्ष सब निहाल हो रहे थे, आज गुरूजी भगवान शुक्राचार्य्य से मिलने गए हैं। लडके सब प्रसन्न वदन प्रह्लाद के समीप बैठ भगवान षोडश कला वाले ब्रह्म की अनन्त कथा सुन रहे थे "गुरूजी कहते हैं कि सब से वह बुद्धिमान है जो धर्म अर्थ काम, तीनो के लिये सम्यक प्रयत्न करता है, मूर्ख वह है जो एक के पीछे केवल दौडता है" मेरी समझ में यह वैसा ही है जैसा अनेक स्वामियों के प्रसन्न करने का प्रयत्न करना, जिसका प्राय यह परिणाम होता है कि एक को भी प्रसन्न नहीं कर सकते और यदि धर्म को भली भाँति जाने तो कुछ दिन के पश्चात् परमात्मा का भी ज्ञान होगा, और ज्ञान होने से मुक्ति का अधिकारी हो जायगा इससे सब को छोड, धर्म वा ईश्वर के शरण जाना चाहिये जिससे त्रिगुण के तीव्र त्रय ताप से बचे, पर गुरूजी को कौन समझावे।

(३)

हिरण्य कश्यप कई वर्ष बीत जाने से प्रह्लाद के विरह में व्याकुल, रथ पर चढ शुक्राचार्य्य के शिष्यों के शाला में पहुँचे और प्रह्लाद को अत्यन्त प्रसन्न देख, गोद में उठा लिया और चूमकर शण्डमार्क से कहा कि इसकी माँ इसके देखने को अत्यन्त व्याकुल है इससे कतिपय दिन के लिए हम प्रह्लाद को घर ले जाते हैं। यह कह रथ पर चढा घर आया।

चार पाँच दिन के बाद एक दिन सुहावने प्रात काल में हिरण्य कश्यप प्रह्लाद को निज गोद में बैठा, पूछा कि बेटा इतने

दिन तुमने पढ़ा, शास्त्र में कौन सी वस्तु तुम्हें प्यारी लगी? शुद्ध मति प्रह्लाद कहने लगे कि विष्णु भक्ति से बढ़ कर तो मुझे शास्त्र में कोई और अच्छी वस्तु नहीं देख पड़ी। यह सुनते ही तो हिरण्य कश्यप दुखी और क्रुद्धित हो कहा कि यही गुरू ने उपदेश दिया है। देखो हम उन्हें बुला ऐसा डाटते हैं कि उनकी बुद्धि ठीक हो जायगी। वह जो नहीं पढाना चाहिए वही पढाया। खडे द्वारपाल से कहा कि इसके गुरू को रथ पर तुरन्त ले आओ। रथ देखते ही शण्डमार्क की नाडी ढीली हो गई, सारथी से पूछा कि कुशल तो है? "सब कुशल है महाराज ने आपको आह्वान किया है"। शण्डमार्क रथ पर चढ़ अनेक भावनाओं से चञ्चल अनमन नृपति के दर्बार में पहुँचे। कृशानु सा देदीप्यमान हिरण्य कश्यप को देखते ही गुरू जी की सब बुद्धि भ्रष्ट हो गई। थर थर काँपने लगे और हिरण्य-कश्यप लाल आँखें निकाल, कहने लगा, मैंने आपसे पहिले ही कह दिया था कि इसे ऐसा पढाइए, जिसमें इसे विष्णु भक्ति कथमपि न उत्पादन हो, लेकिन आपने हमारी आज्ञा का अव-हेलन किया। देखिये आप इसे ले जाइये और युक्त तौर पर पढाइये जिसमें राक्षस कुल भूषण हो और अपने पिता के शत्रु को उत्पाटन करने में दृढ मति हो। गुरूजी बहुत कुछ कहने वाले थे पर कुछ न कह सके सिवाय इसके कि महाराज यह प्रकृति से ऐसा है मेरा दोष नहीं है, आगे आप मालिक हैं।- यह सुन हिरण्य कश्यप शान्त हो गुरू जी की सत्कार पूजा किया और बहुत उपदेश दे, उन्हें प्रह्लाद के साथ आश्रम को विदा किया।

गुरूजी नास्तिक ग्रन्थ पढाते किन्तु सर्वशास्त्र पढ़ने पर भी प्रह्लादजी के मति में भेद नहीं पडा। ज्यों २ ज्यों २ बडे होते

गए उनका ज्ञान नित्यश चन्द्रमा की कला सदृश बढ़ता गया यद्यपि मोह समीर रूपी वाक्य पण्डितजी नित्य बहाते पर प्रह्लाद के अन्त करण के ज्ञान-तरु का एक पल्लव भी छिन्न भिन्न नहीं कर सकते।

प्रह्लादजी एकान्त में निकल जाते और अपने रचयिता से अनेक बातें कर आते, कभी कभी ऐसे समाधिस्थ हो जाते कि सहपाठियो के चेत कराने पर भगवान का कीर्तन कर घर लौटते। पण्डितजी देखकर मन ही मन में कहते कि यह बालक हमको भी अपने साथ रसातल भेजेगा, अपनी भी दुर्गति करावेगा और साथ ही साथ हमारी भी गति बनावेगा। यह प्रकृत्या भगवद्भक्त है, और हिरण्यकश्यप प्रकृत्या वैरी है चलो छुट्टी हुई, हम दोनों ओर से गए। यह भगवद्भक्ति नहीं छोड़ेगा, क्योंकि प्रकृत्या ऐसा बनाया गया है और यह देख इसके पिता सब लाञ्छन हमारे ही ऊपर डालेंगे, इससे इसके पढ़ाने से हमारी सर्वथा हानि को छोड लाभ नहीं देख पडता। हम तो इस दु ख से कुछ ऐसे दुखी हो गए ह कि गुरूजी के सन्निकट जाने वाले ह कि पूछें कि क्या करें?

गुरूजी सदा यही प्रयत्न किया करते थे कि प्रह्लादजी को सब ही देवो का नाम शास्त्र के पढाने में पडे किन्तु न तो विष्णु का नाम पडे और न उनकी कीर्त्ति। इसके विरुद्ध प्रह्लादजी को सब ही स्थान पर भगवान विष्णु ही देख पडते थे, और चाहे किसी का सकीर्त्तन हो किन्तु वह विष्णु की कीर्त्ति समझते थे। जो बात शास्त्र न कहता और गुरु उनसे छिपाता, तो वायु उनके कानों में कह जाती। भगवान विष्णु की अनेक कीर्त्ति और महिमा को सारे नक्षत्रगण रात्रि भर मधुर स्वर में गा गा कर, उनके प्रेम को पुष्ट करते। एक एक पत्तियाँ सरकार के

अस्तित्व की और उनके परम शुभ्र रूप और लावण्य की रहस्य, भक्त प्रह्लाद से निवेदन करतीं। प्रह्लादजी शास्त्र भी खूब पढ़ते और छिप के ईश्वर आराधन भी खूब करते। अनध्याय के दिन सब विद्यार्थियों के साथ वन में विचरते और रम्य नदी के कूल पर सुमन बैठ भगवत कीर्त्तन करते और कभी कभी ऐसे तन्मय हो जाते कि जोर जोर से भगवान को चिल्ला चिल्ला के बुलाने लगते। कभी कभी ऐसा प्रत्यक्ष आकाश की ओर देख बातें करते मानो भगवान प्रह्लादजी के समक्ष खड़े हैं और प्रह्लादजी उनसे अपनी कुछ कह रहे हैं।

(४)

पूर्णिमासी की रात्रि है, भगवान चन्द्रमा चुने आभूषण को पहिन आकाश मण्डल में सारे लोक को सुखी करते विराजमान थे। गुरूजी आज भगवान शुक्राचार्य्यजी के यहाँ गए हैं अपने नित्य दुख को सुनाने और यह पूछने कि किस प्रकार से पढ़ावें और समझावें कि प्रह्लाद भगवान विष्णु से वैरभाव रखने लगे। सब कथा सुन गुरूजी ने कहा कि तुम पढ़ाते लिखाते जाओ प्रह्लाद के पढाने लिखाने से तुम्हारा मङ्गल सिवाय अमङ्गल न होगा। यह सुन अति प्रसन्न मन घर लौटे।

जब प्रह्लाद ने जाना कि गुरूजी अपने गुरू शुक्राचार्य्यजी के यहाँ गए हैं निहाल हो, अपने बालक वृन्द से, कलकल शब्द कर बहती हुई, चन्द्रमा को खिलौना सा नचाने वाली नदी के सन्निकट ब्रह्मविद्या के उल्लास से उल्लासित हो कहने लगे कि जैसे इस नदी के अन्त करण को चन्द्रमा प्रकाश कर रहा है वैसा ही तुम सब का अन्त करण वह दयानिधि जगदीश्वर उजेला करे। जैसे यह निरन्तर गाया करती है वैसे ही सतत

तुम सब के मुख से भी हर हर शब्द निकले। गुरुजी कहते थे कि वह पुरुष सयाना है जो धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है। पर यह नहीं कहते कि वह सत्यतः पण्डित है जो केवल धर्म पर आरूढ होता है क्योंकि धर्म यदि युक्त रीति से किया जाय तो अनायास ही अर्थ और कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। पर पण्डितजी को कौन समझावे यदि यह कहें तो ऐसे क्रुद्धित और दुखी हो जाते कि सिवाय चुप रहने के और किसी में श्रेय नहीं देख पड़ता। कहीं भूल से यदि ईश्वर का नाम निकल आवे तो खाने ही के लिए नेत्रों में उतर आ जाते हैं और पिताजी तो ठाकुरजी के नाम ही को सुनते ही आँखों से अग्नि उगलने लगते हैं। कैसे विचित्र ये सब गुरुजन हैं जो अपने मालिक के नाम से चिढ़ते हैं। एक बालक यह सुनकर प्रह्लादजी से मुस्कुरा कर पूछने लगा कि भाई प्रह्लाद तुम सदा हमीं लोगों के साथ पढ़ा, खेला कूदा और खाया पिया, हम सब तो ऐसे ही रह गए तुम कैसे ऐसे ज्ञानी और भक्त हो गए। प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि जब इन्द्र हमारी माता को मारने ले जा रहे थे तो मार्ग में भगवान नारद ने उन्हें निवारण किया और कहा कि इसके गर्भ में महान विष्णु भक्त बालक है, आप इससे न डरिये यह तो परम हरिभक्त है तब सुर हमारी माता को नारद के हाथ सौंप आप हमारी परिक्रमा कर सुरलोक को पधारे। भगवान नारद गाते गाते, अच्युत का अनन्त कीर्तन करते, वीणा से दिशाओं को पूर्ण करते, एक महर्षि जी को सौंप, आप भगवान कैलाशनाथ के मन्दिर चले गए। नारद की सब बातें मुझे याद हैं और पहिले [illegible] उन्हीं के श्रीमुख से सुना था।

योंहीं कतिपय वर्ष गुरुजी के यहाँ रह, प्रह्लादजी ने

विचारते और खेलते रहे। एक दिन हिरण्यकश्यप को अपने पुत्र की याद आई और स्यन्दन पर चढ़ पुत्र को देखने के हेतु प्रस्थान किया।

रास्ता में जाता था पर तौ भी दुखी और दीन सा समझता था। आज पुत्र के देखने के महान् उत्सव में सम्मिलित होने जा रहा है किन्तु अनेक अशकुनों के देखने से कुछ उत्साहहीन था, पर धीर होने के कारण क्षुद्र अशकुनों के न विचार शण्ड-मार्क के आश्रम में मध्याह्न को पहुँचा। लड़के को शुद्ध संस्कृत बोलते सुन और उत्फुल्ल नेत्रों में, पिता दर्शन की प्रसन्नता निरख, हिरण्यकश्यप निहाल हो गया। कहते हैं मध्याह्न को भोजन कर सन्ध्या को निज गृह को प्रस्थान किया।

(५)

भगवान प्रभाकर पश्चिम दिशा में दिन भर के परिश्रम से स्वर्ण सा लाल मुस्कुराते बैठे हैं। देश देशान्तर से यात्रा कर पक्षीगण अपने अपने घोसले की ओर बातें करते, प्रस्थान कर रहे हैं। जो अपने वास स्थान पर पहुँच गए हैं वह सुमनस भगवान प्रभाकर की शोभा, कुञ्जों के बीच निरख निरख निहाल हो रहे थे। जङ्गल में नियन्त्रित पशु अपने माँद से निकल, सन्ध्या की समीर को प्रेम से पान कर रहे थे। सारी दुनियाँ सुखी और सब भाँति से संपूर्ण देख पड रही थी। सारी नगरी सोने के पानी में स्नान किए हुए सी देख पडती थी, मानो अपने नूतन स्वामी युवराज प्रह्लाद को देख उत्सव मना रही थी। देखो, पताकाओं के मिस ताजीम देने को उठ खडी हुई, और उनके फरफराने मिस स्वागत उचारने लगी। प्रह्लाद प्रसन्न मन अपने पिता के बगल में बैठा सारे नागर नागरिकों के नेत्रों को सुफल करता, अपने महल में पहुँचा।

माता, विद्वान् प्रह्लाद को देख निहाल हो गई। गोद में जब उसने बैठाया तो उसे जान पड़ा मानो सारे लोक की संपत्ति उसकी गोद में रख उठी है। प्रह्लाद भी अपनी माता को बड़ा प्यार करते थे। इससे चिरकाल चुपचाप माँ की गोद में बालक से पड़े रह गए।

रात्रि को जब खा पी के प्रह्लादजी अपने पलङ्ग पर सोए तो क्या देखते हैं कि कोई महर्षि पीताम्बर पहिने हुए, वीणा झनकारते, अपने तेज से रात्रि के तिमिर को अपहरण करते हुए भगवत कीर्तन करता आकाश से उतरा और कहता है कि प्रह्लाद यद्यपि तू बड़ा दृढ भक्त है पर तौ भी तुम्हारा क्रूर पिता तुम्हारी बड़ी भयङ्कर परीक्षा लेगा। यद्यपि तेरा एक बाल भी बाँका न कर सकेगा, पर आप स्वयं कदाचित् इसी परीक्षा में समाप्त हो जायगा। प्रह्लादजी ज्योंही उनके पैर छूने को चाहा तैसे ही उनकी आँख खुल गई और देखा कि प्राची दिशा में भगवान सूर्य्य के आगमन की सूचना प्रफुल्लवदनी प्यारी ऊषा दे रही है। अरुण शिखा तुरही बजाने लगा जिसमें तपस्वीजन तैयार हो जायें आत्मा के देश की मञ्जिल चलने को। भक्त भुजैटा ठाकुरजी ठाकुरजी कर रहा था, सारा लोक हर क्षण अन्धकार से प्रत्यक्ष होने लगा।

प्रह्लादजी अपने पर्य्यङ्क से उठ अपने रचयिता को अनेक दण्डवत् कर, शौच स्नान कर 'ॐ नमो श्रीभगवते वासुदेवाय' गा रहे थे और निहाल हो रहे थे।

प्रात काल जो हिरण्य कश्यप उठा तो मारे प्यार के प्रह्लाद को देखने के लिये गया। भगवान वासुदेव का नाम सुनते ही मारे क्रोध के अग्नि हो गया, और अपने आपे से बाहर हो चिल्ला कर कहने लगा कि अरे मूर्ख तू उसी पुरुष का नाम ले

रहा है जिससे हम घृणा करते हैं। जिसने मेरे ज्येष्ठ भाई के वज्र सो शरीर को शूकर बन अपने दाड़ों से विदीर्ण कर डाला, और पृथ्वी छीन ली उसी वासुदेव का तू भजन कर रहा है और उनकी कीर्तन कर रहा है। क्या तू नहीं जानता कि यदि तू वासुदेव का गुलाम बनना चाहता है तो हिरण्य कश्यप का वैरी होगा। यही नालायक शण्डमार्क ने तुझे पढाया। तू मेरे योग्य नहीं है, तू इस वश की मर्य्यादा को डुबो देगा। प्रह्लाद जी ने कहा कि भगवान विष्णु तो सर्व भूत मात्र के सुहृद हैं, समदर्शी हैं, वे तो सब के मालिक हैं आप उन्हें कैसे अपना वैरी मानते हैं। यह सुन पिता लाल आँखें निकाल, भृकुटी टेढी कर कहने लगा, वह जो विष्णु का मित्र है वा सेवक, वह हमारा वेरी है। यदि तू फिर ऐसी बातें जिह्वा पर लायेगा तो निश्चय यह खड्ग तेरे वैष्णवी रुधिर को पान करेगी। प्रह्लाद जी के माता के आने से वा समय न पहुँचने से, उस समय हिरण्य कश्यप वहाँ से चला गया और भृत्यो से कहला दिया कि यदि फिर ऐसा करते प्रह्लाद देखे जायँगे तो आ जन्म इन को कारागार ही में रखेंगे। माता ने प्रह्लाद से कहा वेटा तुम विष्णु भगवान की भक्ति छोड दे, नहीं तो तेरे पिता रुष्ट हो तुम्हें अनेक कष्ट देंगे और उसी के साथ ही मैं भी अत्यन्त दुखी हूँगी। विष्णु भक्ति पिता भक्ति से कदाचित् श्रेष्ट नहीं हो सकती। तुम विष्णु की पूजा छोड पिता जी की पूजा किया कर, विष्णु तुम्हारे प्राण की रक्षा करने न आवेंगे, जब यह व्याघ्र सरीखा तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेंगे। क्या तुम नहीं देखते थे कि कुछ ऐसे क्रुद्धित थे मानो नेत्रों ही से भस्म करना चाहते थे ? तुम हमारी आज्ञा मानो। वेटा अकेले में जो कुछ चाहो किया करो पर अपने पिता के समक्ष तो कदाचित्

कभी भगवान् विष्णु का नाम मत लेना, यह सुन प्रह्लाद जी मुस्कुरा कर कहने लगे मैं तो भगवान विष्णु की भक्ति किसी के कहने से न छोड़ूगा, उन्होंने मुझे गर्भ में रक्षा किया, जब तुझे इन्द्र वधिक सरीखा लिए जाते थे और नारद ने छुडाया, वही इस भक्त की और शरीर की रक्षा करेंगे।

माता ने बहुत समझाया पर प्रह्लाद के देखने से जान पडता था की उन्हें कुछ भी नहीं सोहाता था, यह देख माता अपने महल में गई पर उद्विग्न मन दिन और रात्रि भर अति भयावह स्वप्न देखती रही। कभी देखती है कि प्रह्लाद आग में स्नान करता है कभी देखती की उसका पिता उसको पर्वत के शृङ्ग से फेंकता पर उसे कुछ न जान पडता। यह देख उसे मारने दोडता वैसे ही खम्भे के बीच से एक सिंह निकल उसके उदर को विदीर्ण कर डालता। इसी भाँति रात्रि भर भयावह स्वप्न देखते क्षपा क्षपितवती हुई।

जब की माता चली गई तो प्रह्लाद जी विचारने लगे कि माता अद्भुत मूर्खता की बात करती हैं। भला यदि विष्णु भक्ति छोड दी जाय तो इस शरीर ही के धारण करने से क्या प्रयोजन है, निश्चय इनकी भक्ति तो हमारा जीवन है, हम इसे त्याग कर क्षण भर भी नहीं जी सकते। माता कहती हैं कि माता पिता की आज्ञा सदा श्रेय मङ्गलकारी है, ईश्वर के भजने और आराधना से श्रेष्ट है। प्रह्लाद यह न सुनेगा। प्रह्लाद तो भगवान विष्णु का दृढ भक्त है जैसे वे सारे लोक की रक्षा करते हैं वेसे ही भक्त प्रह्लाद की भी रक्षा करेंगे। प्रह्लाद अपने महल में आकर समाधिस्थ सा बैठा रहा और शाम को सन्ध्या कर अपने रचयिता से ऐसी बातें करता था मानो विष्णु उन्हीं के समक्ष खडे हैं और प्रह्लाद की सारी बातें सुन

रहे हैं। व्यालू कर जब प्रह्लाद अपने पर्य्यङ्क पर सुमनस सोया तो देखता है कि भगवान नारद आकाश से वीणा बजाते भगवत नाम अमृत उच्चारण करते चले आ रहे हैं। प्रह्लाद ने उन्हें नम्रता और भक्ति से प्रणाम किया, अर्घ आदि पूजा से सत्कृत हो आसन पर बैठ, कहने लगे, बेटा प्रह्लाद कल्ह तेरी परीक्षा है यदि तू उत्तीर्ण होगा तो तुझे परमात्मा अद्भुत रूप से मिलेंगे और लोक तेरी भक्ति की कथा को सुन श्रवणपुट को पवित्र करेंगे। यह कह सुरलोक को कीर्तन करते चले गए। रात्रि भर प्रह्लाद समाधिस्थ से रहे प्रातःकाल ऊषा में अपने नैमित्तिक कर्म्म से निवृत्त हो सुनहले सूर्य्य का अभिवादन कर और प्रेम से जल और पुष्पों की भेट दे अपने आपको देख रहे थे।

रात्रि भर हिरण्यकश्यप भयावह स्वप्न देख, उद्विग्न मन प्रातःकाल उठा तो सोचने लगा कि निश्चय मेरा तप, शक्ति, वीरता, व्यर्थ ही है। जब मैंने अपने एकान्त शत्रु भ्रातृ हन्ता विष्णु का कुछ भी अपकार कर नहीं सका। समझता था कि यदि मैं न कर सकूँगा तो लडका करेगा। वह ऐसा दुष्ट है जो उन्हीं की भक्ति करता है, वह कैसे मेरे समीप रह सकेगा, जब विष्णु भक्त है। मैं तो प्रह्लाद से पूछूँगा कि यदि उसे विष्णु प्यारा है तो मेरे राज्य से निकल कहीं अनत जा बसे, मैं ऐसे पुत्र को न देख सकता हूँ, न रख सकता हूँ। चलो पूछें अब क्या कहता है? गत दिवस तो मैंने भला फटकार बताया था, कौन जाने दुरुस्त हो गया हो। यह सब सोचते विचारते प्रह्लादजी के महल में गया तो देखा कि बच्चा प्रसन्नमन भगवान विष्णु की प्रार्थना में अनेक श्लोक पढ रहा है और जब पढ़ चुकता है तो वासुदेव भगवान् की टेर लगाता है।

यह देख हिरण्यकश्यप ने कहा कि यदि आप विष्णु के

किङ्कर होना चाहते है तो यावज्जीवन नरक कारागार भोगना पड़ेगा, वहीं जा कर सब विधान से भजन करना," प्रह्लादजी ने कहा "पिता प्राणी जहाँ रहें वहीं उसे अपने मालिक का स्मरण करना चाहिये, कारागार क्या बुरा है," यह सुन हिरण्यकश्यप ने कहा यदि कारागार से आपको तृप्ति नहीं तो लाखों कष्टों वाली मृत्यु के वश दिये जाइयेगा। 'वह भी उन्हीं के आधीन है, यह सुनते ही हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को पर्वत के श्रृङ्ग पर से फेकने की आज्ञा दी, पर देखा कि प्रह्लादजी नारायण कहते उठे। यह देख, प्रह्लादजी को अग्निकुण्ड में फेंका, पर अग्नि ने उन्हें मारे प्यार के अग्नि सा वर्ण दिया पर जलाया नहीं, और आश्चर्य्य से हिरण्यकश्यप देखने लगा तो प्रह्लादजी मुस्कुराकर कहने लगे, पिताजी! भगवान विष्णु सर्वत्र हैं और सब की रक्षा करते हैं। यह सुन विस्मित और क्रुद्धित हिरण्यकश्यप ने कहा अच्छा मै तुम्हें इस खम्भ में बाँध देता हूँ और यह खड्ग तेरे मस्तक को भूमि पर नाचता अभी देखेगा। यह कह नादान ने प्रह्लाद को रज्जु से खम्भ में बाँधा और ज्योंही अपने कृपाण को चलाया तैसे ही

"भयो शब्द महान सुगड गड गड रड।
फट्यो खम्भ द्वै खण्ड कराल कि कड कड कड रड॥
कढ्यो रूप रवि तेज झमकि कि झड झड झड रड।
भगे दनुज गन देखि सरूर कि सड सड सड रड॥

भागते हिरण्यकश्यप को नृसिंहजी ने पकड़ अपने जङ्घों पर बिठला उदर को विदारण कर दिया, यह देख मारे भय के सब लोग भाग गए। बकोल एक कवि के "ज्वालते नेन हूँ और विदार ते उदर"। ऐसा भयङ्कर ठाकुरजी ने रूप

धारण किया था कि मनुजगण की कौन कहे देवतागण जो जानते थे कि भगवान विष्णु हम सब की प्रार्थना से अवतार लिया है वे सब भी पहिले, परमात्मा के भयङ्कर रूप को देख, भाग गए। वृद्धा पुराण कहता है कि जब किसी देवगण की स्तुति करने की हिम्मत न पड़ी तो सब देवगणों ने लक्ष्मी से प्रार्थना किया कि वे सिंहराज की स्तुति करें पर लक्ष्मीजी इस अपूर्व अदृश्य भयङ्कर स्वरूप को निहार कहने लगी कि ऐसे रूप में तो मैंने अपने पति को कभी नहीं देखा, मेरा भी साहस इनके सन्निकट जाने का नहीं पड़ता। भक्ति भरी आँख वाले प्रह्लादजी को देखकर कहा बेटा प्रह्लाद तुम आगे चलो तो हम भी चलें। यह सुन प्रसन्न वदन प्रह्लाद नव पूजा की वस्तुत प्रस्तुत कर भगवान नरसिंह जी के उपासना के लिए चले और पीछे २ लक्ष्मी तत्पश्चात् सब देवगण चले

सटाच्छटाभिन्नवनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुन्तनुत्वया ।
समुग्धकान्तास्तनसङ्गभुङ्गुरैरुरोविदारप्रतिचस्करे नखै ॥

भगवान नरसिंहजी का अद्भुत भयङ्कर प्रकाण्ड शरीर और खून और मज्जा से लाल २ व्याघ्र नख, किंशुक जाल सदृश देख पड़ते थे, केसरिया लम्बे केश रुधिर से स्निग्ध, केशर से फूल रहे थे, रक्त नेत्रों से ऐसा तेज फेंकते थे मानो लोक आज ही अन्त हो जायगा, कहते हैं कि भक्त प्रह्लाद को यह भी रूप भला लगा। लोचन भर कहने लगे कि आप धन्य हैं जो अपने शत्रु का अविद्या उदर विदारण कर स्वर्ग को भेजते हैं, निश्चय पिताजी से भली शत्रुता करते बन पड़ी, नहीं तो कैसे ऐसी सद्गति मिलती। हे जगन्निवास, हे जगदाधार, हे जग व्यापक भगवान तुम्हें अनेक प्रणाम है, सहस्रों दण्डवत् है, आज आपके आने से निश्चय यह कुल कृतार्थ हुआ, आज

मेरी भक्ति को सफलता हुई, यद्यपि आप सर्व व्यापी अव्यक्त अदृष्य अगोचर हैं पर तो भी अपने भक्तों के त्राण के लिए और प्रजा के उद्धार के लिए व्यक्त स्वरूप भी धारण करते हैं। यह कहते कहते प्रेमाश्रु जल से प्रफुल्ल आनन वाले बच्चा प्रह्लाद ने भगवान का चरण प्रक्षालन करना आरम्भ किया, सुनते हैं कि भगवान नरसिंहजी ने प्रह्लाद को गोद में बिठला लिया और मारे प्यार के जिह्वा से चाटने लगे।



मन

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासव ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥



न मानव आकाश का मयङ्क है, आखेटी योगी का प्रिय लक्ष्य है, भक्तों का अनाज्ञाकारी दूत है, मनुष्य इञ्जिन का ड्राइवर है। दार्शनिकों की भूल भुलैयाँ, चञ्चल वायु सा, शक्तिमान विद्युत सा, जड प्रस्तर सा, क्रोधीशेष सा उन्मत्त हस्ती सा, मारीच सदृश यज्ञ में बाधा करने वाला, विश्व विजयियो को भी अजेय, योगियों का परम ध्येय और सृष्टि में परम अनुपमेय, मन की उत्पत्ति अनेक दार्शनिको ने अनेक प्रकार से बताया है। कोई तो इसे पच भूत से उत्पन्न कहते और उसे उसका सूक्ष्म रूप कहाते और कोई उसे अनादि अनन्त आत्मा का अश कहते हैं। कोई इसे इन्द्रिय समूह की शक्ति सिद्ध करते एव कोई इसे केवल दार्शनिको की मृगतृष्णा समझते हैं किन्तु ये सब अनोखे विचार इसी मन की मनमानी दोड हे, जो इसके अस्तित्व और महत्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। भगवान कृष्ण इसका इतना आदर करते हैं कि कहते हैं कि इन्द्रियो में मैं मन हूँ। पश्चिमीय विज्ञानी हेमिल्टन कहते हैं ससार के जीवों में मनुष्य सब से श्रेष्ट है और मनुष्यों में मन के अतरिक्त कोई वस्तु महान नहीं है।

मन के महत्व की कथा वैसी ही अनन्त है जैसे आत्मा के पराक्रम की कथा अनन्त है। जैसे आत्मा अनन्त है वैसे मन भी अनन्त है। मन ही ने विद्युत को पकड कर कहा कि घर घर डाकिया सा सदेश देती घूमो। पखा चलाओ, खाना पकाओ, और गाडी चलाओ। इसी ने अग्नि और जल को पकड कर उनसे अश्वों का काम लिया और कह दिया कि शान्त मन बैठे जुलाहों सा कपडा बीनो और इसी ने पुस्तको से पुस्तकालयो का वृहत उदर भाण्डार भरा। सच तो यह है कि जैसी बडी यह आत्मा है वैसा ही बडा यह उसका मत्री मन है। आप बैठे ही रहे किन्तु यदि मन चाहे तो सारे ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर लौट आ सकता है। मेज पर सोया हुआ यह दुनियाँ बिगाडता और बनाता है। क्षण के क्षण में अपनी दीन कुटिया को पेरिस का महल बना देता और उसकी सी सुन्दर वीथियो में घूमने लगता और कभी उसमें युधिष्ठिर के विस्मयकारी सभा भवन की समा देखने लगता। कभी पथिक बन सारे ससार का सार भ्रमर सा घर ही बैठे खीच लेता। कभी समालोचक सा न केवल मनुष्य की निर्मित वस्तुओं में दोष निकालता, किन्तु ईश्वर की सृष्टि पर हँसता और कहता विरञ्चि से यह न विरचते बना। दार्शनिक काण्ट (Kant) तो इसकी शक्ति पर मुग्ध हो यह कहता है "Mind makes universe" अर्थात् जिस ससार का हम सब को ज्ञान है वह मन की सृष्टि है। इसमे कोई सन्देह नहीं जिस ससार विषयक ज्ञान से हम सब अपने को बुद्धिमान और ज्ञानवान समझते हैं वह मन की ही करतूत है।

हम सब साधारण मनुष्यों में तो मन ही का राज्य है और मन ही तक सब की पहुँच है, आत्मा तो अस्त सी हो गई है

जैसे बादल या कुहरा के घिरने से भगवान सूर्य्यदेव के सब गुण, तेज, प्रकाश, इत्यादि लोप हो जाते हैं वैसे ही कुछ इस शरीर में आत्मा की गति हुई है। जैसे राख में अग्नि लापता हो जाती है वैसा ही हम सब के पूर्व जन्म के कर्म रूपी सस्कार ने इसे ऐसा मलिन कर दिया है कि मन अन्धा शीशा सा हो गया है। कबीर कहता है कि यदि तूने आत्मा का दर्शन नहीं किया तो एक प्रकार से अधा है और सारी दुनियाँ अधी है इससे हम यदि उन्मत्त पुरुषों को समझाने चलेंगे तो अधे के सामने आरसी सा रखना होगा।

मन यद्यपि मत्री है पर इस देह ग्राम में राजा सा बन बैठा है और जैसा चाहता है करता है। आत्मा तो साक्षी गोपाल सरिस एक किनारे मौन धारण किए बैठा रहता है। हम पुराणो और इतिहासो में पढ आये हैं कि जब राजा कमजोर होता है तो मत्री स्वय ही राज्य करने लगता है और उसी का हुक्म चलता है।

वेद भगवान कहते हैं कि "शरीर रूपी वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। एक तो इस जगत के सब सौख्य और आनन्दों का अनुभव करता है और दूसरा साक्षी सा इसके सब कर्मों का निरीक्षण करता रहता है। इस अत करण आकाश में जैसा वेद भगवान कहते हैं मन ही सब भोगों का भोक्ता जान पडता है। यह मन सात्विक, राजसी वा तामसी पूर्व जन्म कर्म्मानुसार हुआ करता है। और मन का ताप तब तक नहीं जाता जब तक यह अपने दूसरे मालिक-पक्षी को नहीं देखता। जैसे मन ने यह सिद्ध कर लिया है कि हम सब देश में और सब की बातें करेंगे सिवाय परमात्मा के, वैसेही यह भी सिद्ध है कि मन भी कभी सतुष्ट, सुखी और स्वस्थ नहीं होगा जब तक

कि आत्मा देव के सन्निकट न वैठेगा। इसी दूसरे पक्षी के पहिचानने के लिये सब शास्त्रों ने अनेक उपाय बताये जिससे मन अपने मालिक को देखे और पहिचाने। यह ठीक है कि ज्ञान हंस सा अन्त करण और आत्मा को अलग करता है यानी मन रूपी पानी के राज्य को और आत्मा को अलग कर देता है या डाक्टर सा उसके ज्ञान चक्षु को खोल देता है कि वह दूसरे पक्षी को पहिचाने वा यो कहिये कि अपने असल रूप को पहिचाने। किन्तु बडे भइया कैसे पहिचाने जायें, जब इतने सन्निकट बस कर भी सब की आँख मूँदे हैं? भक्तों ने कहा है कि जब मन भक्ति वारुणी से उन्मत्त होता है वा ज्ञानाग्नि से जब भली भाँति संस्कृत हो जाता है और "भिद्यते हृदयग्रथि छिद्यन्ते सर्व संशया" जब हो जाता है तब वह अपने साक्षी पक्षी को निरीक्षण करने लगता है।

मन कैसा कुछ चचल है यह तब जान पडता है जब आप उसे निग्रह करने की इच्छा करें। भगवान, कृष्ण कहते हैं का यह मन क्षण भर भी बेकाम नहीं बैठ सकता। अर्जुन से पराक्रमी पुरुष मन को निग्रह करना वायु के निग्रह करने के समान दुस्तर समझते हैं। पर भगवान अभ्यास और वैराग्य से इसका निग्रह बताते हैं। वेद भगवान् कहते हैं कि यह भूत शान्त न वैठेगा जब तक इसे अपने आत्मा का दर्शन न होगा। तभी इसकी अशान्ति और चचलता जाती रहेगी। युधिष्ठिर ने जब भाइयो के साथ दिग्विजय किया तो विजय लक्ष्मी से उन्मत्त आनन्दमन भगवान व्यासजी के सन्निकट गये और उनके चरणों को स्पर्श कर कहने लगे कि भगवान आपकी कृपा से हम सबों ने दिग्विजय प्राप्त किया। भगवान व्यास ने हँस कर पूछा कि भला मन जो इस शरीर में

है उसे भी पराजय किया। इसपर पाचों भाई लज्जित हो चुप हो गये और कहा कि गुरुजी मन का विजय करना तो परम दुस्तर है। बूढे व्यास ने कहा कि जब घर ही में हार है तो बाहर के विजय से क्या लाभ हो सकता है। सच तो यह है कि मन से हारे हार और मन के जीते जीत। किन्तु नादान मन को इतने दिन विषय क्षेत्र में विचरते हो गये कि अब इसे आत्मा की ओर, या अन्तर्मुख होना, पाप सा समझ पडता है। यह उस देश में घसीटने पर, जैसे बालक पाठशाला मे जाने से रोता और चिल्लाता है वैसाही कुछ यह उनके सन्निकट जाने में दुखी होता है। सब की बात करेगा पर अपने मालिक की चर्चा न करेगा। आत्मादेव की कथा सुनते ही दुम दबा भाग जायगा वा बधिर सदृश हो अनमन बैठा रहेगा। और यदि भाग्यवश किसी महात्मा के यहाँ गया और सत उपदेश सुना तो चलते समय सब ज्ञान वहीं छोड कर आता, वा बकौल एक वकील के कि घर के सन्मुख होते ही जो आप कहते हैं, वह सब उलटा समझ पडता है। एक मोटे पादरी कहते कि ज्ञान का दर्बार तो एक सूखा दर्बार है यहाँ कभी कौड़ी की प्राप्ति नहीं। फिर इसके सिवाय यह जगत के सुख हमारे आसमानी बाप ने अनुभव करने के लिये रचा है, यदि हम, उनके एकलौते पूत से इसके आनन्द का अनुभव न करेंगे तो कौन करेगा। जो सुख विषय जगलो में विचरने में है वह कभी नाक बन्द करने से नहीं हो सकता। जो सुख खटाखट बोतल के भरे अमृत पान करने में है वह कभी खटर खटर माला जपने से हो नहीं सकता है। इत्यादि अनूठी उक्तियों को कहा करते थे।

मन ऐसा खिलाडी है कि बड़े से बडे पुरुषो को ससार में नाच नचाया है। शूर्पणखा जब मद से विघूर्णित कानन में

विचरती हुई भगवान रामचन्द्र के बडे २ कमल नेत्रों को देखा तो इसका मन कुछ ऐसा रीझ गया कि सीता को भक्षण कर रामचन्द्रजी को अपना पति बनाने के प्रयत्न में नाक कटवा, दश शीशधारी रावण का सिर कलम करवाया। रामचन्द्र से धीर पुरुष ने मन ही के कारण अधीर बालक सा वृक्ष, बलाहक और विहङ्गों से विदेह तनया का वृत्तान्त पूछा। नारद को मर्कट का रूप दे सभा में अनेक खिल्लियाँ उडवाई। महाभारत में जब दोनो ओर की सेना युद्धोन्मुख खडी हुई तो अर्जुन का मन कुछ ऐसा क्लीब और दुर्बल हो गया कि उनके दोनो आँखो से अश्रु गिरने लगे और गाडीव मारे कम जोरी के हाथ से गिर गया। जिस क्लीवता के नाश के लिये भगवान् को अट्ठारह अध्याय गीता सुनानी पडी। किन्तु इस अद्भुत ससार में ऐसे ऐसे महात्मा भी हुए हैं जो इस चञ्चल को भी अचल वा निश्चल कर दिये है। सारी रात लका के अन्तर्गृहों में घूमते, सेज पर सोये हुए दम्पतियो को देखते और अनेक नगी राक्षसियो के स्वर्ण सी चमकती हुई शरीर को निरखते हुए भी पवनसुत कहते है कि हमने सारी लका के युवतियो के दर्शन किये पर मेरे मन में कोई विकार नहीं उपजा।

मन के नियन्त्रण के विषय में भगवान वेदव्यास कहते है कि यातना से यानी शारीरिक कष्ट से इस मन की खोटाई नहीं जाती जैसे बाहर बिल के पीटने से बिल में स्थित सर्प नहीं मरता। वैसे ही शरीर की यन्त्रणा से या भूखों मरने से कदाचित् मन नहीं पराजित होता है नहीं तो वेद भगवान यह नहीं कहते कि—ऋते ज्ञानान्न मुक्ति।

सुनते हैं दैवी कबीर वैष्णवों के अत्यन्त आचार विचार को देख उन सबों के समझाने के लिये लोटा में गोबर इत्यादि

भर, वह उसे बाहर से गंगाजी के किनारे एक दिन माँज रहे थे। किसी ने पूछा तो कहा कि ऐसा ही तो आप सब भी अपने तन की सफाई से भीतर की सफाई करना चाहते हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जिस विषय का त्याग ज्ञान से नहीं किया गया और मन में उसके सुख का स्मरण किया जाता है ऐसा त्याग मिथ्याचार है केवल दंभ मात्र है किसी काम का नहीं। यह सच है कि मन-सच्चा तो सब सच्चा नहीं तो सब कच्चा और यदि मन केवल मार्जार सा स्नानादिक इसलिये करता है कि विषय-पक्षी उसके सन्निकट आवे और वह उनको पकड़ कर आनन्दपूर्वक भक्षण करे, ऐसे त्याग को भगवान मिथ्याचार या दम्भ मात्र कहते हैं। नहीं तो जब यह मन विचारपूर्वक अपने रूप में स्थित होता है तब वह उस पुरुष सदृश प्रायः होता है जो किसी चीज को खाकर फेंक देता है। याने जब यह देखता है कि विषय रानी उसे कोई सुख प्रदान नहीं कर सकती जो स्थाई और संतोषजनक हो तो वह उस दर्बार में जाता है जहाँ उसे स्थाई सुख का सदावर्त बटता और आनन्द की नौबत बजती रहती है।

ठाकुरजी के यहाँ केवल मन ही जा सकता है इससे मन ही से मुख्य लड़ाई है। मन यदि आपके हाथ आ जाय तो सब सुलभ हो जाय। सुनते हैं कि जनक ने एक सभा की, जिसमें एक कुर्सी रक्खी और कहा कि जो हमें दो क्षण में ज्ञान उपदेश दे वह इसको सुशोभित करे। बहुत दिनों तक ज्ञानी ब्राह्मण मंडली में किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि उसपर जा बैठे। यह सुन अष्टावक्र के पिता ने अष्टावक्र से कहा कि बेटा जनक अपने को बड़ा ज्ञानी मानता है पर तू उसे ज्ञान उपदेश दे सकता है। पिता की आज्ञा पा अष्टावक्र

ध्यानावस्थित धीरे २ यज्ञवाट की ओर चले। कहते हैं कि जब वे एकाएक कुर्सी पर जा बैठ गये तो सारी सभा उनके इस रूप और साहस पर हँसने लगी। यह सच है कि हँसने पर सब हँसते हैं जनक भी नादानी से हँस पड़े। किंचित क्रुद्ध अष्टावक्र ने कहा कि यदि मेरा शरीर वक्र है तो मेरी आत्मा तो पवित्र और गौतम है। मेरी शरीर को तो देखा पर आत्मा को तो नहीं देखा नहीं तो कैसे हँसता। जनकजी ने हाथ जोड़ कर कहा कि यह आसन जिस पर आप स्थित हैं वह उस ज्ञानी के लिये है जो मुझे अश्वारूढ होते होते यानी दो तीन क्षण में ब्रह्म विद्या पढा सके। अष्टावक्र ने कहा कि ठीक है आप अश्व तैयार कराइये मैं उतने ही समय में ब्रह्मविद्या पढा दूँगा। निदान जब अश्व तैयार होकर आया और महराज आरूढ होने के लिये चले तो हाथ जोड़ कर कहा कि अब आप हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश दीजिये। अष्टावक्र ने हँस कर कहा कि आप हमें अपना मन दे दीजिये तब अश्वारूढ हूजिये। ज्ञानी जनक प्रसन्न हो उनके चरणों पर गिर पड़ा और बड़े सत्कार पूर्वक अष्टावक्र को प्रचुर द्रव्य दे विदा किया।

कबीर मनुआ से कहते हैं कि "सुनो मन मीत, जो घर बैठो तो लागै ठीक"। "पेडा जलेबी घर ही में खाव, ड्योढ़ी से एक कदम न जाव"। पर उलझना और सुलझना इस मन को ऐसा भला लगता है कि अब इसकी एक प्रकार से यह प्रकृति सी हो गई है। यदि सात्विक वृत्ति या दैव सयोग से कहीं अपने मालिक को याद करता है तो देवगण जो हमारे शरीर में उपस्थित हैं, घबड़ा उठते हैं और बिचारे भक्त या ज्ञानी पर धावा कर देते हैं यहाँ तक कि उसे चिन्ता गर्त में गिरा कर

तभी शान्त होते हैं। इसी से सतो ने कहा है कि ज्ञानियों को हस्ती सा सीधे अपने मार्ग पर चलना चाहिये और कुत्तों के भूकने पर नहीं उद्विग्न होना चाहिये। भगवान कहते हैं कि जहाँ जहाँ यह मन जाय उसे लौटा लौटा कर फिर आत्मा में स्थित करना चाहिये। निग्रहवान पुरुष एक प्रकार से प्रवल सारथी सा है जो अपने इन्द्री अश्वों की लगाम खींचे रहता और इन्हें विषय क्षेत्र में बहकने नहीं देता, प्रत्युत नित्य प्रति पुनीत विष्णुपुर की ओर अपने रथ को बढ़ाता जाता है। और रथी आत्मा नित्य प्रति पुनीत देश में बसने से फूला नहीं समाता। इन सब के अन्त करण आकाश में आनन्द समुद्र की ऐसी ऊँची लहरें उठती जो ठाकुरजी के चरणों को स्पर्श कर निहाल हो लौटती हैं। किन्तु यदि आप इन्द्रियों के गुलाम हुए तो यह मन सदा विषय जगलों में इस ओर से उस ओर घूमता रह जाता है और कहते हैं कि फिर वह उस अपार जगल से निकल भी नहीं सकता। और कभी कभी तो ऐसे तृणाच्छादित गर्त में जा गिरता है कि रथ और सारथी दोनों अग भग हो परिध्वस्त मन अपने किये मूर्खता पर रोने और गाने लगते हैं। जैसा कि महाकवि बिहारीलालजी कहते कि—

पडि कुरंग या जाल में, क्यों नाहक घबराय।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहै, त्यों त्यों उरझो जाय॥

जब परमात्मा परब्रह्म इस सृष्टि से विरक्त होते हैं तो भगवान भूतनाथ तांडवनाच नाचने लगते और इस प्रलय की भयकर समा देख वे सोना आरम्भ करते हैं। पुराण कहता है कि जागने पर जब चारो ओर देखा कि शून्य ही शून्य दृष्टि गोचर होता है, उनका मन घबड़ा कहने लगा कि

अकेले में कुछ आनन्द नहीं। अहंकार बोला कि अजी हम एक हैं और लाखों हो सकते हैं। फिर क्या था आकाश मंडल नक्षत्रों से सुशोभित हो गया और वे सब अपनी पुरानी गीत गाते अपने नियत स्थान पर चलने लगे। यह सारा ब्रह्माण्ड शुन्य से निकल आया और इस अपूर्व शोभा को निरख चार मुखवाले ब्रह्मा ने चारो मुख से गीत गा अनन्य धन्यवाद दिया।

ऐसा कुछ उस महात्मा का मन है कि क्षण के क्षण में बना और बिगाड सकता है। वह धाम "जहाँ पवन की गति नहीं, रवि शशि उदय न होय" जहाँ भगवान शङ्कर और चतुर्मुख ब्रह्मा और विष्णु विचरते वा जहाँ माया सदा द्वार पर चेटी सी खडी रहती, जहाँ के उजेले से यह सारा जगत उजेला है, जहाँ से सब चैतन्य होते हैं और जहाँ प्रलय रात्रि में सब इकट्ठे होते हैं, वहाँ यदि कोई जाता है और पहुँचता है तो मन ही। यदि अव्यक्त अचिन्त्य को कोई चिन्तन कर सकता है तो यह मन ही, यदि योगी किसी को जीतने या वश करने का प्रयत्न करते हैं तो इसी मन को। इसी मन पर राज्य कर ब्राह्मण इस जगत में सारी वस्तु जान लेते थे। किन्तु अब सहस्रों वर्ष इससे बिछुडे हुए हुआ और माया भी ऐसी मीठी हो गई कि मन राम को अब ऐसा वश में कर लिया कि वे अब हिल ही नहीं सकते। वेदान्त बुड्ढा अलग सिर पीटता और कहता कि मैं तुझे उस देश में रख दूँ जहाँ तू सदा सुखी बैठा रहे, तेरी यह चचलता जाती रहे, तेरे तीनो ताप त्रयतापहारी आत्मा हर लेगी, तू उस निर्मल आत्मा से, जिससे बिछुडने से माया ने तेरी यह अनेक दुर्गति कर दी है, उसके निकट चल और देख कि यह माया जिसमें तू रात्रि दिव रमता है कैसी मोटी भद्दी और बदसूरत काम रूपिणी निरख पड़ती है, जिसको छूने से और जिसके

निकट जाने से तू घृणा करेगा। हे इन्द्रियों के अधिपति मन! तुम्हारे बैठने से इस आत्मा के पुनीत दर्शन हो सकते हैं, तुम्हारी चञ्चलता जा सकती है और तुम सुखी और स्वस्थ हो सकते हो। और आनन्दमयी आत्मा के आनन्द कोष में बैठ इस जगत के द्रष्टा सा वा मसनद नशीन सा इस जगत नाट्यशाला की अनेक विचित्र लीलायें देख सकते हो। आत्मादेव जो सारे जगत में व्याप्त है अनेक रूप में होते हुए भी तुम्हें एक देख पडेगा।

अत. हे सर्वव्यापी मन! तुम्हारी गीत कौन गा सकता है और तुम्हें कौन समझा सकता है? जैसे आत्मा अचिन्त्य है वैसे तुम भी अचिन्त्य हो। आपकी अनेक गीत और प्रशसा इस लिये की है कि अब अपने मालिक के चरणों में प्रीति करो और उनके सन्निकट बैठ शान्तता के अत्युत्तम सुख का अनुभव करो।

रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से यूनियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित।